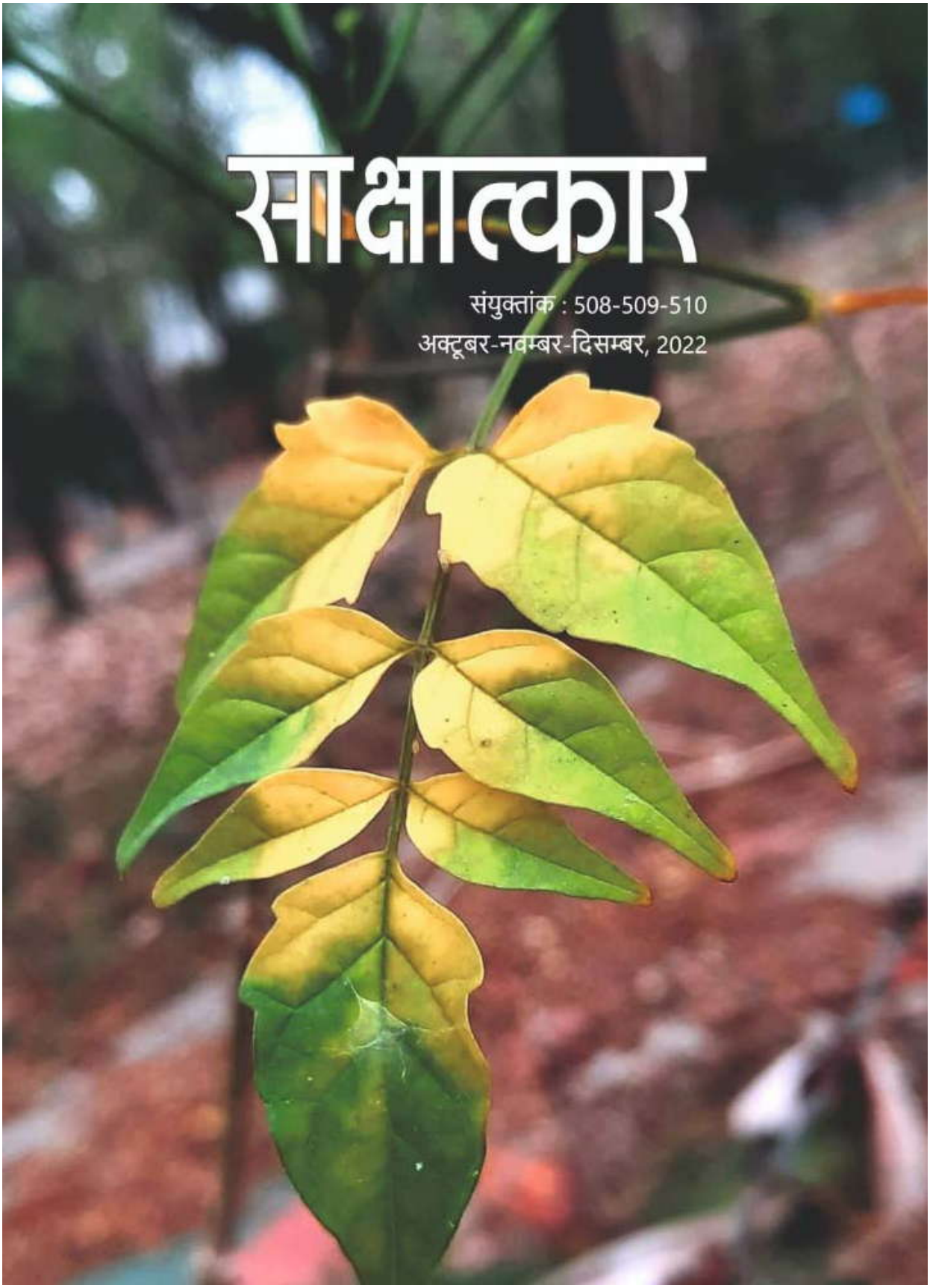

साक्षात्कार

संयुक्तांक : 508-509-510
अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर, 2022

साक्षात्कार

डॉ. विकास दवे
सम्पादक

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर, 2022
संयुक्तांक : 508-509-510

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/सम्पादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-462003
फ़ोन : 0755-2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email : sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।

वार्षिक सहयोग राशि
व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए : ₹ 250
संस्थाओं के लिए : ₹ 300
आजीवन : ₹ 3, 000

यह अंक : ₹ 75 (रजिस्टर्ड डाक खर्च अतिरिक्त)

समस्त बैंक ड्रॉफ्ट/मनीआर्डर '**निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल**' के नाम स्वीकार्य होंगे।

आवरण : रक्षा चौबे

आकल्पन : राकेश सिंह

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। सम्पादक या साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश का मासिक प्रकाशन

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

'हंस' या काला कौआ // 05

बातचीत

विजयानन्द से डॉ. विकास दवे की बातचीत // 07

आलेख

डॉ. जय वैरागी साहित्य का वैचारिक अधिष्ठान // 11

शिवचरण चौहान अमर हैं घाघ की लोकोक्तियाँ // 16

प्रमोद भार्गव मुस्लिम लीग और बँटवारे की विभीषिका // 24

आइवर यूशिएल अद्भुत है जीव-जन्तुओं का संसार // 29

रामगोपाल राही सूरदास का भक्ति काव्य-'चिंतन' // 32

डॉ. पूजा मनमोहन उपाध्याय पं. दीनदयाल उपाध्याय : चिन्तन में विकास का निदर्शन // 37

पं. रूपराज शर्मा श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर // 41

डॉ. गरिमा संजय दुबे विरह तप जब फले, तब राम आते हैं // 44

डॉ. सदानन्द प्रसाद गुप्त राजेन्द्र बाबू की साहित्यिक मान्यताएँ // 47

शकुंतला कालरा प्रकाश मनु की आत्मकथा में किस्सागोई का हुनर // 53

डॉ. भरत ठाकोर गुजराती भक्ति साहित्य में सामाजिक समरसता का प्रकाश // 62

यशवंत कोठारी सुब्रमण्यम भारती और भारतीय चेतना // 67

मोहन कुमार नवगीत की प्रथम कवयित्री : शान्ति सुमन // 70

डॉ. माया दुबे साठोत्तर हिन्दी कविताओं में राजनीतिक चेतना // 79

डॉ. वासुदेवन 'शेष' हिंदी भाषा एवं संस्कृति के प्रसार में अनुवाद की भूमिका // 82

ब्रह्मानंद राजपूत झंडेवाला पार्क के नायक : अमर शहीद गुलाब सिंह लोधी // 90

अनिल श्रीवास्तव 'अयान' राष्ट्र-मुखरित-स्वर वाहक : दिनकर // 92

संस्मरण

प्रभु त्रिवेदी गीत पुरोधा : चंद्रसेन विराट // 94

डॉ. सभापति मिश्र दादू पंथ और संत रज्जब // 97

कविता

डॉ. प्रीति प्रवीण खरे कुंडलियाँ छंद // 105
पद्मा सिंह तुम्हारे बिना // 107
राजकुमार जैन 'राजन' प्रेम // 109
डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण' जीवन है सचमुच रत्नाकर // 111
सविता दास सवि अभिव्यक्ति // 112
रमेश मनोहरा इस माया की आस // 115
आचार्य डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' आकाश गुँजा कर गीत लिखे // 117
वाणी जोशी पति पिता-सा // 118

कहानी

कृष्णमुरारी त्रिपाठी 'अटल' मुकदमा // 120
गौरीशंकर रैणा मध्यांतर // 125
अमर चड्ढा इंडोनेशिया चलोगी // 129
यामिनी नयन गुप्ता उठाईगीर // 131
सुरेश बाबू मिश्रा आखिरी प्रणाम // 139

व्यंग्य

ओमप्रकाश चौधरी रेखा और लक्ष्मण रेखा // 143

लघुकथा

गोविन्द भारद्वाज चरण स्पर्श // 145

समीक्षा

गिरीश पंकज शुद्ध-सात्विक कहानियों से गुजरते हुए // 146
मधुलिका सक्सेना 'मधुआलोक' साधना की परावस्था शबरी की विशिष्टता // 150
यशवंत चौहान चुनी हुई कविताएँ // 153
डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी श्रीहरि सरल गीता // 154
बी. एल. आच्छा आत्मवृत्त में साहित्य के समकाल का कोलाज : माफ करना यार // 158
इंदिरा दाँगी नए युगबोध का दस्तावेज // 164
कमलेश भट्ट कमल जीवन और जन-सरोकारों से सराबोर कहानियाँ // 166

चिट्ठी // 170

'हंस' या काला कौआ

बहुत दिनों से एक विषय मन को उद्वेलित कर रहा था। एक लंबे समय तक धैर्य रखने के बाद भीतर से आवाज आई कि यदि इन विषयों पर हमने आज मौन रखा तो आने वाला समय हमारे इस मौन का उत्तर हमसे ही माँगेगा। इसलिए मन मसोसकर कुछ लिखने का मन बनाया है। मेरे अनेक मित्र शायद मेरी भर्त्सना करें कि एक साहित्यिक पत्रिका का संपादक अपने संपादकीय में किसी दूसरी साहित्यिक पत्रिका कि खुली आलोचना क्यों कर रहा है? किंतु इसके पीछे एक बड़ा कारण है। विगत दिनों साहित्यिक पत्रिका 'हंस' के संपादक श्री संजय सहाय ने गाय पर केंद्रित एक संपादकीय लिखा। सामान्यत: पत्रिका में संपादकीय लिखना यह संपादक का धर्म है और कोई नई बात नहीं है किंतु मन में बैठे पूर्वाग्रहों या कहूँ दुराग्रहों को शब्दों में ढालकर पाठकों को देने से पहले एक संपादक को बहुत विचार करना चाहिए। उनके इन विचारों का प्रभाव पाठकों के हृदय पर क्या पड़ेगा?

मुझे लगता है साहित्य 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय नहीं बल्कि 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' ही होना चाहिए। यदि आपके लिखे शब्द किसी एक व्यक्ति की श्रद्धा को भी चोट पहुँचाएँ तो ऐसा लिखना निरर्थक है। यहाँ तो करोड़ों भारतीयों की श्रद्धा को निर्ममता पूर्वक पैरों तले कुचलने का दु:साहस संपादक ने किया। ऐसा नहीं कि वे जानते नहीं थे कि वे जो कुछ लिख रहे हैं उसका क्या प्रभाव होगा किंतु अपने तथाकथित आयातित विचार के द्वारा जितना मनोमालिन्य उनके हृदय घट में भर दिया गया था वह पूरी कालिख उन्होंने अपनी कलम की स्याही बनाकर अपने संपादकीय में उड़ेल दी।

अत्यंत भद्दे ढंग से संपादक ने गाय को उसी तरह एक सामान्य जानवर घोषित करने का प्रयास किया जैसे सूअर होता है। वाराह जैसे शब्द जानबूझकर वे परंपरा को गालियाँ देने के लिए उपयोग करते हैं। वे यह तक लिख गए कि यदि पंचगव्य से प्राप्त सामग्रियों से स्वास्थ्य ठीक रहता है तो लोग गाय के अंगों पर मुँह लगाकर सीधे उसे ग्रहण क्यों नहीं कर लेते? उनकी शब्दावली मन में एक विद्रूपता पैदा करती है। मैं बार-बार यही सोच रहा था कि क्या जिस पत्रिका के संपादक प्रेमचंद रहे हों, जो भारत की मिट्टी, किसान, खेत खलिहान और गाय बैल को भगवान मानकर लिखा करते थे उस पत्रिका के संपादक अपने पुरखों के विचार को भी भूल गए? बीच के काल में पूज्य बापू महात्मा गाँधी और कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जैसे गौभक्त और भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धावनत व्यक्तित्व भी इस पत्रिका के संपादक रहे हैं। क्या इन महाशय को गौ-माँस भक्षण का पक्ष लेते समय अपने पूर्ववर्ती यह दोनों संपादक याद नहीं आए?

इसी संपादकीय में संपादक ने शिवलिंग की पुरुष लिंग से तुलना करके एक इतनी भद्दी टिप्पणी की है जो अक्षम्य ही है।

साहित्य जगत यूँ तो अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के मुहावरों के नाम पर चाहे जब मुखर हो जाता है, हर कोई ज्वालामुखी की तरह उबलने लगता है किंतु गीता, गंगा, गायत्री और गौमाता को अपनी माँ मानने वाले करोड़ों साहित्य धर्मियों के मन में एक बार भी यह बात नहीं आई कि वे खुलकर इस पत्रिका का विरोध कर सकें? यह तो सौभाग्य का विषय था कि राजस्थान के पूर्व न्यायाधीश परम श्रद्धेय एम.डी. वैष्णव जी का हृदय इस संपादकीय को पढ़कर विदीर्ण हो उठा और उन्होंने एक नोटिस संपादक को दिया। संस्कृति विरोधी इस तरह के साहित्यकार जरा डरपोक किस्म के होते हैं। वे तुरंत माफी माँगने की मुद्रा में आ गए और न केवल व्यक्तिगत क्षमा याचना की बल्कि पत्रिका के पृष्ठों पर भी क्षमा याचना का प्रकाशन किया। दुर्भाग्य से इस समय श्रद्धेय वैष्णव जी वयाधिक्य के कारण अस्वस्थ हैं, मैं उनके दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ। ऐसे वरिष्ठ जन हमें प्रेरणा देते हैं कि गलत का विरोध करने में पीछे नहीं रहना चाहिए। यह कार्य कोई भी व्यक्ति अपना सामाजिक कद और अवस्था को भूलकर भी संपन्न करें यही युगधर्म है। ईश्वर उन मूढ़मतियों को सद्बुद्धि दें जो स्वयं को साहित्यकार कहते हैं किंतु साहित्य का धर्म नहीं जानते। वे करोड़ों भारतवासियों की श्रद्धा को पद दलित करने का दुस्साहस पुनः न कर सकें इसलिए हम सबको जागृत रहना होगा। मेरा प्रेमचंद जी के परिजनों और पूज्य बापू के विचार से अनुप्राणित समस्त भारतीय जनों से भी अनुरोध है कि वे इस पत्रिका के कर्ताधर्ताओं को इस बात के लिए विवश करें कि वे भविष्य में इस तरह की टिप्पणियों का उपयोग करने से बचें।

मैं मध्य प्रदेश के समस्त साहित्य धर्मियों की ओर से उस पत्रिका, उसके संपादक और उनके जहरीले विचारों के विरुद्ध निंदा प्रस्ताव साक्षात्कार के संपादकीय के माध्यम से प्रेषित करता हूँ और यह आग्रह भी करता हूँ कि भविष्य में यदि इस प्रकार की कुत्सित टिप्पणियाँ आती हैं तो उन्हें एक साथ सैकड़ों न्यायिक प्रकरणों के लिए तैयार रहना चाहिए। हम संविधान और न्याय प्रक्रिया में विश्वास रखने वाले भारतीय हैं।

सदैव सा

-डॉ. विकास दवे

निदेशक एवं संपादक

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश शासन, भोपाल

अपनी पत्रिका के शीर्षक के अनुरूप भारत भर के वरिष्ठ रचनाकारों से संवाद स्थापित करते हुए साक्षात्कार लेकर उनकी साहित्यिक यात्रा और रचना कर्म से अन्य रचनाकारों को परिचित करवाना यह इस स्तम्भ का मुख्य हेतु रहेगा। यूँ तो 'साक्षात्कार' पत्रिका अपने नाम के अनुरूप इस तरह के साक्षात्कारों का पहले भी प्रकाशन करती रही है किंतु इसमें एक प्रयोग प्रारंभ किया है। विगत दिनों भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता के संदर्भ में एक पुस्तक पढ़ते हुए श्रद्धेय माखनलाल चतुर्वेदी जी और धर्मवीर भारती जी के संबंध में एक आलेख पढ़ते हुए यह ध्यान में आया था कि कोई भी साहित्यकार पत्रिका का संपादक बनते ही अपने आप को एक अलग पाले में खड़ा कर लेता है और रचनाकारों को दूसरे पाले में खड़ा कर देता है। यदि संपादक और रचनाधर्मियों के बीच सीधा संवाद स्थापित करने की सुचारू व्यवस्था बन जाए तो स्वाभाविक रूप से वह साहित्यिक पत्रिका साहित्यकार पाठकों के लिए भी अत्यंत आत्मीय हो जाती है। बस इसी बात को ध्यान में रखकर यह सोचा है कि पत्रिका में संपादकीय का आकार भले थोड़ा छोटा रहे किंतु मैं स्वयं चर्चा करके वरिष्ठ रचनाकारों के साक्षात्कार लूँ और उन्हें आप सबके समक्ष रखूँ। इस बहाने मेरा तो प्रशिक्षण होगा ही आप सब भी इन रचनाकारों के जीवनानुभवों से बहुत कुछ प्राप्त कर सकेंगे। इसी शृंखला में प्रस्तुत है यह साक्षात्कार।–सम्पादक

विजयानन्द से डॉ. विकास दवे की बातचीत

डॉ. विकास दवे : आप हिंदी साहित्य जगत में कब और कैसे आए?

विजयानन्द : कविता के प्रति मेरे मन में रुझान बचपन से था, मैं पाठ्य पुस्तकों की कविताएँ खूब पढ़ता था। महाकवि पं. श्यामनारायण पांडेय, राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी, महीयसी महादेवी वर्मा, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि की पाठ्य पुस्तकों में छपी कविताएँ मुझे जुबानी याद थीं। मैं उनसे इतना प्रभावित था कि कक्षा-9 से कविताएँ लिखना शुरू कर दीं। तब मेरी उम्र लगभग 13 वर्ष रही होगी। पाठ्य पुस्तकों में प्रकाशित इन्हीं प्रसिद्ध कवियों की कविताएँ ही प्रेरणा बनीं और मैं एक पुस्तिका में छोटी-छोटी कविताएँ लगातार लिखता रहा।

डॉ विकास दवे : आपकी पहली रचना कब और कहाँ प्रकाशित हुई?

विजयानन्द : मेरी पहली कविता विद्यालय की ही वार्षिक पत्रिका 'अंजना' में सन्-1984 ई. में प्रकाशित हुई। वह भोजपुरी में लिखी मेरी पहली कविता थी, उसी पत्रिका में विज्ञान पर मेरा आलेख भी प्रकाशित हुआ था। विद्यालय के पुस्तकालय में देश भर की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाएँ आती थीं। मैं उन्हें मन से पढ़ता था। मैंने नवनीत में एक लघुकथा भेजी और उसी वर्ष मुंबई से प्रकाशित प्रसिद्ध पत्रिका नवनीत में मेरी लघुकथा प्रकाशित हुई।

डॉ. विकास दवे : आप किन-किन विधाओं में लिखते हैं?

विजयानन्द : मैं हिंदी साहित्य की लगभग सभी विधाओं यथा-कविता, कहानी, लघुकथा, नाटक, एकांकी, उपन्यास, आलोचना, समीक्षा, जीवनी, आत्मकथा, अनुवाद, बाल साहित्य आदि में लिखता हूँ। साक्षात्कार विधा में भी मेरी दो पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिसमें सुप्रसिद्ध साहित्यकारों यथा- पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी, महीयसी महादेवी वर्मा, अमृतलाल नागर, महाकवि श्यामनारायण पांडेय, राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, गौरा पंत शिवानी, डॉ. रामविलास शर्मा, विनोद रस्तोगी,

रामेश्वर शुक्ल अंचल आदि का साक्षात्कार प्रकाशित है। डॉ. जगदीश गुप्त और डॉ. जयशंकर त्रिपाठी की सहमति से मैंने लोक जीवन को बिम्बित करने वाली 'लोकायित कविता' नामक नई विधा का प्रवर्तन भी किया। इसके अब तक 8 भाग प्रकाशित हो चुके हैं, जिसमें देश विदेश के लगभग 800 कवियों को स्थान मिला है। अनेक आलोचकों, समीक्षकों ने इसको स्थापित करने में अपने आलेख भी लिखे हैं। कविता तो मुझे सर्वाधिक प्रिय है, इसीलिए फुटकर कविताओं के अलावा मैंने खंडकाव्य, महाकाव्य भी लिखा है।

डॉ. विकास दवे : बाल साहित्य लेखन की सार्थकता पर आपके विचार क्या हैं?

विजयानन्द : बाल साहित्य तो जीवन आरंभ की पहली सीढ़ी है। बच्चों का मस्तिष्क कोरा कागज जैसा होता है। बच्चों के मन में कविताओं, कहानियों, नाटकों, जीवनियों आदि के द्वारा जो भी विचार भर दिए जाते हैं। बच्चों का मानसिक विकास उसी तरह का होता है। युवा अनुरूप सरल, सुबोध शब्दावली में बच्चों के साहित्य लेखन, पठन की बहुत आवश्यकता है। उनके संरक्षकों को बचपन से ही बच्चों में पत्रिकाएँ, पुस्तकें पढ़ने की आदत डालनी चाहिए। मोबाइल, कार्टून से ऊपर उठकर बाल साहित्य पढ़ने से बच्चों का मस्तिष्क भरपूर विकसित होता है। बाल साहित्यकारों, अध्यापकों को मातृभाषा में बच्चों को समझने योग्य विषय-वस्तु का चयन करना चाहिए। मैंने बाल साहित्य में लगभग दो दर्जन पुस्तकों का सृजन किया है, जिनका देश-विदेश की अनेक सरकारी, गैस संस्कारी संस्थाओं द्वारा क्रयादेश भी हुआ है और पुस्तक मेलों, विद्यालयों में वितरण भी किया गया है।

डॉ. विकास दवे : आप साहित्य के माध्यम से समाज को क्या संदेश देना चाहते हैं? क्या आपके साहित्य में कुछ दार्शनिक तत्व भी हैं?

विजयानन्द : मैं साहित्य के माध्यम से मनुष्य को मनुष्य बनने की प्रेरणा देता हूँ। संवेदना, उदारता, समन्वय, सामाजिकता, धार्मिक-भाषाई एकता और राष्ट्रवाद के प्रति अपने पाठकों को प्रेरित और सचेत करता हूँ। मैंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में भारतीय संस्कृति के जीवन दर्शन को पात्रों के माध्यम से स्थापित करने का भरपूर प्रयास किया है। वैदिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक नायकों पर आधारित मेरी पुस्तकें भारतीय दर्शन के साथ, आधुनिक नई पीढ़ी को प्रेरित करने के लिए तत्पर हैं। पाठकों ने इनका खूब स्वागत भी किया है।

डॉ. विकास दवे : वर्तमान में किन रचनाकारों के लेखन से आप प्रभावित हैं?

विजयानन्द : वर्तमान समय में तस्लीमा नसरीन की 'लज्जा' ने मुझे प्रभावित किया। डॉ. विवेकी राय का 'मंगल भवन, अमंगल हारी' उपन्यास भी अच्छा लगा। नरेंद्र कोहली, शिवानी, रामदरश मिश्र, सुरेंद्र मोहन आदि के उपन्यासों से भी मैं बहुत प्रभावित रहा हूँ। मैंने पितामह भीष्म, नेह निर्झर, उबलता लहू, लाजो आदि उपन्यास आधुनिक सामाजिक संदर्भों को ध्यान में रखते हुए लिखे हैं, जो काफी चर्चा में भी रहे हैं।

डॉ. विकास दवे : क्या आपको आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर प्रसारित होने का अवसर मिला है? क्या इसके माध्यम से भी साहित्य सेवा की जा सकती है? ये अनुभव कैसा रहा है?

विजयानन्द : आकाशवाणी के देशी-विदेशी चैनलों के अलावा दूरदर्शन के कई केंद्रों से मुझे काव्यपाठ करने, साक्षात्कार देने तथा बातचीत करने का अवसर मिला। आरंभ में कार्यक्रम अधिकारी तब तक कार्यक्रम नहीं देते थे, जब तक निदेशक की सहमति न हो, विवाद भी करना पड़ता था, किंतु अब

आसानी से बुलावा आ जाता है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में, प्रदेशों में मैं दर्शनार्थ, समारोह में जाता हूँ तो आकाशवाणी, दूरदर्शन के निदेशकों से मिलकर कोई न कोई अपना कार्यक्रम अवश्य रिकॉर्ड करवा लेता हूँ। साहित्य को प्रचारित, प्रसारित होने में आकाशवाणी, दूरदर्शन का भी बहुत बड़ा योगदान है। जो लोग पुस्तके नहीं पढ़ पाते, वे कम से कम आकाशवाणी, दूरदर्शन में सुन, देखकर प्रभावित तो होते ही हैं।

डॉ. विकास दवे : आप वर्तमान में कवि सम्मेलनों को कितना प्रासंगिक मानते हैं और क्यों?

विजयानन्द : कवि सम्मेलन अब मनोरंजन का केंद्र हो गए हैं। बड़ा साहित्यकार, कवि तो मंचों पर जाना ही नहीं चाहता। कुछ गीतों, राष्ट्रगीतों, गजलों को छोड़ दिया जाए तो शेष फूहड़ हास्य-व्यंग्य के प्रतीक बनकर ही रह गए हैं। हाँ कवियों ने इसे धनार्जन का माध्यम अवश्य बना लिया है।

डॉ. विकास दवे : आपकी नजर में साहित्य क्या है? फेसबुक, ट्विटर, ई-बुक आदि के साहित्य को किस दृष्टि से देखते हैं?

विजयानन्द : साहित्य उसे कहते हैं, जिससे सबका हित होता हो। वह समाज का प्रिज्म होता है, वह केवल दर्पण की तरह सामाजिक दृश्यों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं करता, वरन् उसमें प्रिज्म की तरह बहुरंगी कसावट होनी चाहिए। जिससे वह सामाजिक दृश्यों, घटनाओं का बहुरंगी विवेचन कर सके और उसे सोद्देश्य बना सके। फेसबुक का साहित्य क्षणिक आनंद का प्रतीक होता है, उसमें विस्तार की संभावना बहुत कम होती है। ट्विटर, व्हाट्सएप तो मात्र संदेश प्रसारक हैं। कुछ कविताओं, कहानियों को इसमें भेज कर लोगों की सलाह ली जा सकती है। इस वैज्ञानिक युग में ई बुक का चलन जरूर बढ़ा है, परंतु लैपटॉप, मोबाइल से पूरी पुस्तक पढ़ा जाना बहुत कठिन है। जो सुविधा छपी पुस्तकों को पढ़ने में है, वह इनमें कभी नहीं हो सकती। पुस्तकों का अपना एक अलग संसार होता है, जिसमें उन्हें पढ़ा जाता है, संग्रहित भी किया जाता है। सभी पुस्तक प्रेमियों के घर, एक छोटा पुस्तकालय तो बन ही जाता है।

डॉ. विकास दवे : साहित्य के क्षेत्र में मिलने वाले सरकारी व गैरसरकारी पुरस्कारों की वर्तमान स्थिति क्या है?

विजयानन्द : पुरस्कार तो हमेशा विवाद का विषय रहे हैं। ईमानदारी से कुछ प्रतिशत ही पुरस्कार मिल पाते हैं। शेष जुगाड़ से मिलते हैं। अब तो तुम मुझे दो, मैं तुम्हें दूँ, वाली संस्कृति भी विकसित हो रही है। सरकारी, गैर सरकारी सभी पुरस्कारों का यही हाल है। कोई अध्यक्ष, निदेशक यदि साहित्यकारों के प्रति संवेदनशील है तो जरूर ईमानदारी से सही निर्णय हो पाता है।

डॉ. विकास दवे : साहित्यकारों का जीवन बहुत संघर्षपूर्ण होता है। अपने जीवन की किसी महत्त्वपूर्ण घटना या संस्मरण का उल्लेख करें?

विजयानन्द : मैं बहुत से साहित्यकारों से मिला, महाकवि श्यामनारायण पांडेय, राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी, महीयसी महादेवी वर्मा, अमृतलाल नागर, डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन, रामेश्वर शुक्ल अंचल, भीष्म साहनी, विष्णु प्रभाकर, नरेश मेहता, डॉ. जगदीश गुप्त, विद्यानिवास मिश्र, शिवप्रसाद सिंह, नरेंद्र कोहली, रामदरश मिश्र, कुबेरनाथ राय आदि जैसे साहित्यकारों से लंबी बातें भी होती रहीं? कुछ के घर रात्रि विश्राम भी हुआ और साहित्य के विभिन्न पक्षों पर चर्चाएँ भी होती रहीं? एक बार विष्णु प्रभाकर जी ने कहा था की साहित्य को किसी सहारे की जरूरत नहीं होती, वह अपने दम पर फूलता, फलता है।

उसे किसी दल के दलदल में जाने की भी जरूरत नहीं है और भूमिका लिखा कर अपनी पुस्तक की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगाना या बैसाखी लगाना, अच्छा नहीं होता। यह बात एक बार नरेश मेहता जी ने भी कही थी, तब से मैं अपनी पुस्तकों पर किसी की भूमिका नहीं लिखवाई। कुछ साम्यवादी साहित्यकार जरूर मुझसे मिलना नहीं चाहते थे, इसलिए मैं भी उनसे मिलने नहीं गया।

डॉ. विकास दवे : आपके रचना धर्म में, आपके परिवार के सदस्यों की क्या भूमिका है?

विजयानन्द : भारतीय संयुक्त परिवार साहित्य सृजन का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। मेरे मँझले भाई, पत्नी, बच्चे यथोचित सहयोग करते रहे। कभी-कभी आपसी अनबन तो हो ही जाती है, फिर भी इन लोगों ने काफी सहयोग किया है। कुछ मित्रों, पाठकों, संपादकों, प्रकाशकों, संस्थाध्यक्षों, राजनीतिज्ञों का भी मुझे सहयोग मिलता रहा है। इसलिए सभी का आभारी हूँ।

डॉ. विकास दवे : आप लेखन, संपादन में सामंजस्य कैसे बैठाते हैं?

विजयानन्द : लेखन तो दुरूह कार्य है। विचार मस्तिष्क में उमड़ते-घुमड़ते रहते हैं, चिंतन के साथ उनका मंथन होता है, तब कुछ नई बातें सामने आती हैं, जिनको कागजों पर उतारा जाता है। विचारों को समय के अनुरूप नायकों के चरित्र में ढालकर प्रस्तुत करना कठिन होता है। भाषा की रवानी (सरलता), कहने की कला और बुद्धि का चातुर्य, रचना-धर्म का मूल होता है। इसीलिए कहा जाता है कि कालजयी कृतियों का सृजन आसान नहीं होता।

संपादन तो लेखकों की रचनाओं का यथोचित संग्रह है। देशकाल के हिसाब से विषयों का चयन कर रचनाएँ मँगाना, उन्हें संशोधित, संपादित कर प्रेस को देना और सारांश स्वरूप संपादकीय लिखना भी कठिन कार्य है। समय के हिसाब से लेखन, संपादन में सामंजस्य बैठाना ही पड़ता है। हाँ यह अवश्य है कि दोनों कार्य, एक समय पर- एक साथ नहीं हो सकता।

डॉ. विकास दवे : आपकी अब तक कितनी पुस्तकें प्रकाशित हैं? आज के दौर में पुस्तकों की पठनीयता पर आपके क्या विचार हैं?

विजयानन्द : मैं तो 'स्वांत: सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा' के क्रम में हिंदी लेखन में आया। मेरी अब तक हिंदी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में 81 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आज से 10 वर्ष पूर्व कोई रचना यदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो जाती थी या पुस्तकें पुस्तकालय या पुस्तक मेलों से किसी के पास पहुँचती थीं तो लोग पत्र भेजते थे। उसी से पता चलता था की पाठक मेरे साहित्य से कितना जुड़ा है। मेरे संपूर्ण साहित्य पर आए पत्रों का संक्षिप्त संग्रह 'विजयानन्द के पत्र' प्रकाशित हो चुका है। व्यक्तित्व-कृतित्व पर भी लगभग 7 पुस्तकें प्रकाशित हैं। देश के कई विश्वविद्यालयों में मेरे साहित्य पर शोध (एमफिल, पीएचडी) हो चुका है। इससे स्वत: स्पष्ट हो जाता है की पुस्तकें पठनीय होती हैं, तभी पाठक पत्र लिखते हैं। आज के दौर में अवश्य पढ़ना-लिखना कम हो गया है। कुछ साहित्यकार लिखने के लिए भी लिख रहे हैं, इसलिए विपुल साहित्य प्रकाशित तो हो रहा है, लेकिन पाठकों तक नहीं पहुँच पा रहा। अब पाठक भी वे रह गए हैं जिन्हें या तो लिखता है, बोलना है या शोध करना है। पुस्तकालयों के लिए पुस्तकों की खरीद में सरकारें भी कम रुचि दिखा रही हैं, फिर भी सृजन यज्ञ जारी है। वैश्विक स्तर पर हिंदी में खूब लिखा जा रहा है और पत्र-पत्रिकाएँ भी संवाहक बनकर हिंदी का खूब प्रचार कर रही हैं।

सम्पर्क : विजयानन्द, प्रयागराज
मो. 919335138382

डॉ. जय वैरागी

साहित्य का वैचारिक अधिष्ठान

हिंदी साहित्य में सशक्त नारी पात्र-एक विमर्श चाहे पौराणिक युग रहा हो या मध्य युग अथवा अर्वाचीन भारत, हिंदी साहित्य का प्रबल पक्ष है उसके साहित्य में भारतीय नारी का सशक्त चित्रांकन और उसका शब्दांकन। यह सत्य है कि स्त्री पक्ष के बिना तो साहित्य लेखन किया जाना सम्भव है ही नहीं किंतु स्त्री पक्ष की उज्ज्वल स्वातंत्र्य छवि को उसकी स्वतंत्र अस्मिता के साथ, गरिमापूर्ण धवलता के साथ रेखांकित किया जाना ही भारतीय साहित्य की अनिवार्यता का एक प्रबल पक्ष है एवं साहित्यकारों की उस चिंतनधारा का रेखांकन भी जो अपने साहित्य में स्त्री कथानक को मुखर अभिव्यक्ति देता है। आर्यावर्त या वृहद भारत के इतिहास में हमारी सांस्कृतिक चेतना के दो मुखर पक्ष हैं। एक है स्त्री का वैदिक या उत्तर वैदिक काल अथवा प्राचीन भारत का गरिमामय अस्तित्व तो दूसरा मध्ययुगीन बर्बरता के कर पाश में छटपटाता उसका नैसर्गिक आचरण, जो आक्रांताओं की कुत्सित कामनाओं की बलिवेदी पर नारी संवेदनाओं को बलात कुचलता चला गया और दे गया स्त्री प्रजाति को इतिहास की छिन्न विक्षिप्त विचारधारा एवं नियमों की जटिल बन्धनाएँ। प्राचीन युगीन स्त्री की समग्र गरिमा उसका स्वातंत्र्य अक्षुण्ण था यद्यपि उसका आचरण, उसकी गरिमा किसी बंधना में नहीं बाँधी जा सकी किंतु वह आचरण निरंकुश नहीं था। उसे अपना पक्ष रखने का पूर्ण अधिकार था -वेद सम्मत। पाश्चात्य साहित्य विचारधारा में स्त्री केवल कल्पित भोग की विषय वस्तु से अधिक कुछ भी नहीं। उसका प्रभाव उतना लाक्षणिक भी नहीं जिसकी गरिमा का वर्णन भारतीय साहित्य की भाँति सुसंस्कृत रूप से किया जा सके। इसीलिए विशेष सन्दर्भ को छोड़ दें तो शेष पाश्चात्य साहित्य, स्त्री की उन भाव संवेदनाओं को उस स्तर तक अभिव्यक्त करने में कदाचित रीता ही रहा, जो संवेदनाएँ मुखर रूप से आर्य साहित्य और हिंदी साहित्य में प्रकट हुई है।

यहाँ लेखक का दृष्टिकोण इस स्तर पर या किसी भी स्तर पर भारतीय और पाश्चात्य साहित्य की तुलना का नहीं है किंतु आलेख का उद्देश्य सम्पूर्ण स्त्री प्रजाति का वह सशक्त पक्ष है जो कदाचित भारतीय हिंदी साहित्य में उस तुलना से ज्यादा मुखर होकर अभिव्यक्त हुआ है। वह शेक्सपियर के हेमलेट में नायक की तरह यह नहीं कहता कि ए बेवफाई तेरा दूसरा नाम ही औरत है। हिंदी साहित्य में छायावाद का युग तो मानो स्त्री साहित्य के लिए ईश्वर का साक्षात् वरदान ही माना जाना चाहिए और यह सिद्ध भी हुआ ही है। इस युग, इस कालखंड ने अनगिनत मूर्धन्य साहित्यकारों में साक्षात् सरस्वती का आगमन उनकी लेखनी में स्वस्फूर्त रूप से परिलक्षित कर नदी की निर्मल धारा के सदृश बहता हुआ जनमानस को आप्लावित

करता भी है जो अन्य किसी कालखण्ड में इस स्तर पर बहुतायत परिलक्षित नहीं हुआ है। यदि भक्ति काल की अपनी सात्विक परम्परा मीरा के एकतारा में 'ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी' मीरा थी तो रीतिकाल का साहित्य, प्रामाणिक श्रृंगार की बिंधी हुई परम्परा में आबद्ध हो कर शब्दों में गुँथा हुआ दृष्टिगत होता है।

हिंदी साहित्य के विस्तार के लिए इन सभी कालखण्डों का अपना अपना दृढ़ सहयोग स्तम्भ के रूप में उद्बोधित है किंतु छायावाद में स्त्री पात्रों की मनोदशा और स्वयं उन पात्रों का नैसर्गिक संवाद हिंदी भाषा और साहित्य दोनों को सुदृढ़ता प्रदान करता है। लेखक और उन पात्रों के अनगिनत उद्धरण हैं जिन्होंने न केवल जनमानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी अपितु उन कालजयी स्त्री पात्रों ने अपने रचनाकारों को साहित्य में सदा-सदा के लिए अमर कर दिया। यहाँ यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि लेखक यदि अपनी कृति से प्रकाश पुंज बनकर स्थापित हुए तो वे जीवंत पात्र उस प्रकाश स्रोत की रश्मियाँ बन कर अँधेरे पर विजय अभियान में लिप्त रहे हैं। कामायनी में प्रसाद की लेखनी हो अथवा मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में स्त्री पात्रों का शब्दों में संजीवित अभिनय। धर्मवीर भारती की गहन सोच में डूबी हुई कलम हो या हरिऔध की शब्द धर्मिता। महादेवी जी की बोलती हुई रचनाओं में स्त्री की छटपटाहट है तो निराला जी की गहन तपस्या शब्दों की घनी छाया में इन सशक्त महिला पात्र की संरक्षक बन कर उनका उपचार करती परिलक्षित होती है। क्या-क्या नहीं लिखा गया है। अनगिन सूक्ष्म भावों का सीधा अंतरण हृदय की संवेदना भित्ती से निकल कर पृष्ठ पर फैलायी गयी। जो सीधे पाठकों की भाव संवेदना को भीतर तक झकझोरती है।

इन प्रमुख साहित्यकारों में कहीं नीरज का अपना भाव पक्ष सीधे-सीधे प्रहारक है तो उनकी शब्दिता सरस्वती के मंच से जनसामान्य को सीधे सम्बोधित करती है। यह देवी शारदा के आशीष का साहित्यकार है और वह कहीं भी ठहरता नहीं है। छायावाद के साहित्य में प्रमुख आकर्षण ही यही है कि उस चरित्र को अपनी वाणी मुखर करने का सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त है। वह प्रत्येक बिंदु को जीवन के अतीत से जोड़ कर उसके साहचर्य में जीवन के सुख अथवा दुख के बीते क्षण को अपने अनुरूप रेखांकित कर प्रस्तुत करने में समर्थ है। साहित्य की सबसे सशक्त कालजयी कृति में यदि कामायनी का नाम न लिया जाए तो यह आलेख ही अधूरा रह जायेगा। कामायनी हिमखण्डों की धवल शुचिता के मध्य संसार के प्रथम पुरुष का अपनी अर्द्धांगिनी संग संवाद का मृदुल कथानक है। भाव भाषा गरिमा का शब्दांकन इसे सुदृढ़ता प्रदान करता है तो स्त्री की कोमलता शब्दों से छन कर उसकी क्लांत पीड़ा सहित हृदय में भीतर तक धँस जाती है। उज्ज्वल वरदान चेतना का सौंदर्य जिसे सब कहते हैं। जिसमें अनंत अभिलाषा के सपने जगते रहते हैं। प्रसाद जी की लेखनी को जरा सूक्ष्मता से अनुभूत करने का यत्न तो करें। क्या पाश्चात्य साहित्य में यह उद्घोषणा स्वीकार्य है। क्या इतनी सूक्ष्मता उस संस्कृति में पाई जाती है? 'मैं उसी चपल की धात्री हूँ गौरव महिमा हूँ सिखलाती। ठोकर जो लगने वाली है उसको धीरे से समझाती। मैं देव-सृष्टि की रति-रानी निज पंचबाण से वंचित हो। बन आवर्जना-मूर्ति दीना अपनी अतृप्ति-सी संचित हो।' हिंदी के जनमानस को इससे ज्यादा स्वयं के अस्तित्व को प्रकट करती स्त्री का कथानक कहाँ मिलेगा। यहाँ तथ्य भाव भाषा के साथ महानायिकाओं के चरित्र का भी तो है। 'अवशिष्ट रह गई अनुभव में अपनी अतीत असफलता-सी। लीला विलास की खेद-भरी अवसादमयी श्रम-दलिता-सी।' स्त्री है तो मानवीय मन उसकी अंतर्निहित चेतना में घुमड़कर शब्दों में बरबस बरस ही जाता है। कुछ

पीड़ा है कुछ अवसाद कुछ हिचक कुछ ग्लानि कुछ संताप कुछ वेदना। पर कर्म है कि गतिमान है। 'मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ मैं शालीनता सिखाती हूँ। मतवाली सुंदरता पग में नूपुर सी लिपट मनाती हूँ।' यहाँ नूपुर मानो आभूषण न होकर सम्पूर्ण स्त्री जगत का एक प्रतिनिधित्व हो चला है जो उसके अस्तित्व के साथ जुड़ कर जीवन के समग्र गान के ध्वनि नाद में गुंजायमान है। यह पायल प्रसाद जी के काव्य में नारी मनोदशा का एक जीवित व्याकरण है। 'यह आज समझ तो पाई हूँ मैं दुर्बलता में नारी हूँ। अवयव की सुंदर कोमलता लेकर मैं सबसे हारी हूँ। पर मन भी क्यों इतना ढीला अपना ही होता जाता है, घनश्याम-खंड-सी आँखों में क्यों सहसा जल भर आता है?'

क्या यह अपनत्व है। कोई विचार है अथवा कटु सत्य अथवा सब कुछ देख कर भी निस्तब्ध अवस्था में चुप रह कर इसे नियति मान कर उसी साहचर्य में समर्पित होकर जीने की कला, 'सर्वस्व-समर्पण करने की विश्वास-महा-तरु-छाया में। चुपचाप पड़ी रहने की क्यों ममता जगती है माया में? निस्संबल होकर तिरती हूँ इस मानस की गहराई में। चाहती नहीं जागरण कभी सपने की इस सुधराई में। मैं जब भी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ। भुजलता फँसा कर नर-तरु से झूले सी झोंके खाती हूँ। इस अर्पण में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है। मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ इतना ही सरल झलकता है।'

यहाँ विषय कुछ और नहीं बस स्त्री का अपना पक्ष है जो यथार्थ को छू कर स्वयं के अस्तित्व को अभिप्रमाणित करता है। यह उस नेपथ्य अस्तित्व के नादघोष हैं जो स्त्री के स्त्री होने का संकल्प पत्र है। यहाँ एक स्त्री की मनोदशा उसका अपूर्ण संकल्प है जो छटपटाहट के साथ छनकर बाहर आता है। वह इस सर्वस्व समर्पण में भी प्रतिभेंट में कुछ नहीं चाहती। बस अर्पण के सिवाय कुछ नहीं। यह भारतीय महिला का एक सांगोपांग चरित्रचित्रण है जो समग्रता से अर्पण और समर्पण का एक ग्राह्य कथानक है एक स्त्री और क्या तलाशे? बालपन के माध्यमिक कक्षा के पाठ्यक्रम में अंकित कहानी पुरस्कार की नायिका मधुलिका स्मृति से विस्मृत ही नहीं होती। नारी के लिए स्वामी धर्म है तो किंतु राष्ट्र धर्म उस स्त्री धर्म से तुलनीय नहीं है। मगध का चिरशत्रु! ओह, उसकी विजय! कौशल-नरेश ने क्या कहा था-'सिंहमित्र की कन्या।' सिंहमित्र, कौशल का रक्षक वीर, उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है? नहीं, नहीं, मधुलिका! मधुलिका!!' जैसे उसके पिता उस अंधकार में पुकार रहे थे। वह पगली की तरह चिल्ला उठी। रास्ता भूल गई। मधुलिका का कर्तव्य बोध दोनों स्तर पर उद्वेलित है जो अपने प्रेमी के भीतरी राजद्रोह की सूचना अंतिम वक्त पर राजा को भेज कर उसे दंडित करवा कर अंत में उसके साथ स्वयं के लिए भी 'तो मुझे भी मृत्युदण्ड मिले!' दण्ड विधान तय कर लेती है।

यह कहानी साधारण नहीं है। आचार्य चतुरसेन की 'वैशाली की नगर वधू' कागज पर उतरा हुआ कोई साधारण शब्द विन्यास नहीं है। आम्रपाली की संघर्ष गाथा और सौंदर्य से रिसते हुए वैराग्य का उद्वेलित कथाक्रम है। तो कहानी 'दुखवा कासे कहूँ' मुगल सम्राट की प्राण प्रिय प्रेयसी के अपने शासक पति द्वारा उलाहना दिए जाने पर किये गए आत्म बलिदान की कहानी है जो हृदय की भित्तियों को छिन्न-भिन्न कर मर्माहत कर देने वाली नारी को समर्पित रचना का सामाजिक उद्घोषण है। धर्मवीर भारती की कनुप्रिया तो मानो सरस्वती की लेखनी में साक्षात् भगवती की कलम से रचा बसा काव्य है, जिसमें प्रगाढ़ आनन्द, पीड़ा

के अनन्य स्रोत से रिसे हुए घावों की औषधि भी है तो उपचार भी। विरह की अनन्त संधि बेला तक जा कर लिखा गया यह काव्य पाठक की पलकों को उत्तरोत्तर नम कर देता है। 'मन्त्र-पढ़े बाण-से छूट गये तुम तो कनु, शेष रही मैं केवल, काँपती प्रत्यंचा-सी अब भी जो बीत गया, उसी में बसी हुई अब भी उन बाँहों के छलावे में कसी हुई। जिन रूखी अलकों में मैंने समय की गति बाँधी थी-हाय उन्हीं काले नागपाशों से दिन-प्रतिदिन, क्षण-प्रतिक्षण बार-बार डँसी हुई।' धर्मवीर जी की कनुप्रिया स्वयं के लिए तो कुछ भी नहीं माँग रही किंतु इतिहास में गुँथे हुए अनाम प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की आकांक्षी अवश्य है। 'अब सिर्फ मैं हूँ, यह तन है-और संशय है-बुझी हुई राख में छिपी चिन्गारी-सा रीते हुए पात्र की आखिरी बूँद-सा। पा कर खो देने की व्यथा-भरी गूँज-सा...' विरह की पगडन्डी पर ठहरा हुआ यह काव्य हिंदी साहित्य की अनुपम उपलब्धि ही मानी जानी चाहिए। 'नीचे की घाटी से ऊपर के शिखरों पर जिसको जाना था वह चला गया-हाय मुझी पर पग रख मेरी बाँहों से इतिहास तुम्हें ले गया! सुनो कनु, सुनो क्या मैं सिर्फ एक सेतु थी। तुम्हारे लिए लीलाभूमि और युद्धक्षेत्र के अलंघ्य अंतराल में! अब इन सूने शिखरों, मृत्यु-घाटियों में बने सोने के पतले गुँथे तारों वालों पुल- सा निर्जन निरर्थक काँपता-सा, यहाँ छूट गया-मेरा यह सेतु जिस्म शब्दों का।

यह विकट गहन व्यूह केवल नारी अस्मिता का प्रामाणिक प्रदर्शन है। महाकवि निराला ने जब लिखा कि कौन-कौन तुम परिमल वासना म्लान मना भू पतिता सी। वात हता विच्छिन्न लता सी किसके चरणों की दासी' तो वेदों में प्राप्त स्त्री के समस्त अधिकार दासता की इन बेड़ियों को काटने को उद्यत हो चले। यही इन लेखकों की कृति में नारी अस्मिता की चारित्रिक सुदृढ़ता है। 'समझ नहीं सकी, हाय, बँधा सत्य अञ्चल से खुलकर कहाँ गिरा। बीता कुछ काल, देह-ज्वाला बढ़ने लगी, नन्दन निकुञ्ज की रति को ज्यों मिला मरु, उतरकर पर्वत से निर्झरी भूमि पर पंकिल हुई, सलिल-देह कलुषित हुआ। करुणा को अनिमेष दृष्टि मेरी खुली, किन्तु अरुणार्क, प्रिय, झुलसाते ही रहे, भर नहीं सके प्राण रूप-बिन्दु-दान से। तब तुम लघुपद-विहार अनिल ज्यों बार-बार।'

महादेवी जी का काव्य अतुलनीय है। छायावाद और रहस्यवाद की सम्मिलित विचारधारा में महादेवी जी जब स्वयं नायिका बन कर अध्यात्म की पावन देहरी पर स्थूल देह की स्थिरता को गतिशीलता प्रदान करते हुए सूक्ष्म में रूपान्तरित करती हैं तो नारी मन से निकल कर यह काव्य, नारी पात्र के काव्य में अतुलनीय हो ही जाता है। 'मैं नीर भरी दु:ख की बदली! विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा कभी न अपना होना, परिचय इतना इतिहास यही, उमड़ी थी कल मिट आज चली।' या दूसरे शब्दों में लिखें कि 'कौन तुम मेरे हृदय में? कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित? कौन प्यासे लोचनों में घुमड़ घिर झरता अपरिचित? स्वर्ण-स्वप्नों का चितेरा नींद के सूने निलय में! कौन तुम मेरे हृदय में? कौन बन्दी कर मुझे अब बँध गया अपनी विजय में? कौन तुम मेरे हृदय में?'

हिंदी साहित्य में यदि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और उनकी कृतियों का उल्लेख ना हो तो हिंदी साहित्य उन नायिकाओं के अवदान से यह साहित्य जगत अपूर्ण ही माना जायेगा। जैसा यशोधरा का एक क्षत्राणी चरित्र अपने दायित्व से उभर-उभर कर सामने आया। 'स्वयं सुसज्जित करके क्षण में, प्रियतम को, प्राणों के पण में, हमीं भेज देती हैं रण में क्षात्र-धर्म के नाते। सखि, वे मुझसे कहकर जाते।' एक क्षत्रिय कुल की कन्या क्या चाहती है। स्वामी से पृथक जीवन की कल्पना करना क्या संभव है। शायद नहीं पर इन पंक्तियों

ने तो नायिका के चरित्र के साथ गुप्त जी को भी अमर कर दिया। यह भारत भूमि की विरांगनाएँ हैं। 'हो कठोर वज्रदपि अब कुसुमादपि सुकुमारी, आर्य पुत्र दे चुके परीक्षा अब है मेरी बारी।' जितना अवदान गुप्त जी ने इन महानायिकाओं के चरित्र को प्रस्तुत करने में दिया है उतना सम्भवत: हिन्दी साहित्य में अन्य कोई साहित्यकार नहीं दे पाया। 'हेमपुंज हेमन्तकाल के इस आतप पर वारूँ, प्रियस्पर्श की पुल्कावलि मैं कैसे आज बिसारूँ? किन्तु शिशिर, ये ठण्डी साँसें हाय! कहाँ तक धारूँ? तन गारूँ, मन मारूँ, पर क्या मैं जीवन भी हारूँ? मेरी बाँह गही स्वामी ने, मैंने उनकी छाँह गही, मैंने ही क्या सहा, सभी ने मेरी, बाधा-व्यथा सही।'

यह सिद्धार्थ के असमय, अकारण बुद्धत्व से उपजे क्लांत छिटके हुए यौवन का करुण एकालाप है जिसे सुनना, समझ पाना क्या इतना सहज है। नारी जीवन की इस विरह वेदना को भाग्य ने क्या वास्तविक रूप में इस तरह लिखा था। 'इस अँधेरे में जलेगा दीप मेरे साथ, कब तक मैं अकेली हूँ तथागत लौट आओ। लौट आओ अनबूझे अभिसार का तुमको निमंत्रण लौट आओ। दृढ़ अवांच्छित प्यार का तुमको निमंत्रण, चाँदनी आँचल ओढ़ा इस चन्द्र को कब तक रहूँ ढँक, मैं नवेली हूँ तथागत लौट आओ।'

बड़ौदा विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त प्राध्यापक डॉ. विष्णु विराट जी की रचनाओं पर आधारित एक विशेषांक हाथ में आया। अद्‌भुत सोच, स्निग्ध शब्दावली, झंकृत शब्द रागिनी! कथानक काव्य तन-मन को झिंझोड़ने वाली रचनाओं का ऐसा लेखन ही इस समय में तो अवर्णनीय माना जाना चाहिए। भाव, भाषा, शिल्प, कथ्य हर बिन्दु पर आप रचनाओं का परीक्षण करें! 'आँज कर अंधी प्रतीक्षा आँख में यह सदी जैसे, अहिल्या हो गयी' या 'बाण मत मारो विषैला, पीठ पर राम तुम कंचन हिरण को छोड़ दो। कल प्रभो इतिहास पूछेगा कहानी एक मृग था, एक थी नादान रानी रक्षकों के अर्थ में भक्षक जुड़ेंगे। संहिताएँ जल रही हैं धार का मुख मोड़ दो।' पृथक-पृथक समय पर लिखा गया यह लेखन नारी पात्रों को नवीन ऊँचाइयाँ देता गया। महाभारत से पूर्व, गीता से पूर्व, रामायण से भी पूर्व युग जहाँ कहीं गार्गी, अपाला, घोषा, मैत्रेयी, अनसूया, अदिति के वैदिक स्वरों में यह चिंतन था तो कालांतर की समय धारा में भावों की यह नदी कभी सूखी नहीं। कालिदास की नायिकाओं ने भले ही शृंगार में इसे जीवित रखा हो तो भवभूति, कल्हण बाण जैसे विद्वजन लेखनी से अपूर्त नहीं रहे। दक्षिण की राज संस्कृति ने अनेक सुपरिचित ग्रन्थों में नारी अस्मिता को महानायिका के रूप में प्राणदान दिया है। सुदूर द्वीपों से कोई मुस्लिम विद्वान की कलम उठती है- 'किस सुदूर आलोक कानन में बंदिनी तुम सीता, कब तक जलेगी मेरे वक्ष में यह विरह की चिता।' समय समय पर कहीं द्रोपदी की अविस्मरणीय पीर प्रकट होती है तो कैकेयी के अनुताप भी। दण्डकारण्य में मीनाक्षी, शूर्पणखा जैसे चरित्र की व्याख्या मेरी कलम ने भी अपने उपन्यास दंडकारण्य में कर दी है। हिंदी साहित्य भाव, भाषा, शृंगार, रस से परिपूर्ण है। यहाँ की कृतियाँ पढ़ते समय लगता है कि पाठक गौण है। बस कृति बोल रही है। बस आप इन महानायिकाओं के रूप में अपने वक्ष में भीतर तक उतरते जाएँ। अधिकतम नारी पात्र लेखन तो पुरुषों की कलम से चलायमान है। फिर नारीगत मनोभाव लेकर एक पुरुष कवि भावोक्त रूप से यह समागम किस तरह कर लेता है। क्या लेखक का यह रूप शिव का अर्धनारीश्वर रूप तो नहीं है। शिव को जब कोई नहीं जान पाया तो सत्य और सुंदर को जान पाना तो संभव ही नहीं। बात सूक्ष्म है आप इससे कितने सहमत हैं आप पर छोड़ता हूँ।

सम्पर्क : डॉ. जय वैरागी
सचिव वनांचल साहित्य परिषद जिला झाबुआ

शिवचरण चौहान

अमर हैं घाघ की लोकोक्तियाँ

लोक कवि घाघ आज भी लोगों के कंठ में जिंदा हैं। आज भी लोग घाघ की कहावतें बात-बात में सुनाते और समझाते हैं। घाघ लोक ज्योतिषी थे उन्हें लोक/ जन मानस की समस्यायों का पर्याप्त ज्ञान था। उनकी बातें आज भी प्रासंगिक हैं। उनकी नीति, मौसम, कृषि विषयक कहावतें आज भी प्रसिद्ध हैं।

घाघ के जन्म स्थान और जन्म समय के बारे में अभी भी शोध/ खोज की आवश्यकता है।

विद्वानों ने ज्यादातर बातों में अनुमान को ही आधार बनाया है। हिन्दी शब्द सागर के सम्पादकों का कथन है- 'घाघ गोंडा जिले के रहने वाले थे। वह अनुभवी व्यक्ति थे। उनकी कही गई बहुत सी कहावतें उत्तर भारत में प्रसिद्ध हैं, खेती-बाड़ी, वस्तु, काल तथा लग्न-मुहूर्त आदि के सम्बन्ध में इनकी विलक्षण लोकोक्तियों को किसान व ग्रामीण, साधारण लोग बहुत सुनाते हैं। जी. एन. मेहता, आई. सी. एस. अपनी -संयुक्त प्रान्त की कृषि सम्बन्धी कहावतें' में लिखते हैं- 'घाघ नामक एक अहीर की उपहासात्मक कहावतें भी स्त्रियों पर आक्षेप के रूप में हैं।'

रायबहादुर बाबू मुकुन्दलाल गुप्त 'विशारद' अपनी 'कृषि रत्नावली' में लिखते हैं- 'कानपुर जनपद के बिल्हौर के आसपास किसी गाँव में सन 1696 (संवत 1753) में घाघ का जन्म हुआ था। घाघ जाति के ग्वाला अहीर थे। संवत 1780 में इन्होंने कविता में नीति बड़ी जोरदार भाषा में कही।'

शिवसिंह सरोज ने 'कविता कौमुदी (प्रथम भाग) में लिखा है, 'घाघ, कन्नौज निवासी थे। इनका जन्मकाल संवत 1753 कहा जाता है। ये कब तक जीवित रहे, न तो इसका ठीक-ठीक पता है और न इनके कुटुंब के विषय में मालूम है।'

पीर मुहम्मद मूनिस का मत है- 'घाघ के पद्यों की शब्दावली को देखते हुए अनुमान करना पड़ता है कि घाघ चम्पारन और मुजफ्फरपुर जिले के उत्तरी सरहद पर, औरैया मठ या बैर गनिया अथवा कुंडवा चैनपुर के समीप किसी गाँव के थे।' रामनरेश त्रिपाठी मानते हैं कि घाघ उत्तर प्रदेश के कन्नौज के निवासी थे। उनका यह भी कहना है कि घाघ का प्रौढ़ समय दिल्ली दरबार में अकबर के पास बीता और वह दुबे ब्राह्मण थे।

घाघ अनुभवी और ज्ञानी व्यक्ति को कहा जाता है। इस प्रकार घाघ कृषि कर्म में पारंगत किसान ही हो सकता है। कुछ विद्वानों ने घाघ को अहीर ग्वाला कहा है, अहीर में चार जातियाँ प्रसिद्ध हैं। अहीर, ग्वाला, घोसी, कमरिया आदि। घाघ ब्राह्मण थे अथवा अहीर इस विवाद से हट कर लोग घाघ को जन कवि मानते हैं। कुछ लोग उन्हें विक्रमादित्य अथवा राजा भोज का समकालीन मानते हैं। कुछ विद्वानों का

कहना है कि घाघ ने ज्योतिष का ज्ञान उज्जैनी में जाकर प्राप्त किया था।

घाघ कहते हैं-

'विप, टहलुआ चिक्कधन औ बेटी कर बाढ़।

एहु से धन जो ना घटे, टोकरे जड़न से रार।।'

अर्थात् ब्राह्मण को नौकर रखने (चूँकि ब्राह्मण शारीरिक परिश्रम नहीं करते।) कसाई के यहाँ नौकरी करने से और लड़कियों के ज्यादा पैदा होने से भी यदि धन घटता नहीं तो अपने से धनवान से झगड़ा कर लेना चाहिए।

गिरिधर कविरा की तरह घाघ में भी जो गम्भीर बात को सहज ढंग से कहने का तरीका है, वह कबीर की परम्परा को ही आगे बढ़ाता है-

'ना अति बरखा, ना अति धूप।/ना अति बकता, ना अति चूप।।'

अधिक बरसात ठीक नहीं है न ही अधिक धूप का निकलना, न अधिक बोलना ठीक है और न अधिक चुप रहना।

स्वास्थ्य

प्रात समै खटिया से उठिके, पीवै ठंडा पानी।

ता घर वैद कबो नहिं आवे, बात घाघ की मानी।।

जो आदमी सुबह उठकर ठंडे पानी का सेवन करता है, उसे कभी भी अपने घर वैद्य (डॉक्टर) को बुलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती अर्थात् वह स्वस्थ रहता है।

चैते गुड़, बैसाखे तेल, जेठे पन्थ असाढ़े बेल।

सावन साग न भादो दही, कुआर करेला न कातिक मही।।

अगहन जीरा पूसे धना, माघे मिश्री फागुन चना।

ई बारह जो देय बचाय, वहि घर बैद कबौं न जाय।।

जो आदमी चैत महीने में गुड़, बैसाख मास में तेल, जेठ में यात्रा, आसाढ़ माह में बेल, सावन में सुक्सा साग, भादौं में दही, अश्विन में करेला, कार्तिक में मट्ठा (छाछ), मार्गसिर में जीरा, पौष (पूष) में धनिया, माघ में मिश्री और फागुन में चना अर्थात् बारह महीनों में इन बारहों चीजों से बचाव रखता है, वह स्वस्थ रहता है, और उसके घर में वैद्य कभी नहीं जाता।

सावन हरै हर्र भादों चीत। क्वार मास गुड़ खायउ मीत।।

कातिक मूली अगहन तेल। पूस में करै दूध से मेल।।

माघ मास घिउ खींचरि खाय। फागुन उठि के प्रात नहाय।।

चैत मास में नीम बेसहनी। वैसाखे में खाय जड़हनी।।

जेठ मास जो दिन में सोवै। ओकर जर असाढ़ में रोवै।।

घाघ कहते हैं कि मित्र सावन के महीने में हर्र, भादों के महीने में चिरायता, क्वाँर के महीने में गुड़ का सेवन करो। कार्तिक के महीने में मूली, अगहन में तेल, पूस में दूध का इस्तेमाल करो। माघ के महीने में खिचड़ी में घी मिलाकर खाओ, सुबह नहाओ, चैत महीने में नीम और बैसाख में जड़हन के भात का

सेवन करना चाहिए। ये सब चीजें अच्छे स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम हैं।

इसी प्रकार जेठ के महीने में दिन में सोनेवाले आदमी को आसाढ़ में बुखार नहीं होता।

फागुन भुइयाँ खेड़े हर हो चार, घर हो गिहविन गऊ दुधार।
अरहर दाल, चड़हन क भात, गागल निबुआ और घिउ तात।।
खाँड दही जो घर में होय, बाँके नयन परोसै जोय,
कहें घाघ तब सबही झूठ, उहाँ छोड़ि इहवै बैकुंठ।।

घाघ कवि कहते हैं कि जिस घर-परिवार के पास गाँव के निकट ही बोने की जमीन हो, उसके चार हल चलते हों, घर के काम में सुघड़ औरत हो, दूध देने वाली गाय आँगन में बँधी हो, अरहर की दाल तथा जड़हन का भात हो, रसभरा नींबू और गर्म-गर्म घी हो, घर शक्कर और दही से भरपूर हो तथा बाँकी चितवन वाली नारी ये सब खाद-पदार्थ खिलाने वाली पत्नी हो ऐसा घर इस संसार में बैकुंठ के समान है।

जाको मारा चाहिए, बिन लाठी बिन घाव।
वाको यही बताइए, घुइयाँ पूरी खाव।।

आप जिस आदमी को लाठी या बिना किसी दूसरे हथियार से मारना चाहते हो, उसे केवल घुइयाँ और पूड़ी खाने की सलाह दे दो, वह आपके सामने टिक ही नहीं पाएगा, ये दोनों चीजें शरीर के लिए नुकसानदायक हैं।

अंतरे खतरे डंडै करै।/ताल नहाय ओस माँ परे।।/दैव न मारै अपुबइ मरै।

जो आदमी अपने शरीर को साधने के लिए प्रतिदिन कसरत नहीं करता और बीच-बीच में दो-दो, चार-चार दिन छोड़कर करता है, और कुएँ के पानी के बजाय तालाब में नहाता है और खुले चौवारे का पानी पीता है, उसे दैव अर्थात् भगवान को मारने की जरूरत नहीं पड़ती, अपनी बेवकूफी के कामों से वह खुद ही मर जाता है।

ऊँचे चढ़िके बोला मँडुवा। सब नाजों का मैं हूँ अँडुवा।।
आठ दिना मुझको जो खाय। भले मर्द से उठा न जाय।।

मंडुआ ऐसा अनाज है, जो स्वास्थ्य को कमजोर करता है, वह ऊँचे चढ़ के बोलता है कि मैं सभी अनाजों में भडुआ (बेशरम) हूँ और कोई मुझे आठ दिन भी सेवन कर ले तो वह उठकर चलने में भी असमर्थ हो जाएगा।

गाय दुहे, बिन छाने लावै, गरमा, गरम तुरन्त चढ़ावै।
बाढ़े बल अउर बुद्धि भाई, घाघ कहे सच्ची बतलाई।
खाइ कै मूतै सूतै बाउँ।/काहै के बैद बसावै गाउँ।

जो आदमी खाना खाने के तुरंत बाद पेशाब करता है और बाएँ करवट सोता है उसे गाँव में वैद्य रखने की जरूरत नहीं पड़ती।

चैत सोवै रोगी, बइसाखा सोवै जोगी।/जेठ सोवै राजा, असाढ़ सोवै अभागा।।

चैत माह में सोने वाला आदमी रोगग्रस्त होता है, बैसाख में योगीजन सोते हैं और जेठ के महीने में राजा अर्थात् धन सम्पन्न लोग सोते हैं, क्योंकि इस माह में गरम लूँ चलती है। लेकिन आसाढ़ में सोने वाला

आदमी अभागा होता है। सब जानते हैं कि खेती के काम के लिए यही महीना उपयोगी होता है, यह किसान को चेताने के लिए है।

लरिका ठाकुर, बूढ़ दिवान।/ममिला बिगरै साँझ बिहान।।

अगर ठाकुर (जमींदार) लड़का है और उसका दीवान अर्थात् मंत्री वृद्ध हो, उनमें शाम-सवेरे कभी भी खटपट होने की संभावना बनी रहती है, उनकी आपस में पटरी नहीं बैठती।

सांझै से परि रहती खाट, पड़ी भड़ेहरि बारह बाट।

घर आँगन, सब घिन-घिन होय, घग्घा गहिरे देव डुबोय।।

घाव कवि कहते हैं कि ऐसी औरत जो अपने घर की चीजों को सँभाल के नहीं रखती और घर को गंदा रखती है और शाम से खटिया पर सो जाती हो, उसे इतने गहरे डुबो देना चाहिए कि पानी से बाहर ही न आ पाए।

सधुवै दासी, चोरवै खाँसी, प्रेम बिनासै हाँसी।

घग्घा उनकी बुद्धि विनासै, खाय जो रोटी बासी।।

साधु-महात्मा को उनकी सेविका, चोर को उसकी खाँसी तथा प्यार को हँसी-मजाक बरबाद कर देते हैं। इसी प्रकार बासी रोटी का सेवन करने वाले की बुद्धि का विनाश होता है, ऐसा घाघ का मानना है।

हरहट नारि बास एकबाह, परुवा बरद सुहुत हरवाह।

रोगी होइ होइ इकलन्त, कहैं घाघ ई विपत्ति क अंत।।

घाघ कवि कहते हैं कि कर्कश आवाज वाली औरत, अकेला घर, दूसरे का बैल, आलसग्रस्त हलवाहा और अकेले रोगी की मुसीबत का कोई अंत नहीं होता।

हँसुआ ठाकुर बँसुआ चोर।/इन्हें ससुवरन गहिरे बोर।।

बिना बात के हँसने वाला ठाकुर और खाँसी की बीमारी वाले चोर इन्हें पानी में बहुत गहरे डुबाना चाहिए।

बनिया क सखरज, ठकुर क हीन, वैद क पूत व्याधि नहिं चीन्ह।

पंडित क चुप चुप, बेसवा मइल, कहै घाघ पाँचों घर गइल।।

जनकवि घाघ का कहना है कि अगर बनिया का बेटा मोल-भाव करने में नरमी बरतता हो, ठाकुर का बेटा कमजोर हो, वैद्य के बेटे को रोग का ज्ञान न हो, ब्राह्मण का बेटा चुपचाप रहता हो और वेश्या गंदी रहती हो, तो इन पाँचों के घर बरबाद हो जाते हैं।

कृषि सम्बन्धी

बाढ़े पूत पिता के धरमा।/ खेती उपजै अपने करमा।।

बेटा पिता के धर्म-कर्म से उन्नति करता है, लेकिन खेती में पैदावार मेहनत करने से अपना रंग दिखाती है।

बिना माघ घिव खिचड़ी खाय, बिन गौने ससुरारी जाय।

बिन बरखा के पहिरे पउवा, कहै घाघ ये तीनों कउवा।।

घाघ का कहना है कि जो माघ के अलावा दूसरे महीने में घी डालकर खिचड़ी खाता है, जो गौना होने से पहले ससुराल जाता है, बरसात आए बिना कठनहीं (काठ की खड़ाऊँ, जो हवाई-चप्पल जैसी होती है) पहनता है। ये सब बेवकूफ समझे जाते हैं।

मुये चाम से चाम कटावें, सकरी भुंइ माँ सोवै!

घाघ कहें ये तीनों भकुवा, उढ़रि गये पर रोवै।।

अपने पैर के आकार से छोटे चमड़े के जूते धारण करके पैरों को कटवाने वाला, अपने आकार से सँकरी अर्थात् कम जगह में सोने वाला और भगाकर लाई गई अर्थात् ओढरी औरत के घर छोड़ने पर रोने वाले ये तीनों ही बेवकूफ कहे जाते हैं।

माघ, पूस की बादरी, और कुँवारा घाम।

ये दोनों जो कोइ सहै, करै पराया काम।।

माघ पूस मास की बदली तथा क्वाँर महीने की कष्टदायी धूप सहने का सामर्थ्य जिसमें है, वही औरों के काम का हो सकता है। यह सर्वविदित है कि माघ और पूस की शीतलता और क्वाँर की तेज धूप कष्टदायी होती है।

राँड़ मेहरिया, अन्ना भैंसा।/जब बिचलै तब होवै कैसा।।

रांड (विधवा) औरत तथा बिना मालिक का आवारा भैंसा अगर बहक जाए तो निश्चित है कि अनर्थ होकर ही रहेगा।

बूढ़ा बैल बेसाहै, झीना कपड़ा लेय।/आपुन करै नसौनी, देवै दूषन देय।।

जो आदमी बूढ़ा बैल खरीदता है और दूसरे हल्का (पतला) कपड़ा पहनता है, वह अपना नुकसान खुद करता है, परन्तु इसमें अपने को दोषी न मानकर दैव (ईश्वर) को दोषी ठहराता है।

भेदिहा सेवक, सुन्दरि नारि,/जीरन पट कुराज दुख चारि।।

अपने मालिक के घर की गुप्त बातों को दूसरों को बताने वाला नौकर/सेवक, सुंदर पत्नी, फटा हुआ कपड़ा और दुराचारी राजा, ये चारों दुख देने वाले होते हैं।

बाछा बैल, बहुरिया जोय,/ना घर रहै न खेती होय।

ऐसा किसान, जो अल्हड़ नए बछड़ों को जोतकर खेती करता है और जो नई-नई दुल्हन का स्वामी हो, ऐसे किसान के खेत में न तो फसल ही अच्छी हो पाती है और न घर की व्यवस्था ठीक रह पाती है।

बैल चौंकना जोत में, औ चमकीली नार।/ये बैरी हैं जान के, कुसल करें करतार।।

हल में जोतते समय चौंकने वाले बैल और जरूरत से ज्यादा चमकीली, छबीली औरत, दोनों ही जीवन के लिए घातक हैं। ऐसे घर की रक्षा भगवान ही कर सकता है।

बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार।/बिन मेहरारू घर करै, चौदह साख लबार।।

जो मनुष्य बिना बैल के खेती करने और बिना भाइयों के झगड़ा करने और स्त्री के बिना घर-गृहस्थी चलाने की शेखी बघारता है, उसे तो चौदह पीढ़ियों का झूठा ही कहा जाएगा।

बैल तरकना टूटी नाव।/ये काहू दिन दैहें दाँव।।

जो बैल कभी भी भड़क जाता हो और जो नाव जर्जर हो, उनका कोई भरोसा नहीं है।

बैल बगौधा निरघिन जोय।/वा घर ओरहन कबहुँ न होय।।

जिस कृषक के यहाँ घर का पाला हुआ बैल और अच्छी आचरण वाली पत्नी हो, उसे उलाहना नहीं सुनना पड़ता।

नीति

अम्बा, नींबू, बनिया गर दाबे रस देय।/कायथ, कौवा, करहटा मुर्दा हू सों लेय।।

आम, नींबू और बनिया को यदि दबाया न जाए, तो रस नहीं निकलता लेकिन इसके विपरीत, कायस्थ, कौआ, किलहटा (एक पक्षी को कहते हैं) इतने कठोर हैं कि मुर्दे से भी रस खींच लेते हैं।

घाघ बात अपने मन गुनहीं,/ठाकुर भगत न मूसर धुनहीं।

घाघ कहते हैं कि जैसे मूसल (इससे पहले अनाज कूटा जाता था) झुकाने पर धनुष नहीं हो सकता, इसी प्रकार ठाकुर भी भगत नहीं बन सकता।

बाघ, बिया, बेकहल, बनिक, बारी, बेटा, बैल।/ब्यौहार, बढ़ई, बन बबुर, बात सुनो यह छैल।।

जो बकार बारह बसें, सो पूरन गिरहस्त। /औरन को सुख दे सदा, आप रहै अलमस्त।।

बाघ, बीज, बेकहल (सन की छाल) बनिया, बारी, बेटा, बैल, ब्यौहार, बढ़ई, बन, बबूल और बात इन सब में पहले न आता है अर्थात बारह बकार का जो स्वामी है, वही पूर्ण गृहस्थ है, ऐसा व्यक्ति खुद को सुखी और बेफिक्र रहने में समर्थ है तथा दूसरों को भी सुख दे सकता है।

घर में नारी आँगन सोवै, रन में चढ़के छत्री रोवै!

सतुवा के जो करै बिआरी, घाघ मरै तेहि का महतारी।।

घाघ कवि कहते हैं कि जिसके घर में औरत या पत्नी रात के समय कमरे में सोने की बजाय खुले आँगन में सोती है और जो क्षत्रिय रंगभूमि में अपने दो-दो हाथ दिखाने की बजाय रोता हो और रात में सतुवा का सेवन करता हो इन तीनों की माँ मरे समान ही होती है, क्योंकि उसके दूध की लाज सलामत नहीं रहती।

पूत न माने आपन डाँट, भाई लड़े चहै नित बाँट।

तिरिया कलही, करकस होइ, नियरा बसल दुष्ट सब कोइ।

मलिक नाहिंन करै विचार, घाघ कहै ई विपत्ति अपार।।

कवि घाघ कहते हैं कि बात नहीं मानने वाला पुत्र, जमीन-जायदाद में हिस्से के लिए अकसर लड़ता रहने वाला भाई, कलिहारी अर्थात् ऊँची-ऊँची आवाज में झगड़ा करनेवाली पत्नी, पास में बसने वाला दुष्ट, अपनी बुद्धि न रखनेवाला स्वामी, ये सभी अपार (अत्यधिक) मुसीबत लाने वाले होते हैं।

फूटे से बहि जातु है, ढोल, गँवार, अँगार।

फूटे से बनि जात हैं, फूट, कपास, अनार।।

ढोल, गँवार और अंगार फूटने के बाद अपनी गुणवत्ता खो देते हैं, इसके विपरीत फूट (खेत में पाई जाने वाली पकी ककड़ी), कपास और अनार फूटने के बाद पहले से भी अधिक कीमती हो जाते हैं।

घर की खनस और ज्वर की भूख, छोट दामाद बराहे ऊख।

पातर खेती भकुवा भाय, घाघ कहें दुख कहाँ समाय।।

घाघ कहते हैं कि परिवार में रात-दिन झगड़ा रहना, बुखार के बाद जो तेज भूख लगती है, आयु में पुत्री से छोटा जँवाई होना, आम रास्ते में पड़ने वाला ईख, गन्ना का खेत और फसल और बेवकूफ भाई ये सब परेशान करने वाले होते हैं।

जोइगर, बँसगर बुझगर भाय, तिरिया सतवनती नीक सुभाय।

धनपुत हो मन होइ बिचार, कहैं घाघ ई सुक्ख अपार।।

जो आदमी ताकतवर हो, बड़े परिवार वाला हो, जिसका भाई अक्लमंद हो और पत्नी सतवंती अर्थात् अच्छे चाल-चलन की हो तथा पुत्र धन धान्य से पूर्ण, अच्छे विचार रखता हो, घाघ कवि कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति बहुत सुखी होता है।

काँटा बुरा करील का, और बदरी का घाम। /सौत बुरी है चून की, और साझे का काम।।

करील का काँटा, बदली की धूप, आटे की भी सौत और साझे का काम, ये चारों ही कष्ट देने वाले होते हैं।

कोपे दई मेघ ना होई, खेती सूखति नैहर जोई।

पूत बिदेस खाट पर कन्त, कहैं घाघ ई विपत्ति क अंत।।

भगवान की नजर टेढ़ी हो गई, बादल नहीं बरसे, खेती सूख गई, पत्नी नाराज होकर मायके चली गई, बेटा दूसरे देश में दूर है, पति ने खाट पकड़ रखी है, घाघ कवि कहते हैं इससे बड़ी मुसीबत कोई नहीं होती।

कुतवा मूतनि मरकनी, सरबलील कुच काट।

घग्घा चारौ परिहरौ, तब तुम पौढ़ौ खाट।।

जिस चारपाई पर कुत्ते पेशाब करते हैं, जो बैठते ही चूँ-चूँ बोलती हो, ढीली-ढाली हो और जिसका आकार इतना छोटा हो, कि ठीक से पैर भी नहीं फैलते हों, घाघ कहते हैं कि इस प्रकार की चारपाई के स्थान पर दूसरी चारपाई का इस्तेमाल करना चाहिए।

गया पेड़ जब बकुला बैठा, गया गेह जब मुड़िया पैठा।

गया राज जहँ राजा लोभी। गया खेत जहँ जामी गोभी।।

जिस पेड़ पर बकुला बैठे, जिस घर में गोंड बैठे, जिस राज्य का राजा लोभ हो, और जिस खेत में गोभी पैदा हो इन सबका जल्दी अंत हो जाता है।

एक तो बसे सड़क के गाँव। दूजे बड़े बड़ेन माँ नाँव।

तीजे भये वित्त से हीन। घग्घा हम पर विपदा तीन।।

घाघ अपनी मनोव्यथा को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि एक तो गाँव रास्ते पर बसा है, दूसरे बड़े-बड़े लोगों में गिनती होती है, तीसरे धन से रहित हो गए हैं। इन तीनों मुसीबतों में हम फँसे हैं।

ओछो मंत्री राजै नासै, ताल बिनासै काई।

सान साहिबी फूट बिनासै, घग्घा पैर बिवाईं।।

घाघ कहते हैं कि औछे स्वभाव का मंत्री राजा को नष्ट कर देता है, काई तालाब को नष्ट कर देती है, आपसी फूट (बैर-भाव) मान सम्मान को ठेस पहुँचाती है और बिवाईं पैरों को पीड़ा पहुँचाती है।

आलस नींद किसानै नासै, चोरै नासै खाँसी।

अँखिया लीबर बेसवै नासै, बाबै नासै दासी।।

किसान को आलस्य और निद्रा, चोर को खाँसी की बीमारी, वेश्या को चिपड़ी आँखें तथा सेवा को रखी गई दासी, साधु को नष्ट कर देती है।

अधकचरी विद्या दहे, राजा दहे अचेत।

ओछे कुल तिरिया दहे, दहे कलर का खेत।।

आदमी अगर कम पढ़ा हुआ हो, राजा चारों ओर से सचेत न हो, पत्नी ओछे कुल से आई हो और खेत ऊखर का हो तो ये सभी कष्ट पहुँचाने वाले होते हैं।

आठ गाँव का चौधरी, बारह गाँव का राव।

अपने काम न आय तो ऐसी-तैसी जाव।।

चाहे आठ गाँवों का कोई चौधरी हो और बारह गाँव का कोई राव हो, अगर वक्त पड़ने पर वह काम न आए तो हमें उससे क्या लेना।

ओछे बैठक ओछे काम, ओछी बातें आठो याम।

घाघ बतायें तीन निकाम, भूलि न लीजो इनके नाम।।

घाघ कहते हैं कि जो व्यक्ति आठों पहर बुरे लोगों की संगत में रहते हैं, नीच काम करते हैं, छोटी बातें करते हैं वे बिल्कुल बेकार होते हैं। भूल से भी उनका नाम नहीं लेना चाहिए।

खेत न जोतै राड़ी। न भैंस बेसाहै पाड़ी।

न मेहरि मर्द क छाड़ी, क्यों न बिपदा गाढ़ी।।

राढ़ी घास वाले खेत को नहीं जोतना चाहिए, पाड़ी (भैंस का बच्चा) भैंस नहीं खरीदनी चाहिए और चाहे जितना बड़ा संकट हो दूसरे की छोड़ी हुई स्त्री से शादी नहीं करनी चाहिए।

आठ कठौती माठा पीवै, सोरह मकुनी खाइ।

उसके मरे न रोइये, घर के दलिद्दर जाय।।

जो आदमी आठ कठौता (काठ की परात) मट्ठा (छाछ) पीता हो, सोलह मकुनी (सत्तू भरी रोटी) खाता हो उसके मरने पर भी रोना नहीं चाहिए क्योंकि उसके मरने से घर की गरीबी चली जाती है।

आपन-आपन सब कोउ होइ, दुख मा नाहिं सँघाती कोइ।

अन बहतर खातिर झगड़न्त, कहैं घाघ ई बिपत्ति क अंत।।

अपने-अपने के लिए हर कोई होता है लेकिन दु:ख में कोई किसी का सहायक नहीं होता। हर कोई अन्न, वस्त्र, धन के लिए झगड़ रहा है, इससे बढ़कर विपत्ति क्या हो सकती है, ऐसा घाघ का कहना है।

माँ ते धी, पिता ते घोड़ा।

बहुत न होय तो थोड़म थोड़ा।

माँ का गुण पुत्री में और पिता का गुण पुत्र में अधिक नहीं तो थोड़ा जरूर होता है।

पंडित राम नरेश त्रिपाठी ने गाँव-गाँव घूमकर महाकवि घाघ की लोकोक्तियाँ, कहावतों का संकलन किया था और उसे पुस्तक रूप में प्रकाशित कराया था। घाघ के अलावा बाद में कुछ-कुछ कवियों ने अपनी रचनाएँ घाघ के नाम से जोड़ दी हैं। घाघ की कहावतों का प्रकाशन कई प्रकाशन संस्थाओं ने किया है। घाघ की कहावतों पर आज के बदलते परिवेश और जलवायु परिवर्तन के हिसाब से शोध करना चाहिए।

सम्पर्क : पोस्ट मनेथू उप डाकघर सरवन खेड़ा
कानपुर देहात 209 121 (उ.प्र.)
मो. 9369766563

प्रमोद भार्गव

मुस्लिम लीग और बँटवारे की विभीषिका

स्वतंत्रता संघर्ष के बीच महात्मा गाँधी ने बड़े आत्मविश्वास से कहा था कि अगर कांग्रेस बँटवारे को स्वीकार करना चाहती है तो उसे मेरी लाश के ऊपर से गुजरना होगा। जब तक मैं जीता हूँ, मैं कभी भी हिन्दुस्तान का बँटवारा स्वीकार नहीं करूँगा और जहाँ तक मेरा वश चलेगा, कांग्रेस को भी स्वीकार नहीं करने दूँगा। अलबत्ता ऐसा एकाएक क्या हुआ कि जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभ भाई पटेल को बँटवारे के समर्थन में खड़े होना पड़ गया। लॉर्ड माउंट बेटन से पहली मुलाकता में ही गाँधी उनके वाग्जाल की गिरफ्त में ऐसे आए कि उनकी 'प्राण जाए, पर वचन न जाए' की वचन बद्धता भंग हो गई। कांग्रेस मुस्लिम अलगाववाद के आगे घुटने टेकती चली गई। नतीजतन 'भारत और पाकिस्तान स्वतंत्रता अधिनिय' पर ब्रिटिश संसद में मोहर लगा दी गई। ब्रितानी हुकूमत में औपनिवेशिक दासता झेल रहे अखंड भारत को विभाजित कर दो स्वतंत्र देश बनाकर पृथक-पृथक सत्ता का हस्तांतरण करने का निर्णय ले लिया। संपूर्ण सत्ता सौंपने का दिन 14 अगस्त 1947 निश्चित किया। यह दिन भी एक तरह से दोनों देशों के स्वतंत्रता सेनानियों को चिढ़ाने की दृष्टि से मुकर्रर किया गया। क्योंकि इसी दिनांक को जापान मित्र देशों के समक्ष आत्मसमर्पण करने को मजबूर हुआ था। पाकिस्तान ने तो अपनी आजादी का यही दिन मान लिया, लेकिन भारत ने इस दिन को स्वतंत्रता दिवस इसलिए नहीं माना, क्योंकि जापान ने भारत के संघर्ष को आजाद हिंद फौज के ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अपनी भूमि पर मदद की थी। अंततः भारत ने अपनी पारंपरिक ज्योतिष्य मान्यताओं के चलते यह दिन 15 अगस्त सुनिश्चित किया। आखिरकार आजादी की यह लड़ाई भारत के लिए एक ऐसा दुखद परिणाम रही कि पाकिस्तान एक स्वतंत्र देश की परिणति के रूप में अस्तित्व में आकर स्थायी संकट बन गया।

बंगाल का विभाजन : अंग्रेजों द्वारा अपनी सत्ता कायम रखने की दृष्टि से बंगाल-विभाजन एक ऐसा षड्यंत्रकारी घटनाक्रम रहा, जो भारत विभाजन की नींव डाल गया। इस बँटवारे के फलस्वरूप अंग्रेजों के विरुद्ध ऐसी उग्र जन-भावना फूटी की बंग-भंग विरोध में एक बड़ा आंदोलन खड़ा हो गया। दरअसल जब गोरी पलटन ने समूचे भारत को अपनी अधीनता में ले लिया, तब क्रांतिकारी संगठनों और विद्रोहियों के साथ कठोरता बरतने के लिए 30 सितंबर 1898 को भारत की धरती पर वाइसराय लॉर्ड कर्जन के पैर पड़े। कर्जन को 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से प्रेरणा ले रहे क्रांतिकारियों के दमन के लिए भेजा गया था। इस संग्राम पर नियंत्रण के बाद फिरंगी इस बात को लेकर चिंतित व सर्तक थे, कि कहीं इसकी राख में दबी चिंगारी फिर

न सुलग पड़े। क्योंकि अंग्रेज भली-भाँति जान गए थे कि 1857 का सिलसिला टूटा नहीं है। अंग्रेजों को यह भी शंका थी कि कांग्रेस इस असंतोष को पनपने के लिए खाद-पानी देने का काम कर रही है। कर्जन ने अंग्रेजी सत्ता के संरक्षक बने मुखबिरों से ज्ञात कर लिया कि इस असंतोष को सुलगाए रखने का काम बंगाल से हो रहा है। वाकई स्वतंत्रता की यह चेतना बंगाल के जनमानस में एक बेचैनी बनकर तैर रही थी। यह बेचैनी 1857 के संग्राम जैसे रूप में फूटे, इससे पहले कर्जन ने कुटिल क्रूरता के साथ 1905 में बंगाल के दो टुकड़े कर दिए। जबकि इस बंग-भंग का विरोध हिंदू और मुसलमानों ने अपनी जान की बाजी लगाकर किया था। इस बँटवारे का मुस्लिम बहुल क्षेत्र को पूर्वी बंगाल और हिंदू बहुल इलाके को बंगाल कहा गया। अर्थात् जिस भूखंड पर हिंदू-मुस्लिम संयुक्त भारतीय नागरिक के रूप में रहते चले आ रहे थे, उनका मानसिक रूप से सांप्रदायिक विभाजन कर दिया। इस विभाजन से सांप्रदायिक भावना की एक तरह से बुनियाद डाल दी गई, वहीं दूसरा इसका सकारात्मक परिणाम यह निकला कि पूरे भारत में अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष तेज हो गया। यानी फिरंगी-सत्ता के विरुद्ध एक जुटता ने देशव्यापी उग्र भावना का संचार अनजाने में कर दिया। लेकिन कर्जन ने इसे कुटिल चतुराई से मुस्लिम लीग की स्थापना में बदल दिया।

मुस्लिम लीग की स्थापना : कर्जन की दुर्भावना की चालाकी व रहस्य तत्काल तो बंग-भंग के रूप में ही नजर आई, लेकिन वास्तव में पूर्वी बंगाल की लकीर खींच देने का अर्थ मुसलमानों में ऐसी भावना जगाना भी था, जो उन्हें हिंदुओं के विरुद्ध एकजुट करने का काम करे। इस कुटिल दृष्टि के चलते कर्जन ने मुसलमानों में मुगल बादशाहों, जमींदारों और जागीरदारों के जमाने को बहाल करने का लालच दिया। यही नहीं कर्जन ने अपने वाक्चातुर्य से ढाका के नवाब सलीमुल्ला को बंगाल विभाजन का समर्थ और अचानक उदय हुए स्वदेशी आंदोलन का बहिष्कार करने के लिए राजी कर लिया। सलीमुल्ला कर्जन से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सक्रिय होकर कुछ नवाबों को बरगलाकर दिसबंर 1906 में 'मुस्लिम लीग' संगठन खड़ा कर दिया। स्वदेशी आंदोलन को विफल करने के लिए अंग्रेज अधिकारियों ने सलीमुल्ला के साथ मिलकर हिंदू-मुस्लिमों के बीच संप्रदाय के आधर पर दंगे भड़काने का काम भी शुरू कर दिया। यहीं से हिंदुओं की हत्या करने और उनकी संपत्ति लूटने व हड़पने का सिलसिला शुरू हो गया।

इस दुर्विनार स्थिति के निर्माण होने पर ब्रिटिश पत्रकार एच डब्ल्यू नेविंसन ने 'गार्जियन' अखबार में लिखा भी, 'ब्रिटिश न्यायिक अधिकारी जानबूझकर हिंदुओं पर अत्याचार के साक्ष्यों को नजरअंदाज करते हैं और मुस्लिमों के कथन पर एक तरफा यकीन करते हैं।' इस खबर पर लंदन में ब्रिटिश संसद के सदस्य सीजी ओ डेनल ने गंभीरता से लेते हुए हाउस ऑफ कामंस में कहा, 'क्या मैं जान सकता हूँ कि अपनी संपत्तियों को उनके धर्म के आधार पर बाँटने की नीति का हिस्सा बन गई है?' तब तक भारत में कर्जन की जगह लेने के लिए लॉर्ड मिंटो को भारत भेज दिया गया। मिंटो ने आने के साथ ही 'फूट डालों और राज करो' की अनीति को पुख्ता कर दिया।

मुस्लिमों के लिए पृथक मतदाता सूची : गवर्नर जनरल और वायसराय मिंटो ने मुस्लिम पृथकवादियों के साथ मिलकर एक नई चाल चली। इसके तहत बंग-भंग विरोध आंदोलन को देश के एक मात्र 'मुस्लिम-प्रांत' की खिलाफत के आंदोलन के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। नतीजतन मुस्लिम नेता पूरी ताकत से बँटवारे के समर्थन में आ खड़े हुए। इसी समय आगा खान के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल मिंटो से शिमला

में मिला और मुस्लिमों के लिए पृथक 'मतदाता सूची' बनाए जाने की माँग उठा दी। मिंटो इस मंशा पूर्ति के लिए ही भारत भेजे गए थे कि मुस्लिमों को हिंदुओं के विरुद्ध एक समुदाय के रूप में खड़ा किया जाए। अतएव मिंटो ने नगर पालिकाओं, जिला मंडलों और विधान परिषदों में मुस्लिमों की संख्या आबादी के अनुपात में बढ़ाने की पहल कर दी। यही नहीं मुस्लिमों को महत्व ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति वफादारी के आधार पर भी रेखांकित की गई। मिंटो ने आगा खान को इन बिंदुओं को सुझाया कि इस समय बृहद बंगाल से काटकर बनाए गए असम सहित पूर्वी बंगाल के 1 लाख 6 हजार 540 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में मुस्लिमों की आबादी 1 करोड़ 80 लाख थी। जबकि हिन्दू मात्र 1 करोड़ 20 लाख थे। इसी कालखंड में हिंदुओं के खिलाफ मुल्लाओं ने घृणित प्रचार की कमान अपने हाथ में ले ली। एक लाल पुस्तिका छापी गई। जिसमें कहा गया कि 'हिंदुओं ने इस्लाम के गौरव को लूटा है। उन्होंने हमारा धन और सम्मान लूटा है। स्वदेशी का जाल बिछाकर हमारी जान लेना चाहते हैं। इसलिए वो मुसलमानों, हिंदुओं के पास अपना धन मत जाने दो। हिंदुओं की दुकानों का बहिष्कार करो। वह सबसे नीच होगा, जो उनके साथ 'वंदे मातरम्' कहे।'

जिन्ना और हिंदू मुस्लिमों के बीच पैदा हुई दरार : इस सब के बावजूद कांग्रेस को उच्च शिक्षित और वकील मोहम्मद अली जिन्ना से समन्यवादी सहयोग की उम्मीद थी। जिन्ना के नेतृत्व में शिक्षित व युवा मुस्लिम सहयोगी बने भी रहे। लेकिन ब्रितानी हुकूमत के पास हिंदू-मुस्लिम एकता और सद्भावना नष्ट-भृष्ट करने की औजार थी। अतएव 1909 में मार्ले-मिंटो सुधारों के अंतर्गत मुस्लिमों के लिए अलग मतदाता सूची की मांग मंजूर कर ली गई। इस पहल ने हिंदू-मुस्लिम एकता की राह में स्थायी दरार उत्पन्न कर दी क्योंकि विधान परिषद में चुने का यह एक अधिकार था, जिससे पल्ला झाड़ लेना मुस्लिम नेताओं के लिए आसान नहीं रहा। बावजूद जिन्ना, मौलाना अबुल कलाम आजाद और मोहम्मद अली कांग्रेस के साथ रहे। यहाँ तक की गाँधी के खिलाफत आंदोलन और असहयोग आंदोलन में दोनों समुदाय कंधा मिलाकर साथ रहे। इस आंदोलन के देशव्यापी प्रभाव से अंग्रेजों को नाको चने चबाने पड़े थे किंतु चौरा-चौरी में हुई हिंसा के कारण गाँधी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। 4 फरवरी 1922 को घटी इस घटना की पृष्टभूमि में गोरखपुर के चौरा-चौरी के थानेदार ने कुछ कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की पिटाई लगा दी थी। नतीजतन गुस्साई भीड़ के थाने में आग लगा दी। जिससे 23 पुलिसकर्मियों की मृत्यु हो गई थी। हालाँकि तीन आम नागरिक भी मारे गए थे। गाँधी जी द्वारा आंदोलन वापस पर मोतीलाल नेहरू सुभाष चंद्र बोस, जिन्ना और चितरंजन दास ने नाराजगी जताई।

मोपला-कांड की दी गई सांप्रदायिक हवा : केरल में 20 अगस्त 1921 को अंग्रेजों के विरुद्ध मोपला विद्रोह हुआ मोपला या मोप्पिला नाम मलयाली भाषाई मुसलमानों के लिए प्रयोग में लाया जाता है। मोपलाओं की उत्तरी केरल के मालाबार तट पर बहुसंख्यक आबादी है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने इस क्षेत्र में भी अपनी सत्ता का विस्तार कर लिया था। और असहयोग आंदोलन की गूँज जब क्षेत्र में पहुँची तो मोपला भी ब्रिटिश 'राज-सत्ता के विरुद्ध उठ खड़े हुए। इस विद्रोह को मुस्लिम धर्मगुरुओं ने भड़काने का काम किया। नतीजतन यह विद्रोह हिंसक तो हुआ ही, जो सहिष्णु हिंदु जमींदार थे, उन्हें भी हिंसा की मार झेलनी पड़ी। देश में यह खूनी संघर्ष हिंदु-मुस्लिम सांप्रदायिक दंगों के रूप में पेश आया। इस समय यहाँ ज्यादातर जमींदार नबूदिरी ब्राह्मण थे, जबकि किसान मोपला मुसलमान थे। मोपलाओं ने हिंदु पूजा स्थलों को भी निशाना बनाया। इस विद्रोह में करीब दस हजार लोग मारे गए थे। इस कालखंड में

यहाँ मोपलाओं की कम्यूनिस्टों ने इसे हिन्दू जमींदारों के शोषण के विरुद्ध किसानों का विद्रोह कहकर सांप्रदायिकता पर पर्दा डालने की कोशिश की, लेकिन अन्य नेताओं ने इसका यथार्थ चित्रण किया। फलतः जिन्ना ने यह मान लिया कि भारतीय उपमहाद्वीप में रहने वाले दो समुदायों के बीच समन्वय बिठाना आसान नहीं है। इस विचार के पनपते ही जिन्ना मुस्लिम लीग का हिस्सा बनकर उसके विस्तार में लगने के साथ ही राष्ट्रवाद के सिद्धांत पर अमल की ओर बढ़ गए।

मुस्लिमों के लिए पृथक राष्ट्र की माँग : आखिरकार मोपला-कांड की परिणति ने मुस्लिम अलगावाद का रास्ता खोल दिया। फिरंगी सरकार ने नाजुक परिस्थिति का पूरा लाभ उठाया। एक तरह से आग में घी डालने का काम किया। नतीजतन जब भी कोई अंग्रेजी शासन के विरुद्ध हिंदु-मुस्लिम संयुक्त आंदोलन छेड़ते तो वह सांप्रदायिक दंगों में बदल जाता मुस्लिम लीग के इस सांप्रदायिक चरित्र के विरुद्ध 1925 में हिंदू महासभा अस्तित्व में आ गई। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप दूसरी मुस्लिम सांप्रदायिक ताकतें पेश आ गईं। इसी समय जिन्ना ने अवसर का लाभ उठाया और यह कहना प्रारंभ कर दिया कि 'अंग्रेजों के जाने के बाद हिंदू बहुसंख्यक उनकी इस्लामिक संस्कृति, उर्दू जुबान और धर्म को तबाह कर देंगे। हिंदू भारत में मुसलमानों को न तो आर्थिक सुरक्षा मिलेगी और न ही उनकी कोई सियासी ताकत शेष रह जाएगी। लोकतांत्रिक भारत में हिंदुओं का राज होगा, क्योंकि हिंदू बहुसंख्यक हैं।' लीगियों ने इस आवाज को समूचे मुस्लिम समाज में पहुँचा दिया। 1940 में मुस्लिम लीग ने बहुचर्चित लाहौर प्रस्ताव पारित किया और मुसलमानों के लिए स्वतंत्र राष्ट्र पाकिस्तान' की माँग बुलंद कर दी।

क्रिप्स प्रस्ताव : अंग्रेजों द्वारा कांग्रेस की माँगों को पूरा नहीं करने के कारण, ब्रितानी हुकूमत को युद्ध में सहायता न देने के लिए गाँधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू किया था। लेकिन भारतीय भूमि पर जापानी सेनाओं की बढ़ती उपस्थिति और कई क्षेत्रों को अपने आधिपत्य में लेने की घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में गाँधी ने 30 दिसंबर 1941 को इस आंदोलन को कांग्रेस मुक्त कर दिया। इस आंदोलन का असर ब्रिटेन के अधीन अन्य देशों पर भी पड़ा। इससे ब्रिटिश आशंकित हो गए कि कहीं यह आंदोलन और घनीभूत न हो जाए? नतीजतन अंग्रेजों ने भारतीय सैनिकों व अन्य लोगों का सहयोग मिलता रहे, इस कुटिल दृष्टि से कुछ नए अधिकार व छूटें देने की लिए 11 मार्च 1942 को चर्चिल ने घोषणा की कि भारत में जारी राजनीतिक गतिरोध को तोड़ने के लिए स्टेफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजा जाएगा। मजबूरी की यह उदारता इसलिए बरती गई, क्योंकि जापानी सेनाओं ने जनवरी, फरवरी 1942 तक सिंगापुर, मलाया, इंडोनेशिया, अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह समेत रंगून तक को अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया था। 8 मार्च 1942 को जब इन सेनाओं ने रंगून पर भी अधिकार कर लिया तो ब्रिटेन को शंका हो गई कि यहाँ से ये सेनाएँ पूर्वी भारत पर आक्रमण कर सकती हैं।

क्रिप्स 23 मार्च 1942 को दिल्ली पहुँचे और 30 मार्च 1942 को प्रस्तावों का ऐलान भी कर दिया। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद लागू होने दो प्रस्तावों में से एक निर्वाचित संविधान सभा का गठन, जिसमें भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों को भी शामिल करना। जो रियासतें या प्रांत भारतीय संघ में शामिल होने को तैयार नहीं होंगे, उन्हें अपना नया संविधान बनाने का अधिकार होगा। दूसरा प्रस्ताव था, संविधान और सरकार के बीच एक संधि होगी, जिसके अंतर्गत ब्रिटिश सरकार को अल्पसंख्यक वर्गों को उनकी सुरक्षा का अधिकार दिया जाएगा। दरअसल द्वितीय विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों की कमजोर होती स्थिति के चलते ब्रिटेन

पर सहयोगी देशों का यह दबाव निरंतर बढ़ रहा था कि वह भारत के साथ न्याय करें।

इन प्रस्तावों में संघात्मक भारत की कल्पना और प्रादेशिक स्वायत्तता के साथ प्रदेशों के लिए अलग होने का अधिकार भी था। लेकिन इन प्रस्तावों को देशव्यापी स्वीकार्यता नहीं मिली। इस विफलता के बाद गाँधी जी ने ब्रिटिश शासकों से 'भारत छोड़ो' की माँग की। दूसरी तरफ जिन्ना ने इस माँग में अपनी इच्छा समाहित करते हुए कहा कि 'बँटवारा करो और जाओ।'

कैबिनेट मिशन : 6 दिसंबर 1946 ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली ने भारत में एक तीन सदस्यीय शिष्टमंडल भेजा। ये लार्ड लारेंस, स्टेफर्ड क्रिप्स और एवी अलेक्जेंडर थे। इन्हें शांतिपूर्ण सत्ता हस्तांतरण के लिए भेजा गया था। इस मिशन ने कांग्रेस और लीग के प्रतिनिधियों से बातचीत की और सांप्रदायिक दंगों को रोकने के लिए हिंदू-मुस्लिमों के बीच साझा सत्ता की योजना को मूर्त रूप देना चाहा। इस संवाद में अनेक विरोधाभासी पहलू सामने आए। जिन्ना भारत के साथ रहना तो चाहते थे, लेकिन संविधान में मुसलमानों को विशेष राजनीतिक संरक्षण गारंटी चाहते थे। जिसमें हिंदूओं के साथ बराबरी की माँग प्रमुख थी। यही वह दौर था, जिसमें ठीक दीपावली पर्व के बीच नोआखली में भयंकर सांप्रदायिक दंगे भड़के। मुस्लिम बहुल इलाके में हिंदू नरसंहार, मंदिरों का विध्वंस और आगजनी की दर्जनों घटनाएँ घटीं। हिंदू महिलाओं का अपहरण, दुष्कर्म और धर्मांतरण कराकर जबरन विवाह भी रचाए गए। इन घटनाओं से गाँधी को जबरदस्त सदमा पहुँचा और शांति के लिए नोआखली पहुँच गए। बहरहाल, कैबिनेट मिशन की शिमला बैठक में कोई कारगर परिणाम नहीं निकला।

आजाद हिंद फौज और सैनिक विद्रोह : यही वह दौर था, जो अंग्रेजों को ज्यादा भयभीत कर रहा था। नेताजी सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिंद फौज ने अंडमान-निकोबार से लेकर गोवा में स्वतंत्रता का झंडा फहरा दिया था। इससे प्रेरित होकर भारतीय सेनाओं में ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध असंतोष पनपा और वे नेताजी की फौज के सेनानी बनने लगे। बंबई की नौसेना में बड़ा विद्रोह हुआ। अंग्रेजों ने समझ लिया कि जब सेनाएँ ही उनके साथ नहीं रहेंगी तब वे अपनी सत्ता कैसे स्थापित रख पाएँगे। फलत: लॉर्ड वावेल की जगह माउंटबेटन को देश विभाजन की रूपरेखा रटाकर भारत भेजा गया।

भारत विभाजन की अंतर्कथा : लॉर्ड माउंटबेटन इतना चतुर निकला कि उसने विभाजन के लिए जिन्ना, नेहरू, पटेल और यहाँ तक की गाँधी को भी मना लिया। भारत को दो स्वतंत्र राष्ट्रों में भारत और पाकिस्तान में विभाजित कर दिया गया। यही नहीं पंजाब और बंगाल को भी कपड़े की तरह दो टुकड़ों में चीर दिया गया, जिससे भारत हमेशा गृह कलह की आँच से सुलगता रहे। यह पाकिस्तान के अस्तित्व से भी ज्यादा खतरनाक था। ब्रिटिश अधिकारियों ने जानबूझ कर 652 भारतीय रियासतों की प्रभुसत्ता उन्हें वापस सौंप दी। उन्हें भारत या पाकिस्तान मिल जाने की छूट तो थी ही, स्वतंत्र राष्ट्र बने रहने की छूट भी दे दी गई थी। अर्थात् भारत और पाकिस्तान के बीच हुआ विभाजन तो आधा सच है, पूरा सच तो देश के 652 टुकड़े कर देने का है। यह क्षेत्रीयता से कहीं ज्यादा सांप्रदायिक बँटवारा था। यह अलग बात है कि सरदार पटेल की दृढ़ता से इन रियसतों का विलय भारतीय गणतंत्र में हो गया। अतएव 14 एवं 15 अगस्त की मध्यरात्रि को भारत तब स्वतंत्र हुआ, जब दुनिया सो रही थी और सांप्रदायिक दंगों की आग में झुलसा भारत जन्म लेकर आँख खोल रहा था।

सम्पर्क : प्रमोद भार्गव, लेखक/पत्रकार
शब्दार्थ 49, श्रीराम कॉलोनी, शिवपुरी म.प्र.
मो. 09425488224, 09981961100

आइवर यूशिएल

अद्भुत है जीव-जन्तुओं का संसार

हम जिस घर में रहते हैं उसमें हमारे परिवार के सदस्यों की एक सीमित संख्या होती है। यदि परिवार एकल है तो इसका मतलब है कि माता-पिता के अलावा इसमें सिर्फ हमारे भाई-बहन ही रहते हैं और यदि यह संयुक्त परिवार है तो जाहिर है कि इसमें दादा-दादी के साथ चाचा-ताऊ आदि के परिवार भी मिलजुल कर रह रहे होंगे। पर यह तो हुई घर के उन प्राणियों की बात जो परिवार के सदस्य हैं और जिनके साथ जीवन भर के लिए आपका अटूट रिश्ता होता है। वैसे इनके अलावा किसी-किसी घर में एक-दो ऐसे प्राणी भी मौजूद मिलेंगे जिनका परिवार के साथ रिश्ता तो कोई नहीं होता परन्तु घर में इनकी अहमियत किसी सदस्य से कम नहीं आँकी जा सकती। ये वे सदस्य हैं जो कुत्ते, बिल्ली, तोते या ऐसे ही दूसरे किसी पालतू जीव के रूप में घरों में बसे रहते हैं।

अब तक हुई यह बातें तो परिवार के उन सदस्यों के सन्दर्भ में हैं जो प्रत्यक्ष व स्थायी रूप से घर में नजर आते हैं परन्तु आप निश्चय ही उन प्राणियों से भी जरूर परिचित होंगे जो आपके न चाहने के बावजूद आपके घरों में छिपे-दुबके बसे रहते हैं या फिर पारिवारिक सदस्यों की तरह जिनका आपके घरों में नियमित रूप से आना-जाना लगा रहता है। मक्खी-मच्छरों के अलावा लकड़ी को खोखला कर देने वाली दीमक हो या घुन, अलमारी और दीवारों की दरारों में बसेरा करने वाले तिलचट्टे हों या झींगुर, दीवारों पर स्वच्छन्द रेंगती छिपकलियाँ हों या मिनटों में जाले बुनकर तैयार कर लेने वाली मकड़ियाँ, मीठे की तलाश में कहीं भी अपनी पहुँच बना लेने में माहिर चींटियाँ हों या कीमती कपड़ों को चाट जाने वाली सिल्वरफिश, घर से इन प्राणियों को पूरी तरह बेदखल कर पाना क्या कोई आसान कार्य है?हमारे घरों में अनचाहे तौर पर प्रवेशकर प्राणी जगत के ये छोटे-छोटे सदस्य हमारे लिए जो कष्टकर व हानिकारक स्थितियाँ पैदाकर देते हैं शायद उसी कटु अनुभव के आधार पर बचपन से ही इनके उस पूरे समाज के प्रति, जिसमें विभिन्न किस्म के हजारों-हजारों सदस्य समाये रहते हैं। हमारे मन में नफरत भरी एक ऐसी भावना की परत चढ़ जाती है जिसके कारण बाद में वहाँ इन प्राणियों के प्रति आसानी से प्रेम और सद्भावना का कोई बीज अंकुरित हो ही नहीं पाता। जीवन के प्रारम्भिक दौर में मिले अनुभव और उससे उपजी कड़वाहट के वशीभूत हो हम आगे चलकर इनकी सिर्फ उपेक्षा ही नहीं करते वरन् इन पर ऐसे-ऐसे अत्याचार भी करते हैं जो अमानवीय तो हैं ही, इनके लिए असहनीय भी हो जाते हैं। फिर इसी भावना के साथ धीरे-धीरे जड़ता जाता है। हमारा स्वार्थ जो संपूर्ण मानव जाति को कलंकित करता इन निरीह प्राणियों के प्रति हमें बेहद क्रूर व हिंसक बना देता है।

हमारी पृथ्वी यूँ तो बहुत विशाल है पर उससे कहीं अधिक विशाल है इस पर बसने वाला प्राणी-जगत, जिसमें तमाम मौजूद किस्म के जीवों में इतनी विविधता है जिसका अन्दाजा आसानी से नहीं लगाया जा सकता। एक ओर चींटी से भी छोटे अनेक जीव हैं तो दूसरी ओर हाथी से विशाल ह्वेल जैसे जीव भी। एक ओर चीते जैसे

तेज धावक हैं तो दूसरी ओर पेड़ पर उल्टा लटके-लटके पूरी जिन्दगी गुजार देने वाला बेहद सुस्त स्लॉथ जैसा स्तनपोषी भी। लम्बी दूरियों की उड़ान भरने वाले आर्कटिक टर्न सरीखे पक्षी भी इसी परिवार के सदस्य हैं और धीमी गति का रिकॉर्ड तोड़ता घोंघा भी इसी परिवार में शामिल है। साँप-बिच्छू जैसे घातक विषदंश देने वाले जीव जहाँ अपनी दहशत से वातावरण को भयावह बनाने के लिए मौजूद हैं वहीं फूलों से मकरन्द एकत्रित कर उसे अमृत तुल्य शहद जैसे पदार्थ में परिवर्तित कर देने वाली मधुमक्खियाँ भी प्रकृति में मिठास बाँटने का अपना कार्य यहाँ बखूबी निभा रही हैं। इतना ही नहीं, इस विविधता के साथ इन जीवधारियों में ऐसी-ऐसी विशेषताएँ भी देखने को मिलती हैं जो किसी को भी आश्चर्यचकित करने के लिए काफी हैं।

वैसे तो इस तथ्य पर जरा भी सन्देह नहीं किया जा सकता कि दुनिया में जितने भी तरह के प्राणी हैं उन सब में हम इंसानों का मस्तिष्क सबसे अधिक विकसित अवस्था में है। पर क्या यह बात उचित है कि सिर्फ इस गुण के आधार पर उपजे अहंकार के वशीभूत हो हम दूसरे समस्त जीव-जन्तुओं को पूरी तरह तुच्छ और निकृष्ट ही समझ लें। बिना अच्छी तरह जाने-बूझे किसी के बारे में यूँ ही कोई गलत राय कायम कर लेना अज्ञानता है और किसी की विशेषताओं को खोज कर उसके प्रति प्रशंसा का भाव रखना महानता। वैसे भी प्रकृति ने सारी विशषतायें हम मानव को ही दे दी हों ऐसा नहीं है। बल्कि पूरी उदारता के साथ और भेद-भाव से दूर रहते हुए हर छोटे-बड़े जीव में कोई न कोई विशेष गुण समाहित करने का उसने पूरा-पूरा प्रयास किया है। शायद इसी कारण जीव-जन्तुओं के भरे-पूरे परिवार के कई सदस्यों के अंदर तो ऐसी-ऐसी खूबियाँ देखने को मिल जाएँगी जिनके बारे में जानकर इन पर सहज ही विश्वास कर लेना आसान नहीं होगा। ऐसे में हमें क्या हक है इन्हें तुच्छ व निरीह प्राणी समझते हुए इनके प्रति घृणा या उपेक्षा बरतने का।

जीव-जन्तुओं के अंदर समायी विविध प्रकार की विशेषताओं की बात सुनकर हो सकता है कि आप इसकी सत्यता पर संदेह करने लगें पर आपके इस बेबुनियाद शक को दूर करने के लिए, यहाँ दिये जा रहे केवल कुछ उदाहरण ही पूरी तरह पर्याप्त होंगे।

सबसे पहले इंसानों वाली स्तनपोषी बिरादरी के एक ऐसे इकलौते सदस्य की चर्चा यहाँ पूरी तरह उपयुक्त रहेगी जो उड़ने में पूर्णतः दक्ष होता है। जिस उड़न विधा को सीखने में मानव ने न जाने कितनी जिन्दगियाँ तथा समय गँवा दिया और फिर भी केवल कृत्रिम साधनों के सहारे ही वह हवा में ऊपर उठ पाया, उसी कला में अपशगुनी समझा जाने वाला चमगादड़ जैसा जीव प्राकृतिक रूप से ही इतना निपुण होता है कि इसी आधार पर हम इसे साधारणता पक्षियों की बिरादरी का सदस्य मानने का भ्रम पाल बैठते हैं।

अमावस्या की रात हो या खण्डहरों और गुफाओं के अंदर का घुप्प अँधेरा, ऐसे में भी बिना टकराये सफलतापूर्वक उड़ाने भरते रहना इस जीव के लिए बहुत ही सहजता के साथ सिर्फ इसलिए संभव हो पाता है क्योंकि ऐसे में यह अपने मुँह से एक विशेष प्रकार की ध्वनि, जिसे अल्ट्रासॉनिक साउण्ड कहते हैं, लगातार निकालता रहता है। ध्वनि की ये तरंगे रास्ते में आने वाली चीजों से टकराकर प्रतिध्वनि के रूप में इस तक वापस पहुँच जाती हैं जिन्हें सुनकर यह अपनी राह बदल लेता है और इसतरह मार्ग में पड़ने वाले अवरोध से साफ बच जाता है। आकाश में उड़ते वायुयान की उपस्थिति का ज्ञान कराने वाले हमारे राडार का आविष्कार चमगादड़ की इसी विशेषता से प्रेरित हो, तो इसमें आश्चर्य क्या?

उड़ने की कला का जिक्र हो और एल्बैट्रॉस जैसे पक्षी का ध्यान न आये, यह कैसे संभव है भला?

बिना अपने पंख फड़फड़ाये हवा में छः-छः दिन तक लगातार उड़ने की क्षमता रखनेवाला यह एक ऐसा विशाल पक्षी है जिसे देखकर शायद हमारे आधुनिक ग्लाइडर भी शर्मिन्दा हो जाएँगे। इनकी शर्मिन्दगी यह जानकर तो और भी बढ़ सकती है कि अपनी इन लम्बी उड़ानों के दौरान एल्बैट्रॉस बीच-बीच में झपकियाँ मारने का लुत्फ भी उठाते रहते हैं।

जीव-जन्तुओं का संसार वास्तव में विचित्रताओं से भरा पड़ा है। चमगादड़ जहाँ स्तनपोषी होकर उड़ने की कला में पारंगत हैं वही दूसरी ओर बर्फ से ढके दक्षिण ध्रुवीय प्रदेश पर बसने वाले पेंग्विन नामक जीव, पक्षी होने के बावजूद उड़ तो नहीं सकते परन्तु तैराकी की कला में ये इतने कुशल होते हैं कि देखनेवाला दाँतों तले अँगुली दबा ले। इनकी एक विशेषता और है। हम एक वक्त भी भूख बर्दाश्त नहीं कर पाते पर पेंग्विन पक्षी के लिए तीन-चार माह का लम्बा समय भी बिना खाये बिता देना बहुत आसान बात है। वैसे इस दौरान शरीर पर चढ़ी चर्बी की मोटी तह पिघल-पिघल कर इसे ऊर्जा अवश्य देती रहती है, यह बात अलग है।

सिर्फ उड़ने और तैरने जैसी कलाओं में ही ये जीव-जन्तु हमसे आगे हों, ऐसा नहीं है। मेहनत के मामले में भी इनके छोटे-छोटे सदस्यों तक का कोई जवाब नहीं। यहाँ मधुमक्खी जैसे नन्हें-से कीट का ही उदाहरण ले लेना काफी होगा। हमारी पूरी बिरादरी में जिस शहद की बेहद माँग है, उसकी केवल एक पाउण्ड मात्रा बनाने के लिए मधुमक्खियों को हजार, दो हजार नहीं बल्कि लगभग बीस लाख फूलों से मकरन्द इकट्ठा करना पड़ता है और इसके लिए उन्हें अपने छत्ते से फूलों तक जो आवा-जाही करनी पड़ती है। वह पृथ्वी के गिर्द पूरे तीन चक्कर लगाने के बराबर होती है। यह शायद मधुमक्खियों के उस कठिन परिश्रम का ही परिणाम है जो शहद में इतनी मिठास व पौष्टिकता भर जाती है और यही गुण तो हमें इसका दीवाना बनाये हुए है।

इतना ही नहीं, बल्कि विषम स्थितियों में जीवन को सहजता के साथ जीने की कला में भी जीव जगत के ये सदस्य हमसे बहुत आगे हैं। मरुस्थल के जहाज ऊँट के लिए तपते हुए रेतीले रेगिस्तानों में हफ्तों बिना पानी के गुजार देना कोई बहुत बड़ी बात नहीं जबकि अपने लिए तो घर बैठे भी केवल कुछ घण्टे ही बिना पानी के गुजार पाना बेहद कठिन कार्य है। वास्तव में होता क्या है कि मानव शरीर से पानी की मात्रा सिर्फ 12 प्रतिशत कम हो जाये तो इसकी हालत बिगड़ने लगती है परन्तु ऊँट के शरीर से यही मात्रा दुगुनी से भी ज्यादा घट जाए तब भी इसे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि प्रकृति ने इस विचित्र जीव को एक विशेष सुविधा से लैस कर दिया है जो हमें मुहैया नहीं है। हमारे शरीर में हुई पानी की कमी को दूर करने के लिए टिश्यूज और रक्त दोनों से ही पानी खींच लिया जाता है। इससे रक्त गाढ़ा व लिसलिसा हो जाता है और इस तरह के रक्त को पम्प करने में दिल को बहुत कठिनाई महसूस होती है जबकि ऊँट में इस कमी को रक्त से नहीं बल्कि सिर्फ टिश्यूज से पानी लेकर पूरा कर लिया जाता है जिससे दिल पर इसका कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता।

इस तरह आपने इन थोड़े से उदाहरणों से इस विशाल बिरादरी में समाये कुछेक सदस्यों की विशेषताओं व गुणों के बारे में जो कुछ जाना, उससे आपकी इन जीव-जन्तुओं के बारे में और अधिक जानने की उत्कंठा निश्चय ही बढ़ी होगी और आप इनके बारे में जितना अधिक जानने का प्रयास करेंगे, विश्वास मानिये इनके प्रति आपका लगाव व झुकाव और अधिक बढ़ता जाएगा जो अंततः पूरे विश्व के लिए बेहद कल्याणकारी सिद्ध होगा, इसमें कोई संशय नहीं।

सम्पर्क : ज़ाशिम, सी-203, कृष्णा काउण्टी,
रामपुर-नैनीताल मिनी बाईपास, बरेली-243122 (उ.प्र.)
मो. 094566 10808

रामगोपाल राही

सूरदास का भक्ति काव्य-'चिंतन'

सूरदास हिन्दी के भक्ति साहित्य की उस शाखा के पथिक रहे हैं, जिसका प्रणयन वल्लभ सम्प्रदाय के वल्लभाचार्य जी ने किया था। वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग कृष्ण जीवन की विभिन्न लीलाओं का समर्थक रहा है। कृष्ण लीलाओं का साहित्य में समावेश करने का सम्पूर्ण श्रेय सूरदास जी को ही मिलता है।

'सूर को अंधा कौन कहे'

उपरोक्त बात अक्षरक्षः सत्य जान पड़ती है, परन्तु संभव है यह पारदर्शी दृष्टि उन्हें प्रभु प्रसाद ही रहा हो। उन्होंने स्वयं कहा भी है-

'अंधे को सब कुछ दरसाई।'

इसमें भ्रम भी कहाँ हो सकता है। भगवान की महिमा अपार है। जिस काल में सूरदास गऊ घाट पर निवास करते थे उस समय इनका काव्य रचना करना तथा विशेषकर विनय पद गान करना प्रसिद्ध है। यह अनुमान सही भी हो सकता है। शारीरिक शक्तिहीनता से यह संभव है तथा सूर को कृष्ण गुणगान करने की प्रेरणा मिली हो। कतिपय विद्वानों का कथन है 'काव्य रचनाहीनता ग्रंथि का परिणाम होता है'। इन्हीं दिनों श्री वल्लभाचार्य जी महाराज से सूरदास की भेंट हुई। सूर आचार्य की शरण आए और वल्लभाचार्य ने आज्ञा की- 'तुमने अब तक विनय पदावली तो यथेष्ट मात्रा में रची है, अब कुछ प्रभु की लीला का गान करो।' यह कहते हुए आचार्य जी सूरदास को वृन्दावन अपने साथ ले आए तथा सूर को प्रभु के विशिष्ट सेवाधिकारियों में एक बना दिया। अब सूर श्री वृन्दावन बिहारी की आठों पहर सेवा में रहने लगे, और प्रभु के लीला निकेतन में प्रवेश पा लेने के कारण भगवान श्री कृष्ण के लीला वर्णन में समर्थ हुए। आचार्य वल्लभ के स्वनाम धन्य पुत्र विट्ठल गोस्वामी ने सूरदास को पुष्टिमार्ग के आठ प्रमुख कवियों में सर्वोपरि आसन दिया। अष्टछाप में सचमुच सूर की प्रतिभा का भक्त कवि अन्य नहीं दिखाई देता।

सूरदास ने श्रीमद्भागवत के आधार पर बृजवल्लभ श्रीकृष्ण का चरित्र वर्णन किया है। कहते हैं उन्होंने सूरसागर में सवा लाख पदों की रचना की थी किन्तु उनका कुल संग्रह पाँच हजार पदों से अधिक का नहीं मिलता। उसमें भी कहीं-कहीं पुनरुक्ति की पर्याप्त मात्रा है, परन्तु यह सूरदास के लिए

ही कोई विशेष बात नहीं ऐसा तो अधिकांश भक्त कवियों ने किया है जिसका कदाचित कारण यह है कि भक्त उस रस माधुरी से कभी अघाते नहीं हैं और बार-बार में अपने आराध्य की चर्चा का आस्वादन लेते हैं।

सूर काव्य- सूरदास के प्रथम स्कंध में विनय के पद मिलते हैं। ये पद सूरदास के पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले के कहे जाते हैं। उस समय सूरदास गऊघाट पर रहते थे। इन पदों में प्रतिपत्ति अथवा अनुकूल होने के भाव, भगवत इच्छा के प्रतिकूल कुछ नहीं करूँगा ऐसा भाव है। भगवान को मुक्तिदाता और भक्तवत्सल का समर्पण भाव तथा भक्त के अपने बोध के कारण तथा अन्य कई भाव पाए जाते हैं। जैसे-

'अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।

काम क्रोध को पहिर चोलना कण्ठ विषय की माल। सूरदास की सबै अविद्या दूर करहु नन्दलाल।

चरण कमल बन्दौं हरिराई।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे-अंधे को सब कछु दरसाई

कृपा अब कीजिए बलि जाऊँ ।

नाहिन मेरे आनन कहूँ अबहुँबुज बिन ठाऊँ।।'

सूर काव्य में वात्सल्य भाव की भक्ति -नन्द यशोदा और कृष्ण के सम्बन्ध में अंधे सूर की जो भावाभिव्यक्ति हुई है, वह इसी प्रकार की भक्ति भावना का उदाहरण है। सूर ने ही इस प्रकार की भक्ति का मध्य युग में आरम्भ किया था। हिन्दी का सम्पूर्ण साहित्य आदि इतिहास के विद्यार्थी की दृष्टि से देखा जाए तो भक्ति काल से लेकर आज तक वात्सल्य भाव की भक्ति सूरदास ने जिस रूप में की है, वैसे अभी तक किसी ने नहीं की।

मधुर भक्ति-भागवतकार का उद्देश्य केवल भक्ति प्रस्फुटित करना था। प्राचीन सन्तों, सूफियों तथा शैव, शैष्णावों ने भी इस भाव की भक्ति को अपनाया था। किन्तु सूर से पहले राधा कृष्ण तथा गोपियों के संयोग वियोग की कथा से मधुर भावना का प्रकाशन नहीं किया गया। संतों तथा सूफियों के मधुर भाव को राधा-कृष्ण के लोक विश्रुत तथा चिरन्तन प्रेम चरित्र पर आश्रित करके सूर ने सगुण भक्ति की उपासना पद्धति में क्रांति ही कर दी, जिसके कारण अन्य कवियों ने भी इसे अपनाया।

सूर और रहस्यवाद-सूरसागर के कुछ पद सगुण रहस्यवाद के सुन्दर उदाहरण हैं। रहस्यवाद भक्ति की आत्मा की सबसे ऊँची उड़ान है। वह परमात्मा की ओर अग्रसर होता हुआ उनके निकट पहुँच जाता है। इसमें रहस्यमयी अव्यक्तता अथवा धुँधलापन नहीं है। सूरदास जी के रहस्यवाद को सगुण रहस्यवाद कहा जा सकता है। वह नाम रूप तथा गुणों का सहारा लेकर रूप एवं गुण का अतिक्रमण करने की चेष्टा करता है। सन्तों के रहस्यवाद की तरह एकदम उनका तिरस्कार नहीं करता। इसमें सूर ने अन्योक्ति पद्धति का प्रयोग किया है। रूपक के सहारे नकारात्मक चित्र उपस्थित करने की चेष्टा की है। एक आदर्श रहस्यवाद लोक की कामना करते हुए सूरदास कहते हैं-

'चकई री! जल चरण सरोवर जहाँ न मिलन वियोग।' नित दिन राम नाम की वर्षा भयरुज

नाहिंन दुखसोग।'

दार्शनिक दृष्टि से उनका मत शुद्धद्वैत है। इसमें शंकर की माया के लिए कोई स्थान नहीं, इस प्रकार माया से रहित शुद्ध ही अद्वैत है।

वल्लभाचार्य ने भागवत की जिस कथा को लेकर साधना भक्ति को अपने भक्तों के सामने रखा है उसको रागात्मक रूप देने का श्रेय सूरदास को है।

सूर वल्लभाचार्य के प्रधान शिष्यों में थे। कृष्ण के जिस रूप को उन्होंने अपनाया था उसका कुछ चित्रण जयदेव और विद्यापति कर चुके थे। विद्यापति के गीतों को कृष्ण साहित्य के पदों में स्वीकार कर लिया गया था। पर उपास्य देवता के रूप में श्री कृष्ण और राधा के गीत उन्होंने नहीं गाए थे। भागवत लीला का वर्णन करते हुए सूरदास ने अंतिम चरण में श्री कृष्ण को 'स्वामी', 'प्रभु,' आदि के विशेषणों से सूर ने बराबर स्मरण किया है। पुष्टिमार्ग में प्रेम, लक्षण भक्ति को प्रधानता दी गई है। इस कारण कवियों ने कृष्ण का उतना ही जीवन अपनी कविता का विषय बनाया जितना वृन्दावन और उनके अनन्तर मथुरा निवास में व्यतीत हुआ था। कृष्ण भक्त कवियों की रचना इसलिए एकांगी ही रही। कृष्ण के एकांगी जीवन को ही विविध छटाओं के साथ गाया गया। सूरसागर में भक्ति के भी प्रकारों का वर्णन है, परन्तु विनय के पदों में दास्य भक्ति है। रूप भक्ति की भावना कृष्ण के रूप वर्णन में है। नन्द और यशोदा के प्रेम में वात्सल्य की आसक्ती है। कृष्ण के गो चारण के वर्णन में गोप गोपालों के प्रति आसक्ति की साख्य भक्ति करते हैं। सूर का मुख्य विषय कृष्ण लीला है। हमारे अनेक सांसारिक संबंधों में स्त्री-पुरुष संबंध भक्ति की उत्कंठा और तीव्रता की व्यंजना करने से सर्वोच्च कहलाता है। वैष्णवाचार्यों और भक्तों ने इसे समझा है। वियोग पक्ष में पहुँचकर कवि को अपना हृदय भी खाली करना पड़ता है। यद्यपि संयोग में भी चंचलता उमंग, अभिलाषा आदि का बड़ा प्रभाव पूर्वक वर्णन कर वियोग जन्य स्थिति में प्रेमी की वृत्ति अंतर्मुखी हो जाने से एक कारण हृदय की अनेक अंतर वृत्तियों को व्यंजित करने की विशेष आवश्यकता होती है। सूर ने अन्तः वृतियों का बहुत ही गंभीरता के साथ वर्णन किया है। इस सबन्ध में भ्रमरगीत सूरसागर का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। उसमें काव्य और दार्शनिक दोनों पक्षों की पुष्टि होती है। काव्यत्व और रस की दृष्टि से सूरसागर का यह अंश माधुर्य तथा वियोग श्रृंगार श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

सूर काव्य की विशेषताएँ-सूरदास की कविता में महत्त्व की एक बात और है उसमें विश्वव्यापी राग मिलता है। वह मनुष्य के हृदय का सूक्ष्म उद्गार है। उसमें मानव हृदय की सभी वृत्तियाँ अंतर्निहित हैं। सूर की कविता में सुख-दुख का तारतम्य बना हुआ है। बालकृष्ण के शैशव में, कृष्ण के मचलने में माता यशोदा को खिलाने में, माता पुत्र का शाश्वत प्रेम दर्शाया गया है। स्वभावतः मधुर बृज भाषा को कवि ने अपनी कविता द्वारा अत्यंत सरल बना दिया है। स्वयं एक गायक होने के कारण संगीत की सुमधुर ध्वनि उनके पास थी। सूर की कविता में आध्यात्मिक संकेत इस प्रकार मिलता है -कृष्ण की वंशी योगमाया है, राग वर्णन इसी मुरली की धुन से गोपिकाओं रूपी आत्माओं का आव्हान होता है। इससे समस्त बाह्य आडम्बर का नाश और लौकिक संबन्धों का परित्याग होता है। इस परीक्षा में गोपियों के उत्तीर्ण होने पर उनके साथ रासलीला सम्भव है। सोलह सौ गोपियाँ के बीच कृष्ण इसी

प्रकार वर्तमान हैं, जैसे असंख्य आत्माओं के बीच परमात्मा –यही रूपक है। लौकिक चित्रण के पीछे सूर की यही अलौकिक भावना है। सूर और तुलसी की जब तुलना की जाती है, उसमें प्रधान यही बात देखी जाती है। तुलसी का ब्रज और अवधी पर समान अधिकार था। उन्होंने जिन शैलियों में काव्य रचना की उनकी पराकाष्ठा दिखला दी। सूरसागर के समान उनकी एक रचना गीतावली है। पर रामचरितमानस तथा कवितावली के समान सूर की कोई रचना नहीं है। मनुष्य जीवन के जितनी दशाएँ तुलसी ने दिखाई हैं उतनी सूर ने नहीं। तुलसी ने चरित्र चित्रण द्वारा जो ऊँचे आदर्श उपस्थित किए हैं वैसे सूर ने नहीं। तुलसी की प्रतिभा सर्वतोंमुखी है –सूर्य की एकमुखी। पर इस एक मुखी में सूर तुलसी से बढ़कर है। तुलसी में लोक संग्रह का भाव पूर्ण है। उनकी लोक दृष्टि विस्तृत है। शिव और राम को एक–दूसरे का उपास्य बना कर उन्होंने शैवों, वैष्णवों के भेदभाव को दूर किया। पर सूर का मन इधर–उधर नहीं गया। वल्लभाचार्य के शिष्य होने के कारण सूर भगवान के प्रेममय स्वरूप को ही अपनी कविता का विषय बनाया है। जयदेव और विद्यापति द्वारा चलाई गई श्रृंगार रसपूर्ण गीत पद्धति इनके काव्य में आकर पूर्ण हुई। इनके प्रेम की विशेषता यह है कि यह प्रेम व्यक्तिगत साधना को लेकर चला है। लोक पक्ष का पालन इसमें नहीं किया गया। इस कारण जीवन की अनेकरूपता इनके काव्य में नहीं आने पायी। बाल क्रीड़ा व प्रेम के रंग रहस्य तक ही उनकी रचना परिमित थी। इसी प्रकार बाह्य सृष्टि के लिए रूपों और व्यापारों के सम्बन्ध में जो भी भावों का समावेश सूर ने किया है उनकी सीमा भी सीमित है। सूर ने राधा और कृष्ण के अंग प्रत्यंग मुद्रा, यमुना तट वंशीवट, निकुंज गोचारण, बाल विहार, चोरी, नटखटी तथा ऋतु सुलभ वस्तुओं तक ही में अपने को रक्खा है। कृष्ण के बाल चरित्र का प्रभाव नन्द यशोदा आदि के परिवार पर पड़ता दिखाई देता है। कृष्ण का छोटे–छोटे पैरों से चलना, माखन लपेट कर भागना, इधर–उधर नटखटी करने पर नन्द यशोदा का पुलकित होना, कभी पड़ोसिनों को उलाहना देना, आदि बातें जनसमूह के गौण आनंद का संचार करती दिखाई देती हैं। इन सब बातों के भीतर लोक पक्ष का बहुत ही कम समावेश है। राम के चरित्र में जिस प्रकार लोकोत्तर ओज और विक्रम का वर्णन तुलसी ने किया है। उस ओर सूर की दृष्टि नहीं गयी। तुलसी के समान लोकव्यापी प्रभाव वाले कार्य और व्यापिनी दशाएँ सूर के वर्णन में नहीं हैं।

1. सूर साहित्य का विषय गोपाल कृष्ण की गोकुल अथवा ब्रज लीला है –इनके अतिरिक्त और प्रसंग भी हैं। अन्य अवतारों की कथाएँ भी हैं परन्तु उनमें भक्त तथा कवि सूरदास के दर्शन नहीं होते।

2. सूर साहित्य में विनय के पद भी हैं जिनमें आत्म निवेदन की भावना पाई जाती है। इनमें सूरदास भक्ति के रूप में आते हैं। कवित्व शक्ति के दर्शन नहीं होते! सूरसागर इन तीनों का भाग है – विनय के पद, अवतारों की कथाएँ तथा गोकुल के बाहर श्री कृष्ण लीला, गोकुल लीला। इनके अतिरिक्त सूरसागर का एक अंश सूरसारावली नाम से प्रसिद्ध है। यह भी सूरसागर की अनुक्रमणिका समझी जाती है।

3. सूरसागर और भागवत में बहुत अधिक सम्बन्ध नहीं है। इसे भागवत का स्वतंत्र अनुवाद भी नहीं कह सकते, यद्यपि उसका ढाँचा भागवत के आधार पर खड़ा किया गया है।

4. भाषा और छंद की दृष्टि से सूरसागर मौलिक है। सूर ने अपने क्षेत्र के प्रचलित पदों को

लेकर साहित्य, काव्य, रस और, कला में परिपूर्ण कर अपना पद साहित्य सबके सामने रखा। ब्रजभाषा तो अब तक साहित्य में अप्रयुक्त भाषा थी। उसको मधुर और आकर्षक बना कर सूरदास ने सूरसागर को रस से भर दिया और यही भाषा चार सौ वर्षों से भी अधिक तक उत्तर पश्चिम भारत की कविता के राग, विराग प्रेम प्रतीति -भजन भाव की अभिव्यक्ति का साधन रही।

5. सर्वप्रथम सूरसागर में हमें जीवन के ऐसे हिस्से के दर्शन होते हैं जिसका सूरदास के पूर्व के साहित्य में चिह्न भी नहीं मिलता-वह है बाल लीला।

6. सूर साहित्य में काव्यशास्त्र के नव रसों की पुष्टि हुई है। इस क्षेत्र में उनकी यही मौलिकता है कि उन्होंने तीन ऐसे रसों की पुष्टि की है जिनका प्रयोग साहित्य में पहले नहीं हुआ था और न ही उसका कोई रूप उस समय तक स्थिर हो पाया था। यह तीनों रस हैं वात्सल्य, मधुर और भक्ति वात्सल्य रस की सृष्टि तो सूर ने ही सबसे पहले की।

7. सूरदास ने सफल चरित्रों का निर्माण किया है। उनमें मौलिकता भी है। यह चरित्र भागवत के चरित्रों से भिन्न है। सूर ने चरित्रों के सब अंगों को नहीं छुआ, परंतु जिन पर साहित्य रचा, छुआ उनमें वह बहुत गहराई से प्रवेश कर गए। पात्रों के जीवन के विशेष अंग के चित्रण में अनेक पद कहे हैं। ऐसे में पुनरावृत्ति के कारण वह पाठक के अधिक निकट आते रहे। सूर की सहृदयता ने चरित्रों को इतना प्रभावशाली बना दिया कि राधाकृष्ण ब्रज तथा हिन्दी साहित्य, काव्य तथा और भी भाषाओं के साहित्य व काव्य में स्थाई हो गए। साहित्य हो, राग रागिनी हो, गीत हो, आज भी राधा-कृष्ण सबके हृदय और होंठों पर रहते हैं। अधिकांश लोग राधे-राधे तथा राधे कृष्णा बोलते देखे जाते हैं।

8. सूरसागर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका विषय अलौकिक होते हुए भी सामान्य है जिससे साधारण व्यक्ति भी आनंद उठा सकता है।

कहा जाता है सूरदास का जन्म दिल्ली आगरा सड़क पर रुणकता गाँव में 1540 में हुआ था, और निधन पारसौली ग्राम में सम्वत् 1620 के लगभग बताया जाता है। समझा यह भी जाता है कि यह अपने माता-पिता के त्याज्य पुत्र थे। यह अंधे थे और गऊ घाट पर रहा करते थे। किन्तु जाना यह भी जाता है सूर का जन्मांध होना विवादास्पद है। उनके वर्णन कौशल को देखकर तो निश्चय ही कवि की यह उक्ति सच लगती है कि 'सूर को अंधा कौन कहे'।

सम्पर्क : लाखेरी-323615
जिला बूंदी (राज)
मो.(8239604477 व्हाटसऐप)8949682800

डॉ. पूजा मनमोहन उपाध्याय

पं. दीनदयाल उपाध्याय : चिन्तन में विकास का निदर्शन

अहर्निश राष्ट्रीय समस्याओं का चिन्तन कर राष्ट्र की प्रकृति और आदर्श संस्कृति के अनुरूप समाधान प्रस्तुत करते हुए राष्ट्र की सेवा में पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपना पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। वेद, उपनिषद् तथा भारतीय दार्शनिक में बीज रूप में सन्निहित विचार की युगानुकूल व्याख्या कर मानव समाज को एक अभिनव विकास मार्ग प्रदान किया जो कि विद्वानों और चिन्तकों के मध्य एकात्म मानव दर्शन इस अभिधान से प्रतिष्ठित है। एकात्म मानववाद का सारांश यही है कि एक ही चेतन तत्त्व सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त है तथा उस एक तत्व से प्रादुर्भूत इस जगत के सभी पदार्थों में परस्पर सम्बन्ध है अत: विनाशक कारकों का चिन्तन हो या विकास के हेतुओं की मीमांसा हो; खण्डितचिन्तन निरर्थक और निष्फल ही होगा अर्थात् एकात्म मानव दर्शन अखण्डित चिन्तन का मार्ग है। पं. दीनदयाल जी के इस व्यापक गम्भीर चिन्तन प्रवाह में से मानवीय व्यक्तित्व और उसके विकास को केन्द्र में रखकर प्रयुक्त विचारों का अन्वेषण कर प्रसंगानुकूल व्याख्यान का उपक्रम किया गया है। उपाध्याय जी के मत में मानव शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है। पंचकोशों का परिज्ञान तथा इस पंचकोशिक व्यक्तित्व के विकास हेतु विविध दृष्टियों से उन्होंने अपने व्याख्यान में संकेत किया। यथा

विकास तथा सुख का विचार : मानव स्वभाव से ही सुखों को प्राप्त करने के लिए प्रवृत्त होता है इस प्रवृत्ति की पुष्टि नि:सन्देह उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। एकात्म मानववाद सुख का भी संकलित विचार करता है केवल शारीरिक सुख पर्याप्त और पूर्ण नहीं है। यही कारण है कि पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि उनकी जीवन पद्धति और चिन्तन शैली में कोई मौलिक दोष अवश्य विद्यमान है जिसके कारण धन-धान्य ऐश्वर्यादि से सम्पन्न होने पर भी उनके जीवन में सन्तोष या आनन्द नहीं है। एकात्म मानव दर्शन इसका उत्तर देता है कि '..... कारण यह है कि वे मनुष्य का पूर्ण विचार नहीं कर पाए।' अपूर्ण विचार और खण्डितचिन्तन इस क्लेश का मूल है। भारतीय चिन्तन मन, बुद्धि, आत्मा और शरीर का समन्वित चिन्तन करता है किन्तु पाश्चात्य चिन्तक केवल शारीरिक सुख के विचार में ही व्याप्त हैं। शारीरिक सुख की दृष्टि से कोई धनिक तृप्त हो सकता है किन्तु आवश्यक नहीं कि उसके मन में भी शान्ति हो। मन का सुख, शारीरिक सुख से भिन्न है। इसी तरह भिन्न-भिन्न कारणों से बौद्धिक लब्धि न होने पर बुद्धिगम्य सुखानुभूति नहीं होती। पूर्वोक्त सभी सुखों से ऊपर आत्मिक आनन्द तो विशिष्ट और अनिर्वचनीय ही है; अत: पंचकोशात्मक सुख तथा सन्तुष्टि पूर्ण विकास का सोपान है।

कर्मवाद : भारतीय दर्शन के आधार स्तम्भ, कर्मवाद में दीनदयाल जी का पूर्ण विश्वास है।

कर्मवाद पर ही पुनर्जन्म सिद्धान्त आधारित है तथा इन मान्यताओं का साक्षात् प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर परिलक्षित होता है। व्यक्तित्व निर्माण के विषय में उपाध्याय जी का स्पष्ट कथन है कि 'व्यक्ति जीवन भर में जितने कर्म करता है, जितने संस्कारों का प्रभाव उस पर होता है या जो विचार आते हैं उन सब का उस पर एक संकलित परिणाम होता है। इस संकलित परिणाम से उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है।' वर्तमान जन्म के कर्म प्रत्यक्ष रूप से व्यक्तित्व को निर्मित और प्रभावित करते हुए दिखाई देते हैं अतः वहाँ सन्देह का कोई अवसर नहीं है। कर्मवाद का सिद्धान्त सतत् कर्मों में परिष्कार हेतु प्रेरित करता है।

विकास और मानव प्रकृति : आधुनिक मनोविज्ञान में मानव प्रकृति और अभिरुचि को विकास के परिप्रेक्ष्य में अत्यधिक महत्व दिया गया है। उपाध्याय जी का कथन है कि 'प्रकृति बलवती होती है उसके प्रतिकूल काम करने से अथवा उसे उसकी ओर दुर्लक्ष्य करने से कष्ट होता। प्रकृति का उन्नयन कर उसे संस्कृति बनाया जाता है पर उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। आधुनिक मनोविज्ञान यह बताता है कि किस प्रकार मानव प्रकृति एवं भावों की अवहेलना से जीवन अनेक रोगों का शिकार हो जाता है। ऐसा व्यक्ति उदासीन एवं अनमना बना रहता है उसकी कर्म शक्ति क्षीण हो जाती है अथवा विकृत होकर विपथगामिनी बन जाती है।' पाश्चात्य चिन्तन से तुलना की जाये तो एकात्म मानवदर्शन में प्रयुक्त इस सिद्धान्त का वैशिष्ट्य यह है कि प्रकृति को संस्कृति बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये और यही प्रयत्न मनुष्य को पशुओं से भिन्न करता है। अभिरुचि अथवा इच्छा धर्म और नीति से युक्त होना चाहिए अर्थात् निरंकुश व्यवहार किसी भी दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं है। वहाँ विवेक की आवश्यकता है, इसीलिए भारतीय चिन्तन अपेक्षाकृत अति गंभीर है और इसी का प्रतिबिम्ब एकात्म मानव दर्शन में भी दिखाई देता है।

व्यक्तित्व विकास और पुरुषार्थ विचार : जो कार्य मानव के सामर्थ्य का प्रतिपादन करते हैं वे पुरुषार्थ कहलाते हैं। पुरुषार्थ पालन की भावना आनन्द देने वाली होती है इसलिए पुरुषार्थ मानव की सहज मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ हैं। यह शरीर सभी पुरुषार्थों के लिए साधन है। प्रसिद्ध सूक्ति है- 'शरीरमाद्यंखलुधर्मसाधनम्'/दीनदयाल जी का कथन है कि पाश्चात्य चिन्तकों ने... 'शरीर को साध्य माना है, परन्तु हमने उसे साधन समझा है।' व्यक्तित्व के सभी अंगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कर्तव्य मार्ग का उपदेश देने हेतु प्राचीन ग्रन्थों में पुरुषार्थ सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से उपाध्याय जी ने पुरुषार्थों का संघटित चिन्तन किया है। चारों पुरुषार्थों में परस्पर पूरक भाव और सन्तुलन की अपेक्षा है। मानव जीवन के लक्ष्य की पूर्ति हेतु विद्या और अविद्या इन दोनों की उपासना अपेक्षित है। ईशावास्योपनिषद् में यह तथ्य स्पष्ट किया गया है- 'अविद्ययामृत्युंतीर्त्वाविद्ययाऽमृतमश्नुते।' तात्पर्य यह है कि अर्थ और काम भी महत्वपूर्ण हैं किन्तु धर्म का प्राधान्य सर्वत्र जानना चाहिए। धर्म की परिधि में सम्पूर्ण मानवता सन्निहित है अतः व्यक्ति धर्म से ही नियन्त्रित, प्रेरित और विकसित होता है। धर्म पालक मनुष्य स्वेच्छाचारी नहीं होता।

पाश्चात्य मनोविज्ञान में विकास के सिद्धान्त में फ्रायड इत्यादि मनोवैज्ञानिकों के विचारों के अनुसार जो वर्णन किया गया है, वह तो भारतीय दृष्टि में अपूर्ण है। भारतीय दृष्टि से मानव जीवन के कर्तव्याकर्तव्य मार्ग की पूर्वपीठीका में धर्मशास्त्र प्रतिष्ठित होता है। मानव की प्रकृति में षड्रिपु कामक्रोधादि हैं किन्तु उन्हीं के साथ शम दम आदि अनेक गुणों का भी उल्लेख है। मनुष्यों में विवेक शक्ति है इसीलिए वे जीवन में उत्कर्ष के

लिए मानदण्डों का चयन कर सकते हैं। वास्तविक सुख के जो नियम अपने अनुभव से ऋषियों ने और विद्वानों ने खोजे हैं। वे नीति तथा धर्म शास्त्र के हेतु हैं; इसीलिए उपाध्याय महोदय का कथन है कि 'दम हमारे जीवन का आधार हो सकता है किन्तु क्रोध की स्थिति वैसी नहीं है' अर्थात् परिस्थिति के अनुसार क्रोध का शमन हितकर होता है। सत्य से सामाजिक सम्बन्ध प्रियतर होते हैं। ऐसे नियम ही धर्म हैं अथवा नीतिशास्त्र हैं। धर्म के साथ पूरे जीवन का विचार ही व्यक्तित्व का विकास करने में समर्थ है, यही सारांश है।

अर्थ के अभाव में मनुष्य धर्म को धारण करने में असमर्थ होता है जैसा हितोपदेश में भी कहा है –

'त्यजेत्क्षुधार्ता महिला स्वपुत्रं, खादेत्क्षुधार्ता भुजगीस्वमण्डम्।
बुभुक्षित: किं न करोति पापंक्षीणानरानिष्करुणा भवन्ति॥' (हितो.4/60)

किन्तु मनुष्य अर्थ के अधीन हो जाए तो भी धर्म मार्ग पर खड़ा रहने में समर्थ नहीं है अत: अर्थार्जन मानवधर्म के अनुकूल होना चाहिए धर्म मानव को विकसित करे, पोषित करे न कि उसका विनाश करे। इस सन्दर्भ में पर्यावरण संरक्षण विषयक दायित्व भी स्पष्ट होते हैं। धनार्जन के लिए प्रकृति की अपार सम्पदा का उपयोग करने में भी मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए यही हमारा आदर्श है– 'तेनत्यक्तेनभुंजिथा' यही हमारी संस्कृति भी है और मनीषियों के द्वारा अपरिग्रह सिद्धान्त भी इसी दृष्टिकोण से प्रतिपादित किया गया है। आज वैश्विक मंचों पर विद्वान् और नेता लोकहित के लिए अल्प संसाधनों के अधिकतम उपयोग करने के लिए अपनी आस्था प्रकट कर रहे हैं, यह वस्तुत: अपरिग्रह विचार की ही नूतन व्याख्या है। तात्पर्य यह है कि धर्मानुकूल अर्थ चिन्तन मानव का वैयक्तिक और सामाजिक विकास करता है।

उपाध्याय महोदय का कथन है कि मनुष्य अर्थवान् भी हो किन्तु यदि उसकी इच्छा पूर्ति नहीं होती तो आनन्ददायक कर्मों में उसकी प्रवृत्ति नहीं होती। यदि वह मन की सन्तुष्टि प्राप्त नहीं करता तब भी धर्म की स्थिति नहीं हो सकती और कामासक्त होकर वह यदि लम्पट की तरह आचरण करे तो भी धर्म की हानि होती है। व्यक्तित्व में विकारों को रोकने हेतु पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक कामपूर्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं किन्तु भारतीय विचारों से अनुप्राणित एकात्म मानव दर्शन अनियन्त्रित कामशक्ति की प्रशंसा नहीं करता। गीता में प्रदत्त भगवान के उपदेश को दीनदयाल जी आदर्श मानते हैं–

'बलंबलवतांचाहंकामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धोभूतेषुकामोऽस्मिभरतर्षभ॥' (गीता।/11)

सारांश यह है कि धर्मयुक्त अर्थ और काम ही उचित अवसर प्राप्त होने पर मोक्ष के लिए प्रेरित करते हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय मिलकर ही मानव विकास के लिए उत्कर्ष सूचित करते हैं। उपाध्याय महोदय का मत है कि 'पुरुषार्थों का संकलित विचार पूर्ण मानव और एकात्म मानव की परिकल्पना है जो हमारा आराध्य तथा हमारी आराधना का साधन, दोनों ही है।'

आत्मबोध : विकास का प्रथम सोपान वस्तुत: आत्मबोध है। दीनदयाल जी का विचार है कि 'भगवान् की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव अपने आपको खोता जा रहा है। हमें मानव को पुन: अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करना होगा। उसकी गरिमा का उसे ज्ञान कराना होगा। उसकी शक्तियों को जगाना होगा ताकि उसे देवत्व की प्राप्ति हो। हमें उसे पुरुषार्थशील बनाना होगा।' हम कह सकते हैं कि आत्मिक विकास के लिए मनुष्य में आत्मगौरव का भाव होना अत्यन्त आवश्यक है। सर्वप्रथम अपनी शक्ति का अनुभव करते हुए

मानव आत्मग्लानि का परित्याग कर कर्मशील बने।

आत्म विस्तार : आधुनिक मनोवैज्ञानिक मैक्डूगल इत्यादि समूह की शक्ति को स्वीकार करते हैं; वह शक्ति भी मानव को प्रेरित और नियन्त्रित करती है। समूह में बुद्धि और मन का चिन्तन वैयक्तिक चिन्तन से भिन्न होता है। मनुष्य एकाकी जीवित रहने में असमर्थ है इसलिए समूह निर्माण उसका सहज स्वभाव है। 'एकोऽहं बहुस्याम' ऐसी भावना से ही सृष्टि हुई है यही हमारा भारतीय दर्शन है। उपाध्याय जी के अनुसार मानव जीवन अहम् (मैं) से वयम् (हम) तक की एक यात्रा है इसलिए मानव यदि अहंकार की परिधि से बाहर नहीं आता तो उसका विकास कभी भी पूर्ण नहीं होता है। आत्म चेतना के विस्तार के लिए क्रमशः परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, सृष्टि और परमेष्ठी विकास के सोपान है। जैसे-जैसे मनुष्य उच्चतर सोपान पर आरोहण करता है वैसे-वैसे उसका समुत्कर्ष होता है। उपाध्याय जी का कहना था कि 'व्यक्ति केवल एक वचन 'मैं' तक सीमित नहीं, उसका बहुवचन 'हमसे भी अभिन्न सम्बन्ध है। अतः हमें समाज व समष्टि का भी विचार करना होगा।'

अन्योन्याश्रय भाव : उपाध्याय जी का कथन है कि 'मात्स्य न्याय' अथवा सिद्धान्त जंगल के विधान हो सकते हैं। सभ्य समाज में ऐसा व्यवहार सम्भव नहीं है। यदि मानव संघर्ष ही मानदण्ड के रूप में हम स्वीकार कर लें तो कभी भी मनुष्य के पूर्ण विकास का लक्ष्य पूरा नहीं होगा। प्रकृति में केवल संघर्ष ही नहीं है। कभी वह विकृति का द्योतक होता है; सर्वदा संस्कृति या प्रकृति नहीं कहलाता। संस्कृति, प्रकृति को विकसित करती है और विकृति की उपेक्षा करती है। सृष्टि में पशुओं में, मनुष्यों में सभी प्राणियों और वनस्पतियों में परस्पर सहकार भाव से सृष्टि चक्र गतिशील होता है। प्रकृति में इस भाव को देखकर जो सभी के साथ समन्वय करने का प्रयत्न करता है उसके व्यक्तित्व का विकास चरम स्थान को स्पर्श करता है।

समन्वय सिद्धान्त : निष्कर्ष यह है कि व्यक्तित्व विकास के लिए उपर्युक्त सभी विचार और व्यवहार तब मूर्त रूप को प्राप्त करते हैं जब 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' का भाव होता है अर्थात् सभी के मूल में एकात्मभाव ही है। यदि यह भाव हृदय में विद्यमान होता है तो मनुष्य कभी भी अधर्म का आचरण करने के लिए पुरुषार्थ से स्खलित नहीं हो सकता। परमार्थ चिन्तन से उसका आत्मविस्तार प्रकृति के प्रत्येक सूक्ष्म तत्त्व तक हो जाता है। यही विचार पंचकोशात्मक विकास में भी सन्तुलन को उत्पन्न करता है। यह तो सर्वविदित है कि जो मनुष्य सर्वप्रथम आत्मविकास में सन्तुलन और समन्वय कर सकता है वही पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में समन्वय कर सकता है। व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से दीनदयाल उपाध्याय जी के चिन्तन का सारांश यह कहा जा सकता है कि समन्वय विकास का लक्षण है। मनुष्य स्वयं के साथ कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र तथा विश्व का अद्भुत और प्रतिनिधि है। इसलिए जिस मनुष्य के जीवन के सभी अंगों में समन्वय है, वही भारतीय चिन्तन के अनुरूप व्यक्तित्व का निर्दोष उदाहरण प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकता है।

सम्पर्क : डॉ.पूजा मनमोहन उपाध्याय
सहायकाचार्या, विशिष्ट संस्कृत विभाग
महर्षिपाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय
उज्जैन (म.प्र.)

पं. रूपराज शर्मा

श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सर संघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर अर्थात् गुरु जी का जन्म 19 फरवरी सन 1906 तदनुसार विक्रम संवत 1962 माघ कृष्ण एकादशी के दिन नागपुर में हुआ था। इनके पिता श्री सदाशिवराव तथा माता श्रीमती लक्ष्मीबाई थीं। उनकी नौ संतानों में गुरुजी चौथी संतान थे। इनका पारिवारिक नाम मधु था।

इनके पिता शासकीय सेवा में शिक्षक थे जिस कारण उनका स्थानान्तरण नागपुर, रायपुर, खंडवा, दुर्ग आदि स्थानों पर होता रहता था जिस कारण इन्हें भी भिन्न-भिन्न भाषा बोलने का अवसर मिला। ये पढ़ाई के अतिरिक्त वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भी हमेशा प्रथम स्थान प्राप्त करते थे। उन्होंने सन 1922 में जुबली हाई स्कूल चन्द्रपुर से मेट्रिक तथा सन 1924 में हिस्लाप कॉलेज नागपुर से इन्टर परीक्षा विज्ञान शाखा से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। हिस्लाप कॉलेज ईसाई मशीनरी द्वारा संचालित था जिसमें बाइबल का अध्ययन अनिवार्य था इसलिए गुरु जी ने उन दो वर्षों में बाइबल का गहराई से अध्ययन किया। 1926 में बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय से बी.एस.सी. तथा 1928 में प्राणी शास्त्र विषय से एम.एस.सी. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इस बीच बनारस विश्व विद्यालय के ग्रन्थालय के साहित्य का उपयोग उन्होंने संस्कृत महाकाव्यों पाश्चात्य दर्शन साहित्य तथा श्री रामकृष्ण परमहंस व स्वामी विवेकानन्द के साहित्य व अन्य धर्म-सम्प्रदायों के साहित्य का भी अध्ययन किया। एम.एस.सी. करने के बाद मत्स्य जीवन विषय पर शोध प्रबन्ध; पी.एच.डी. लिखने के लिए ये मद्रास में मत्स्य संग्रहालय में एक वर्ष तक रहे किन्तु घरेलू आर्थिक कठिनाइयों के कारण शोधकार्य पूर्ण नहीं हो सका 1930 में महामना मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें तीन वर्ष के लिए बनारस विश्वविद्यालय में प्राणी शास्त्र विषय के प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति दे दी।

काशी विश्वविद्यालय परिसर में ही कुछ युवा विद्यार्थी स्वयं सेवक संघ की शाखा लगाते थे उनमें एक भैया जी दाणी ने भी गोलवलकर जी का अधिकाधिक लाभ लेने के उद्देश्य से उन्हें शाखा में लाने का प्रयास किया स्वयं सेवक छात्र अध्ययन के साथ-साथ शाखा में भी उनके बौद्धिक से अपने ज्ञान में अभिवृद्धि की लालसा रखते थे वे सभी इन्हें 'गुरु जी' नाम से संबोधित करते थे जो जीवन पर्यन्त उनके नाम का विशेषण बनकर रह गया और ये सभी के गुरु जी हो गये। सन 1932 के विजयादशमी महोत्सव

में उन्हें राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संस्थापक तथा सर संघचालक डॉ. हेडगेवार का भैया जी दाणी के माध्यम से नागपुर आने का निमंत्रण मिला तब उन्हें संघ की शाखाओं का सूक्ष्मता से अवलोकन करने का तथा संघ के उद्देश्यों को भी समझने का अवसर मिला। तब से वे स्वयं सेवक संघ की गतिविधियों में सक्रिय रूप से भागीदारी निभाने लगे।

काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पद के अपने तीन वर्ष के कार्यकाल पूर्ण होने पर वे पुनः नागपुर आ गये तथा अपने मामा श्री रायकर के पास रहने लगे तथा यहाँ उन्होंने शिक्षण का कार्य (कोचिंग क्लास) प्रारम्भ कर दी तथा डॉ. हेडगेवार जी के भी सम्पर्क में रहने लगे।

नागपुर के घंतोली स्थित श्री रामकृष्ण आश्रम से अध्यात्म दर्शन की पिपाशा को शांत करने के उद्देश्य से जुड़ गये। यहाँ आश्रम प्रमुख स्वामी श्री भाष्करैश्वरानन्द जी के साथ इनके प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित हो गये आश्रम में अध्यात्म चिन्तन और ध्यान धारणा के प्रति इनका आकर्षण बढ़ता गया तथा उनकी आत्मा आत्म साक्षात्कार के लिए तड़पने लगी। इसी के साथ डॉ. हेडगवार के साथ संघ की बैठकों में भी सम्मिलित रहते। सन 1935 में अकोला में सम्पन्न संघ शिक्षा वर्ग का दायित्व भी उन्होंने सँभाला इसी बीच कानून की परीक्षा भी उन्होंने उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण की एवं वकालत भी करने लगे। किन्तु किसी अनुभूति सम्पन्न सदगुरु के चरणों में बैठकर उनके सान्निध्य में रहकर आत्म साक्षात्कार करने की इनकी अभिलाषा बढ़ने लगी। सन 1936 में अचानक ही कलकत्ता के पास सारगाछी में श्री रामकृष्ण परमहंस के परम शिष्य तथा स्वामी विवेकानन्द के परम मित्र स्वामी अखण्डानन्द से दीक्षा प्राप्त करने चले गये। आश्रम में रहकर उनकी सेवा करते अध्यात्म ज्ञान के साथ आत्म चिन्तन में लीन रहने लगे, यहाँ रहते हुए उन्होंने दाढ़ी नहीं बन बाई सिर के केश भी नहीं कटवाये। एक दिन गुरुवर अखण्डानन्द ने कहा कि आपके ये केश बहुत अच्छे लगते हैं। उन्हें अब मत कटवाना तब से गुरु जी ने जीवन पर्यन्त सिर के बाल एवं दाढ़ी कभी नहीं उतरवाई।

स्वामी अखण्डानन्द जी के देह त्याग के उपरान्त गुरु जी नागपुर के रामकृष्ण आश्रम में रहे तथा यहाँ रहकर उन्होंने स्वामी विवेकानन्द जी के शिकागो व्याख्यान का अंग्रेजी से मराठी में अनुवाद किया।

सन 1938 के संघ शिक्षा वर्ग में गुरु जी को सर्वाधिकारी नियुक्त किया गया। उनकी अनुशासनप्रियता तथा स्वयं सेवकों के प्रति इनका वात्सल्य, सेवाभाव तथा असीम कार्य क्षमता का कार्यकर्ताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ा। इस संघ शिक्षा वर्ग में गुरु जी आद्य सर संघचालक जी को निकट से समझ सके तथा उनका सहवास प्राप्त कर सके। वर्धा के पास सिंधी में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के मुख्य स्वयं सेवकों की बैठक फरवरी 1939 में आयोजित की गई। 10 दिन चली इस बैठक में संघ शाखा की कार्यपद्धती का स्वरूप निश्चित किया गया। इस बैठक में गुरु जी के अतिरिक्त अप्पा जोशी, श्री बाला साहेब देवरस, श्री नाना साहेब टालाटुले जैसे प्रमुख लोग सम्मिलित हुए। बैठक में एक-एक विषय क्रम से लिया जाता जिस पर उपस्थित प्रत्येक स्वयं सेवक अपनी-अपनी बुद्धि व विवेक के अनुसार अपने विचार रखता तथा अपने सुझाव देता। गुरु जी ने भी अपने विचार खुलकर प्रकट किये। उनके विचारों में आक्रामकता से डॉक्टर जी अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने संघ की बैठक की समाप्ति पर मन ही मन उन्हें भावी सर संघचालक नियुक्त कर लिया।

डॉक्टर जी अस्वस्थ रहने लगे थे। अस्वस्थ रहते हुए भी उन्होंने नागपुर के पंद्रह दिन चलने वाले संघ शिक्षा वर्ग में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई। इसी समय उन्होंने वर्धा के श्री अप्पा जोशी, विदर्भ के श्री वापू साहेब, सोहनी नागपुर के श्री बाबा साहेब पाध्ये, श्री बाबा साहेब घटाटे एवं महराष्ट्र प्रांत के श्री काशीनाथ पंत उक्त पाँचों संघचालकों की उपस्थिति में गुरु जी से आग्रह किया कि अब आप ही सर संघ संचालक का पद ग्रहण कर संघ का कार्य सँभालें।

26 जून सन 1940 को संघ के आद्य सरसंघचालक डॉक्टर केशव राव बलिराव हेडगेवार जी की आत्मा इस देह को त्याग अनन्त में विलीन हो गई। 3 जुलाई 1940 को डॉक्टर जी की तेरहवीं के दिन रेशम बाग स्थित डॉक्टर हेडगेवार की पवित्र समाधि पर पुष्पांजलि सभा में नागपुर प्रांत के संघचालक श्री बाबासाहेब पाध्ये ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के नये सर संघचालक के रूप में श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर जी के नाम की घोषणा कर दी।

आद्य सर संघचालक डॉक्टर हेडगेवार जी का निधन संघ के लिए बहुत बड़ा आघात था। डॉक्टर जी ने अपने खून-पसीने से सींचकर जिस संगठन को खड़ा किया था तथा 15 वर्षों तक उसमें निरन्तरता बनाये रखी थी, उसका दायित्व अब गुरु जी पर आ पड़ा था। गुरु जी ने भी संगठन को मजबूती प्रदान की तथा संघ की शाखाओं का विस्तार किया।

30 जनवरी 1948 को गाँधी जी की हत्या के गलत आरोप में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर तत्कालीन सरकार ने 4 फरवरी 1948 को प्रतिबंध लगा दिया। तब गुरु जी ने इस घटना की तीव्र निंदा की फिर भी देशभर में स्वयं सेवकों की गिरफ्तारी हुई। गुरु जी ने पत्रिकाओं के माध्यम से आह्वान किया कि संघ पर या तो आरोप सिद्ध करो या फिर प्रतिबन्ध हटाओ। 26 फरवरी 1948 को देश के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू को गृहमंत्री श्री वल्लभभाई पटेल ने अपने पत्र में लिखा था गाँधी हत्या के काण्ड में मैंने स्वयं पूरी जानकारी प्राप्त की जिससे जुड़े सभी अपराधी पकड़ में आ गये हैं। उनमें एक भी व्यक्ति राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का नहीं है। 9 दिसम्बर 1948 को सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिसमें 5 हजार बाल स्वयं सेवकों ने भाग लिया और 7090 स्वयं सेवकों ने विभिन्न जेलों को भर दिया। इसके बाद संघ को लिखित संविधान बनाने का आदेश देकर प्रतिबन्ध हटा लिया गया और गाँधी हत्या का इसमें जिक्र तक नहीं हुआ। इस प्रकार गुरु जी के सर संघ चालक रहते संघ का देश में अत्याधिक विस्तार हुआ। 5 जून 1973 के दिन गुरु जी नागपुर में अनन्त में लीन हो गये।

सम्पर्क : पं.रूपराज शर्मा, महंत
श्री कृष्ण प्रणामी मंदिर, 176 ए शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.)
मो. 9406518103

डॉ. गरिमा संजय दुबे

विरह तप जब फले, तब राम आते हैं।

रामायण, रामचरितमानस केवल राम के पुरुषार्थ का, बल वीरता, शौर्य, चरित्र, धर्म, आदर्श का ही ग्रंथ नहीं है अपितु वह एक विरह ग्रंथ भी है। राम के जीवन में आगमन की पूर्व पीठिका विरह की मसी, विरह के भाव से ही रची गई है। सतयुग में भी कलयुग में भी। 'वियोगी होगा पहला कवि, विरह से उपजा होगा गान' (सुमित्रा नंदन पंत) की बात करें या 'अवर स्वीटेस्ट सोंग्स आर दोज़ देट टेल ऑफ सेडस्ट थॉट' (पी.बी.शैले) की पृष्ठभूमि में जाएँ तो बात सत्य प्रतीत होती है।

यूँ ही नहीं कह रही कि यह विरह का गान है। आदिकवि वाल्मीकि क्रौंच वध से विरह पीड़ा झेलती क्रौंची को देख रामायण की प्रेरणा पाते हैं, तो पत्नी से धिक्कार पा व्यथित, विरही महाकवि तुलसीदास रामचरित मानस रच देते हैं। भक्ति, संस्कार और चेतना में रही होगी। किंतु अवचेतन में कहीं विरह का दंश भी अवश्य होगा (मुझे क्षमा करें सुधि जन)। विष्णु माया से कौन बचा, जब स्वयं मायापति विरह के दृश्य रचते हैं तो क्या अपने भक्तों के मन में विरह की माया न जगाई होगी ताकि कलम में वह भाव, वह करुणा उतरे जो उस भाव को स्थापित कर दे।

विरह के कितने रूप हैं, उसमें राम कथा के हेतु ही विरह से प्रारंभ होते हैं, सती की राम परीक्षा, शिव का त्याग, सती का आत्मदाह, शिव का विरह वियोग, फिर कामदेव के भस्म होने पर रति विलाप, नारद का मोहिनी वियोग, इतने विरह के ताप से जिस कथा की उत्पति हो उसे केवल पुरुषार्थ और धर्म ग्रंथ कह देना शायद उन सब विरह योग के साथ अन्याय होगा। विरह भी एक योग ही तो है।

राम को पाने के लिए सबने विरह सहा है, या इस विरह ने ही राम की राम रूप में प्रतिष्ठा की यह कहा जा सकता है। वियोग है श्रवण कुमार का उसके माता-पिता से। अंधे माता-पिता का प्राण त्याग विरह व्यथा से ही हुआ है। रामकथा में धर्म और पुरुषार्थ की गंगा जमुना के साथ विरह की लुप्त सरस्वती सदा बहती रहती है, और इन तीनों के मिलन से ही एक प्रयाग का सृजन होता है। रामकथा इस प्रयाग के दर्शन के बिना अधूरी है। इसमें स्नान किये बिना पुण्य अर्जन न हो सकेगा, न राम का मर्म जाना जा सकेगा।

धर्म, पुरुषार्थ के साथ विरह की तीसरी धारा ही इस त्रिवेणी को पूर्णता प्रदान करती है। कौशल्या ने जीवन के बड़े हिस्से में विरह को ही साधा है। पति और पुत्र दोनों का विरह, एक के धर्म, दूजे की मर्यादा के बीच ममता और वात्सल्य के आँचल में विरह निधि ही शोभा पाती रही। कैकयी और सुमित्रा

का विरह क्या कौशल्या से कम है, कैकयी के विरह में तो पश्चाताप और पुत्र के धिक्कार का अंश भी शामिल है, उसकी तीवृता का क्या माप। पुत्र वियोग में प्राण त्यागने वाले दशरथ की व्यथा अनुभूत ही की जा सकती है। न्याय, धर्म, मर्यादा के द्वंद में घिरे राजा का उत्तरीय सदा राम वियोग के अश्रुओं से भीगा ही रहा फिर उसे केवल चिताग्नि ही सुखा सकी।

किसी ने जीवन की इस पुरुषार्थी कथा में उस कष्ट को न जाना, हम भी राम की ओर ही देखते रहे।

किंतु क्या राम होना सहज है?

किंतु क्या राम के सम्बन्धी होना सहज है?

पुरुषार्थी, मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सान्निध्य, उनके प्रियजन होने का सौभाग्य क्या बिन मोल मिल जायेगा..?

नहीं मूल्य तो चुकाना होगा ... लेकिन क्या कोई लौकिक वस्तु से राम के प्रिय होने का मूल्य चुकाया जा सकता है...?

उसके लिए तो तप की कसौटी पर कसा जाना होगा। जितने राम तपी हैं, जितने राम धीर हैं, गम्भीर हैं, उतने न सही उसका अंश मात्र तो तप करना होगा। विरह की व्याकुलता से बड़ा तप कौन सा भला। प्रिय का वियोग ही जब हरि के वियोग का तप बन जाए तब राम आते हैं।

प्रभु मिलन की क्या त्वरा होती है। कैसी छटपटाहट यह भुक्तभोगी ही जान सकता है। उस त्वरा का चरम हो तब राम आते हैं। उर्मिला का विरह वर्णन कर गए राष्ट्रकवि गुप्त, लक्ष्मण का विरह कौन लिखे? भरत विरही नहीं हैं क्या? 14 वर्ष का वनवास तो धर्मात्मा भरत ने भी काटा था। और शत्रुघ्न माताओं की, राज्य की व्यवस्था में गृहस्थ कब बने शत्रुघ्न?

मांडवी, श्रुतकीर्ति का विरह क्यों न दिखाई दिया किसी को...?

सीता का, राम का विरह केंद्र में है, उस विरह का वर्णन भी है और प्रदर्शन भी। राम-सीता मानवीय चरित्र प्रदर्शित करने के लिए अपने विरह को छुपाते नहीं, राम जानकी हरण से बहुत व्याकुल होते हैं, वे राम जो धीर मति हैं, दूसरों के पालनहार हैं, सबके सम्बल हैं वे अधीर हो विलाप करते हैं,

'हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी, तुम देखी सीता मृगनयनी' (रामचरित मानस)

मायापति की माया और उनका विलाप देख लक्ष्मण चकित हैं। सीता का रुदन मुखर है किंतु बाकी सबका विरह कितना मौन है। लक्ष्मण कितने संयत हैं अपने विरह में अपनी साधना में, कभी भूले से भी याद न आई उन्हें उर्मिला की। उर्मिला कितनी शांत हैं, विरह को नियति मान, तप मान मौन हो सहती रहीं, उसके मौन से तो अयोध्या काँप गई होगी। माताएँ ईश्वर शरण में हैं।

शबरी की भक्ति भी राम के विरह से पूर्ण और राम की प्राप्ति पर समाप्त, अहिल्या की प्रतीक्षा भी एक मौन विरह है। मानों पूरी प्रकृति तप कर रही है, न जाने कितनों ने अपने उद्धार के लिए राम की प्रतीक्षा की है। यह प्रतीक्षा भारत वर्ष का भाग्य बन गई, अब राम आते हैं। अयोध्या में ऐसा कौन है जो विरह दग्ध न हुआ हो, राम के वनवास ने किसे तपस्वी नहीं बनाया।

राम विहीन अयोध्या की कोई कल्पना भी हो सकती है भला? राम विहीन भारत की कल्पना भी हो सकती है भला?

जब वर्षों के ऐसे तप फलते हैं तो राम आते हैं।

ऐसा ही मौन तप भारत भी सैकड़ों वर्षों से कर रहा है राम।

त्रेता में तो 14 वर्ष के तप ने सबको राम से पुनः मिला दिया था, किंतु कलयुग का तप बहुत दीर्घ था। मेरे राम, बहुत दीर्घ, इस बार अयोध्या ने ही नहीं, पूरे आर्यावर्त ने तप किया था। कोटि-कोटि मनुष्यों की चेतना घनीभूत हुई, कितनी प्यासी आँखों ने वियोग में प्राण त्याग दिए।

अन्याय का प्रतिकार तो राम ने भी किया, युद्ध तो राम को भी करना पड़ा, संघर्ष तो जीवन भर राम का सहचर रहा। सदाचारी, मर्यादा पुरुषोत्तम होने का अर्थ सदा अन्याय सहना तो नहीं होता, राम का पुरुषार्थ इसकी सगर्व घोषणा करता है।

जिसने कभी किसी को निर्वासित न किया हो, वह राम क्यों कठोर नियति रूपी मंथरा और कैकयी के षड्यंत्रों से निर्वासित हुए... सदा ही? क्या निर्वासन के बाद ही महत्ता की प्रतिष्ठा होती है? जैसे तप के बाद सिद्धि और समाधी का आनंद। क्या वैसे ही पीड़ा के बाद ही आनंद देने की ठान रखी है श्री राम? सहज क्यों नहीं दे देते कुछ?

कहतीं हैं न आदरणीया आशापूर्णा देवी, 'बिना कष्ट के कृष्ण नहीं मिलते' (सुवर्णलता) वैसे ही बिना रण के राम की प्रतिष्ठा कैसे हो?

राम भारत की आस्था हैं, रोम-रोम में बसने वाले राम को कभी भारतीय चेतना से निर्वासित नहीं किया जा सकेगा।

भारत को राम से विलग कर देखना भारत की पहचान पर प्रहार करना है, भारत राम है, राम भारत हैं। ब्रह्मा का कथन कि 'जब तक संसार में नदियाँ, पर्वत हैं तब तक राम रहेंगे' व्यर्थ नहीं हो सकता। उसी एक बात का, उसी एक नाम का संबल लिए भारत का भोला मन अपना जीवन जीता है।

'प्रिय अमिय मंदर विरहु, भरत पयोधि गंभीर
मथि प्रकटेहु सुर साधु हित, कृपा सिंधु रघुबीर' (रामचरित मानस)

जिस तरह त्रेता में भरत के वियोग का मंथन कर राम ने उन्हें तारा था वैसे ही, कलयुग में पूरे भारत की चेतना का मंथन भी राम करते रहे हैं, इसमें मथनी भी भारत है, मथा भी गया भारत और इस मंथन से निकला विष भी भारत ने अपने कंठ में धारण कर लिया।

संपूर्ण भारतीय चेतना नीलकंठ हुई, जिसने इतने कष्टों के बाद भी उस विष को न अपनी चेतना को हरने दिया, न उसे उगल कर संसार को कष्ट दिया। विष पीकर भी, समदर्शी राम, सहिष्णु राम की, सहिष्णु राष्ट्र की भावना अक्षुण्ण रखी। इसी नीलकंठी चेतना ने सँभाल रखा है राम तत्व, सँभाल रखा है भारत, तब राम कहीं और कैसे जा सकते हैं, इतनी लंबी परीक्षा और प्रतीक्षा के बाद राम को आना ही था। हाँ जब जन-जन के चेतना आह्वान किया, वह घनीभूत चेतना ही राम के होने का हेतु है, और राम हमारे होने का प्रयोजन।

जब चेतना का विरह, पंचम स्वर में गाता है तब राम आते हैं,

अब श्री राम आते हैं...

सम्पर्क : 18बी वंदना नगर एक्सटेंशन
इंदौर म. प्र.

डॉ. सदानन्द प्रसाद गुप्त

राजेन्द्र बाबू की साहित्यिक मान्यताएँ

राजेन्द्र बाबू स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रथम पंक्ति के नेताओं में भी अग्रणी भूमिका निभाने वाले व्यक्ति थे। वे एक विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री तथा भारतीय समाज-व्यवस्था के वैशिष्ट्य के गहरे पारखी थे। देश के विभिन्न राजनीतिक-सामाजिक आन्दोलनों में उन्होंने संलग्नता और सक्रियता का अद्भुत एवं अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। भारत के स्वतंत्र होने पर वे देश के प्रथम राष्ट्रपति बने। राष्ट्रपति का उनका कार्यकाल कई अर्थों में अविस्मरणीय रहा। राष्ट्रपति पद की गरिमा और मर्यादा का उन्होंने अविस्मरणीय रूप प्रस्तुत किया। उनके व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य का स्मरण करते हुए डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने उचित ही लिखा है कि भारत की इस वसुन्धरा पर अनेक विभूतियों ने जन्म लिया है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद उनमें से एक थे, जिनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की हमारे देश के गौरव पूर्ण इतिहास पर अमिट छाप है (युग पुरुष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : एक युग स्मरण, पृ.-38, उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ संस्करण-1987)।

राजनीतिक क्षेत्र में अत्यंत सक्रियता के बाद भी साहित्य में उनकी गहरी रुचि थी। भाषा साहित्य संस्कृति का उन्होंने गहन अध्ययन किया था, विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं से वे सक्रियता के साथ जुड़े रहे। उन्हें हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया गया। बहुत सी साहित्यिक संस्थाएँ उनकी प्रेरणा से आरंभ हुईं। उन्होंने भाषा-साहित्य, संस्कृति के संदर्भ में अनेक अवसरों पर महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिये, विभिन्न विश्वविद्यालयों के समावर्तन समारोह में अपने वक्तव्य दिये, जो बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। इनमें उनके भाषा तथा साहित्य के सम्बन्ध में बहुमूल्य विचार प्रकट हुए हैं। 'संस्कृत और संस्कृति', 'साहित्य शिक्षा और संस्कृति', 'भारतीय शिक्षा', 'असमंजस' जैसी पुस्तकों में उनके भाषा साहित्य और संस्कृति सम्बन्धी विचार व्यक्त हुए हैं। भाषा और साहित्य के क्रमबद्ध अध्ययन-अध्यापन का उनका कोई इतिहास नहीं है, उन्होंने अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की और बिहार के मुजफ्फरपुर स्थित लंगट सिंह कॉलेज में उन्होंने अर्थशास्त्र का अध्यापन किया था, बाद में विधि में डॉक्टरेट उपाधि प्राप्त कर अपनी मेधा और प्रतिभा का परिचय दिया। कलकत्ता विश्वविद्यालय में विधिशास्त्र के अध्यापक के रूप में पर्याप्त ख्याति अर्जित की। कालान्तर में वे कलकत्ता और पटना उच्च न्यायालय में एक प्रतिष्ठित अधिवक्ता के रूप में प्रसिद्ध हुए।

पर इन सब परिस्थितियों से गुजरते हुए उन्होंने साहित्य और संस्कृति के अध्ययन-मनन के लिए अवसर निकाला। उन्होंने भारतीय और विदेशी साहित्य का गहरा अध्ययन किया। साहित्य के प्रति उनका यह अनुराग अव्यावसायिक, नैसर्गिक था। उन्होंने अपने ग्रंथों में साहित्य सम्बन्धी जो विचार व्यक्त किये हैं वे आज भी अत्यन्त प्रासंगिक हैं। राजेन्द्र बाबू ने साहित्य के व्यापक तत्वों-साहित्य का उद्देश्य, साहित्य का धर्म, साहित्यकार का दायित्व, साहित्य की आत्मा, साहित्य के प्रेरक तत्व, साहित्य और राजनीति, समालोचक के गुण, हिन्दी का

स्वरूप, अनुवाद की आवश्यकता, संस्कृत भाषा की पूर्णता तथा उसके वाङ्मय का विस्तार और महत्त्व विषय पर अपने महत्त्वपूर्ण और युक्तियुक्त विचार व्यक्त किये हैं। साहित्य के प्रयोजन को लेकर भारतीय काव्य शास्त्रीय परम्परा में बड़ी गहराई से विचार किया गया है, विदेशी साहित्य में भी साहित्य के प्रयोजन को लेकर चर्चा हुई है। राजेन्द्र बाबू ने भी विभिन्न व्याख्यानों में साहित्य के प्रयोजन पर या कहें उद्देश्य पर अपने मंतव्य स्पष्ट किये हैं। भारतीय काव्य शास्त्र में बहुत प्रसिद्ध कथन 'काव्य प्रकाश' के रचयिता मम्मट का है-

'काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। / सद्यः परिनिर्वृन्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।'

इसमें छः प्रयोजनों की ओर संकेत किया गया है- यश की प्राप्ति, अर्थ अर्थात् धन की प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, अमंगल का नाश अर्थात् मंगल का विधान, परमानन्द की प्राप्ति तथा मधुर उपदेश। इनमें मंगल विधान या लोकमंगल की चर्चा आधुनिक हिन्दी के श्रेष्ठ आलोचक रामचन्द्र शुक्ल ने की है। वे लोक मंगल को ही काव्य या साहित्य का मूल प्रयोजन मानते हैं। राजेन्द्र बाबू ने भी 'लोक कल्याण' और 'अक्षय आनन्द' को साहित्य का मुख्य प्रयोजन माना है- 'वर्तमान आर्थिक ढाँचे के कारण साहित्यकार को वह आर्थिक प्रतिलाभ प्राप्त नहीं होता जिसका कि वह समाज के असंख्य व्यक्तियों को अक्षय आनन्द और नवस्फूर्ति, रंगीन सपने और कल्याणकारी आदर्श प्रदान करने के बदले में अधिकारी होता है (साहित्यकार का दायित्व/साहित्य शिक्षा और संस्कृति, पृ.-106/संस्करण-2012)।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि राजेन्द्र बाबू ने परम्परागत प्रयोजन 'अर्थकृते', 'सद्यः परिनिवृत्तये' और 'शिवेतरक्षतये' को परस्पर सम्बद्ध देखा है। राजेन्द्र बाबू की आकांक्षा है कि हमारे यहाँ रचनाकारों को अपनी कृतियों से उतना आर्थिक लाभ प्राप्त हो, जिससे उनका जीवन निर्वाह सुगम हो सके। इसे स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं- जाने में या अनजाने में हमारे यहाँ के बहुसंख्यक शिक्षितों के मन में यह भाव घर किए हुए हैं कि हमारी अपनी भाषाओं में वैसी उच्च कोटि का साहित्य न तो है और न हो सकता है जैसा कि वह अंग्रेजी में है और इस भावना के कारण आज भी उनका लगाव अपनी भाषाओं के साहित्य से कुछ अधिक नहीं है। हमारे साहित्यकारों को जो आर्थिक कठिनाइयाँ हैं और सहनी पड़ रही हैं, उनका एक कारण यही मनोवृत्ति है, क्योंकि इसके कारण हमारे यहाँ उनकी कृतियों का शिक्षित वर्ग में वैसा प्रचार नहीं होता जैसा कि अन्य देशों में वहाँ के साहित्यकारों की कृतियों का होता है (साहित्यकार का दायित्व/साहित्य शिक्षा और संस्कृति, पृ.-105-6)।

भारतीय परम्परा में साहित्य के स्वरूप की चर्चा करते हुए शब्द और अर्थ के समन्वित स्वरूप को आचार्यों और रचनाकारों ने महत्त्व दिया है। महाकवि कालिदास के 'रघुवंश' में वाक् और अर्थ दोनों के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध पर प्रकाश डाला गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'गिरा अरथ जल बीचि सम' के द्वारा शब्द और अर्थ के तादात्म्य को महत्त्व दिया है। राजेन्द्र बाबू साहित्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं- 'साहित्य मानव जाति के उच्च-से-उच्च और सुन्दर- से सुन्दर विचारों और भावों का वह गुच्छ है जिसकी बाहरी सुन्दरता और भीतरी सुगंध- दोनों मन को मोह लेते हैं (साहित्य की राजनीतिक पृष्ठ भूमि/ साहित्य शिक्षा और संस्कृति, पृ.-12)।

राजेन्द्र बाबू ने राष्ट्र और साहित्य के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध की ओर ध्यान दिलाया है। वे यह मानते हैं उन्नत जाति का साहित्य उन्नत होता है- ''कोई जाति तब-तक बड़ी नहीं हो सकती जब-तक कि उसके भाव और विचार उन्नत न हों। जब भाव और विचार उन्नत होंगे तब उनका विकास उस जाति के साहित्य के रूप में

ही हो सकता है। इसलिए जाति या राष्ट्र के उत्थान के साथ-साथ उस जाति या राष्ट्र के साहित्य की भी उन्नति और उत्थान होना स्वाभाविक है। साहित्योन्नति और राष्ट्रीयता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है (वही, पृ.-12)। राजेन्द्र बाबू का यह मानना युक्ति संगत है कि राष्ट्रीयता का भाषा और साहित्य के साथ बहुत ही घनिष्ठ और गहरा सम्बन्ध है (वही, पृ.-11)। इसका अर्थ यह है कि साहित्य में राष्ट्रीयता के तत्व अवश्य होने चाहिए। किसी भी देश का साहित्य उस देश के जीवन से कटकर दीर्घजीवी नहीं हो सकता। इसलिए राजेन्द्र बाबू यह मानते हैं कि राष्ट्र निर्माण के लिए आवाहन साहित्य का उद्देश्य है (भारतीय संस्कृति/वही, पृ.-138)।

राजेन्द्र बाबू राष्ट्रीयता के उदय के लिए अपने देश के साहित्य, धर्म, रीति और इतिहास से रागात्मक सम्बन्ध को अनिवार्य मानते हैं (साहित्य की राजनीतिक पृष्ठ भूमि/वही पृ.-22)। राजेन्द्र बाबू ने इस तथ्य पर बराबर बल दिया कि भाषा और साहित्य स्वराज्य प्राप्ति के प्रबल साधन हैं। उन्होंने ध्यान दिलाया कि ''इतिहास में इस बात के भी उदाहरण मौजूद हैं जब अन्य देशीय राजा के विरुद्ध पददलित जनता ने उठ खड़े होने का प्रयास और स्वराज्य स्थापित करने का प्रयत्न सर्व प्रथम अपनी भूली हुई भाषा और विस्तृत साहित्य का सहारा लेकर किया है (वही, पृ.-19-20)। इसीलिए राजेन्द्र बाबू का मानना है कि देश तथा जाति के साथ प्रेम और ईश्वर के प्रति भक्ति यही हमारे साहित्य के वांछनीय लक्षण होने चाहिए। अर्थात् राजेन्द्र बाबू की दृष्टि में राष्ट्रीयता और आध्यात्मिकता की अभिव्यक्ति साहित्य के लिए अनिवार्य है (वही, पृ.-33)।

राजेन्द्र बाबू अपने समय के समाज का गहराई से निरीक्षण कर रहे थे। वे यह अनुभव कर रहे थे कि किसी भी राष्ट्र के उत्थान के लिए यह आवश्यक है, उसके नागरिक उच्च भावापन्न हों, उनके मस्तिष्क में ऊँचे विचार हों, उनकी आकांक्षाएँ ऊँची हों। इसके लिए वे साहित्य को बहुत बड़ा माध्यम मानते थे। यही कारण है कि उन्होंने साहित्यकारों से साहित्य को सर्वांग सुन्दर बनाने का आग्रह किया (वही, पृ.-33)। इसी क्रम में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि वे अपनी कृतियों को भारत के नव निर्माण और यहाँ की जनता के दु:ख दारिद्र को दूर करने का प्रबल अस्त्र बना दें (साहित्यकार का दायित्व/वही, पृ.-10।)। यह युगीन संदर्भों से साहित्य को संबद्ध करता है। साहित्य में यथार्थ और जनता की पसंद के अनुरूप साहित्य निर्माण के प्रश्न पर राजेन्द्र बाबू का दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट और द्विविधारहित है। वे दो टूक शब्दों में कहते हैं- विद्वानों का काम है कि जनता की रुचि बदलें (अर्थात् रुचि का परिष्कार करें) (हिन्दी का व्यापक स्वरूप, वही, पृ.-81)।

राजेन्द्र बाबू साहित्य को मानव समाज के सर्वविध कल्याण साधन का माध्यम मानते थे। इसलिए शुद्ध कला के रूप में वे साहित्य को स्वीकार नहीं करते। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि सच्चे साहित्य की एक ही माप है चाहे उसमें रस कोई भी हो, पर यदि वह मानव जाति को ऊपर ले जाता हो तो वह सच्चा साहित्य है और यदि उसका प्रभाव इससे उलटा पड़ता हो तो चाहे जैसी भी सुन्दर और ललित भाषा में क्यों न हो, वह ग्राह्य नहीं हो सकता। इससे स्पष्ट है कि सच्चे साहित्य के निर्माण में वही सफल हो सकता है जिसने तपस्या और संयम से अपने को इसके योग्य बनाया हो। पैसे कमाने के लिए अथवा किसी प्रकाशक की आज्ञा से समय पर कॉपी पहुँचाने वाले ऐसा साहित्य नहीं बना सकते। इसके लिए एक दैवी शक्ति चाहिए जो पूर्व संस्कार और इस जन्म की तपस्या और संयम का ही फल हो सकती है (हिन्दी का व्यापक स्वरूप/वही पृ.-81)।

वस्तुतः भारतीय परम्परा में साहित्य में शुद्ध कला विलास को महत्त्व नहीं दिया गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने साहित्य को 'सुरसरि' के समान सबका हित साधन करने वाला माना है। रामचन्द्र शुक्ल भी कला-कला के लिए सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते, उन्होंने 'कविता क्या है' निबंध में साहित्य को हृदय की मुक्ति की साधना कहा है- ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आयी है उसे कविता कहते हैं।'' 'शुक्ल जी ने साहित्य का लक्ष्य स्वार्थ सम्बन्धों के संकुचित मण्डल से ऊपर' उठाना माना है। राजेन्द्र बाबू भी साहित्य के लिए इससे छोटे लक्ष्य की बात नहीं करते। फिर राजेन्द्र बाबू साहित्य की एक कसौटी यह भी मानते हैं कि उसमें अनुभूति और जीवन की गहराई होनी चाहिए। ''चाहे जिस प्रकार के ग्रंथ क्यों न लिखे जाएँ यदि वे अनुभूति और जीवन की गहराई से निकले हैं तो उनकी कीमत है और उनमें ओज और प्रभाव है (वही, पृ.-82)।

इसके साथ ही राजेन्द्र बाबू यह भी मानते हैं कि साहित्य में जातीय (राष्ट्रीय) जीवन की झलक होनी चाहिए (वही, पृ.-82)। राजेन्द्र बाबू की दृष्टि में साहित्य राष्ट्र का प्राण तत्व है और ऐसे साहित्य का निर्माण कर्ता समाज का बहुत सेवक होता है (वही, पृ.-89)। राजेन्द्र बाबू स्पष्ट रूप से यह बात साहित्यकारों के हृदय में अंकित कर देना चाहते हैं कि साहित्य प्रेयसी का गान न होकर प्रसविनी माता की सृजनात्मक शक्ति बने (साहित्कार का दायित्व/वही, पृ.-101)। राजेन्द्र बाबू की दृष्टि में साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह देश की समस्याओं के समाधान के लिए पाठकों को प्रेरित करे, यह कार्य केवल साहित्यकार ही कर सकता है- ''न तो राजनीतिज्ञ और न पत्रकारों के हाथ में यह बात है कि वे जनता के हृदय में ऐसी स्फूर्ति, ऐसा उत्साह और ऐसी लगन पैदा कर दें कि जनता इन समस्याओं को शीघ्रतिशीघ्र सुलझाने में अपनी पूरी शक्ति लगा दे। जनता के हृदय में यह भावना पैदा करने का काम साहित्यकारों का है (साहित्यकार का दायित्व/साहित्य शिक्षा और संस्कृति, पृ.-101)।

राजेन्द्र बाबू का आग्रह है कि हमारा साहित्य अपने देश के लोगों के जीवन और प्रकृति के स्वरूप से प्रेरित होनी चाहिए। वे लिखते हैं- स्वतंत्र भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपनी जनता से गठबंधन और भी दृढ़ कर ले और जन जीवन से किसी प्रकार भी कटा न रहे। इसका आशय यह है कि हमारी साहित्य साधना यहीं के लोगों के जीवन और प्रकृति के स्वरूप से प्रेरित होनी चाहिए। यदि ऐसा हमने किया तो हमारा साहित्य गमले का पुष्प न रहकर जन जीवन के प्राकृतिक वसंत में प्रफुल्लित सर्वव्यापी सौरभमय झाड़ी और वन-बन जायेगा (ब्रज साहित्य/साहित्य शिक्षा और संस्कृति पृ.-115)।

राजेन्द्र बाबू के मन में साहित्य की स्तरीयता को लेकर चिंता थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'घासलेटी साहित्य' विषय पर बहस चलायी भी और पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र पर स्तरहीन साहित्य लिखने का आरोप लगाया था। राजेन्द्र बाबू बनारसीदास चतुर्वेदी की चर्चा में भाग तो नहीं लेते पर वे जोर देकर कहना चाहते हैं कि पाठकों की संख्या में वृद्धि के कारण साहित्य का स्तर प्रभावित नहीं होना चाहिए। राजेन्द्र बाबू साहित्यकारों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे निम्नस्तरीय साहित्य के प्रचार को रोकने की चेष्टा करें। वे हिन्दी के साहित्यकारों और प्रकाशकों से यह अपेक्षा करते हैं वे श्रेष्ठ साहित्य का सृजन करें क्योंकि साहित्य चेतना का परिष्कार करता है (हिन्दी का विकास : नयी दिशा/ साहित्य, शिक्षा और संस्कृति, पृ.-103)।

राजेन्द्र बाबू की दृष्टि में साहित्य का सम्बन्ध मनुष्य के अस्तित्व से है और अस्तित्व को बचाये रखने के लिए हमें अपनी भाषा के साहित्य से प्रेम करना चाहिए (साहित्कार का दायित्व/वही, पृ.-106)

वे भारतीय समाज में व्याप्त हीनता की ग्रंथि को लेकर बराबर चिंता व्यक्त करते थे। उनका मानना था कि देश की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि उसके नागरिक आत्मबोध से सम्पन्न हों। वे इस बात पर दु:ख व्यक्त करते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी यहाँ के शिक्षा शास्त्रियों, शिक्षकों और शिक्षार्थियों के मन से अंग्रेजी भाषा का मोह नहीं छूटा, जो अंग्रेजी काल में उसके प्रति पैदा हो गया था। यह देशी साहित्य और उनके साहित्यकारों की उन्नति में बाधक है (साहित्यकार का दायित्व/ वही पृ.-105)। यहाँ के बुद्धिजीवियों में यह हीनता बोध यहाँ तक पहुँच गया है कि अपने देश के साहित्य को स्तरीय नहीं मानते (वही)। इसके विपरीत राजेन्द्र बाबू हिन्दी साहित्य की प्रगति पर संतोष व्यक्त करते हैं- पिछले पचास वर्षों से जब से मेरा थोड़ा बहुत हिन्दी से सम्बन्ध रहा है, हिन्दी के साहित्य-संसार में बड़ी प्रगति हुई है और जो लोग इन पचास वर्षों में हिन्दी के इतिहास को देखेंगे, उनको इस बात का संतोष होगा कि इन पचास वर्षों में हिन्दी कहीं-से-कहीं निकल गयी है और उसका-भण्डार आज बहुत विषयों में बहुत बातों में प्रचुर हो गया है। (शिक्षा प्रसार और हिन्दी/भारतीय शिक्षा, पृ.-148, संस्करण-201।) राजेन्द्र बाबू की यह आकांक्षा है कि राष्ट्रभाषा का यह साहित्य भी ऐसा सुन्दर और प्रचुर हो कि सभी लोग अपनी इच्छा से इसकी तरफ झुक जाएँ और अध्ययन अपने लिए आवश्यक समझें (वही, पृ.-14।)।

राजेन्द्र बाबू रचना और रचनाकार की बात करते हुए समालोचकों के कर्तव्य की ओर भी संकेत करते हैं। उनका मानना है कि आलोचक पाठकों की रुचि का परिष्कार कर सकते हैं ''साहित्य और साहित्यिक नियमों के साथ पूर्ण परिचय के अतिरिक्त समालोचक में यह गुण भी आवश्यक है कि वह अपने कर्तव्य को पहचाने। न किसी के साथ द्वेष करे और न किसी के साथ पक्षपात। उसका कर्तव्य है कि सच्चे साहित्य के निर्माण में लेखकों का सहायक हो और कर्तव्य का ठीक वैसे ही पालन करे जैसे कोई पहरेदार धन-जन की रक्षा करता है। मानव चरित्र पर साहित्य का सबसे गहरा प्रभाव पड़ता है और सच्चा समालोचक वह पहरेदार है जो इस मानव चरित्र की रक्षा करता है। वह उस मानव चरित्र की रक्षा करता है, जो धन से और मनुष्य जीवन से भी अधिक कीमती होता है, क्योंकि चरित्र न रहा तो जीवन बेकार है'' (हिन्दी का व्यापक स्वरूप/ साहित्य शिक्षा और संस्कृति पृ.-81)। अर्थात् राजेन्द्र बाबू की दृष्टि में वही साहित्य उत्कृष्ट है जो मानव जीवन का उत्थान करता है बल्कि कहना चाहिये चेतना का संस्कार करता है।

राजेन्द्र बाबू ने सोवियत क्रांति को देखा था। उस क्रांति का साहित्य और राजनीति पर व्यापक प्रभाव पड़ा। भारत के राजनीतिज्ञ और साहित्यकार भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस क्रांति के खोखलेपन को अत्यंत सावधानी से देखा था और उसके नकारात्मक प्रभाव का उल्लेख भी किया था। राजेन्द्र बाबू भी साम्यवाद के वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत को समाज और साहित्य दोनों के लिए घातक मानते हैं- 'आजकल कुछ लोग प्रगतिशील साहित्य का दर्जा ऐसे साहित्य को देते हैं जिसमें वर्तमान समाज के अंतर में होने वाले श्रेणी-संघर्षों का वर्णन होता है और तथाकथित शोषित वर्गों को अन्य वर्गों से संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। ...रचनात्मक समय में आपस में श्रेणी संघर्ष को हिंसात्मक रूप दिये बिना नव समाज का सृजन जिसका ध्येय सर्वोदय करना है, होना चाहिये (साहित्यकार का दायित्व/वही, पृ.-108-9)।

राजेन्द्र बाबू हिन्दी भाषा और साहित्य के सम्बन्ध पर व्यापक दृष्टि से विचार कर रहे थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने अनुवाद के महत्त्व की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया। वे प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य को अनुवाद के माध्यम से हिन्दी में लाने की बात करते हैं। इसके लिए हिन्दी भाषियों से आग्रह करते हैं कि वे अन्य भारतीय भाषाओं में प्रवीणता प्राप्त करें। राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से राजेन्द्र बाबू का यह सुझाव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है (हिन्दी का व्यापक स्वरूप/वही, पृ.-102)। राजेन्द्र बाबू ने यह सुझाव दिया कि सभी भारतीय भाषाओं की रचनाओं को देवनागरी लिपि में उपलब्ध कराया जाए जिससे उत्तर भारत के लोग भी अन्य भाषाओं में लिखी जाने वाली रचनाओं का आस्वाद ले सकेंगे (भारतीय संस्कृति/वही, पृ.-191)।

राजेन्द्र बाबू हिन्दी भाषा में साहित्येतर विषयों पर मौलिक लेखन को बढ़ावा देना चाहते थे। उन्होंने 'साहित्य' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में करते हुए इसके भीतर सभी विषयों से सम्बन्ध रखने वाली ग्रंथों और कृतियों को समविष्ट किया। उन्होंने संस्कृत साहित्य का भी गहरा अध्ययन किया था। इस संदर्भ में 'संस्कृत और संस्कृति' पुस्तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने 'संस्कृत वाङ्मय नामक निबंध में संस्कृत के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। वे विद्यालयों में संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन देने की बात करते हैं (संस्कृत वाङ्मय/वही, पृ.-118)। उन्होंने संस्कृत के व्यापक महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा कि संस्कृत वाङ्मय भारत के लिए ही क्यों सारी मनुष्य जाति के लिए अत्यन्त अमूल्य निधि है। मानव जाति के सांस्कृतिक विकास का चित्र तो संस्कृत वाङ्मय के बिना बनाया जा सकता ही नहीं। 'रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य संसार की किसी जाति के भी साहित्य में नहीं है।'' (वही, पृ.-119)।

इस प्रकार स्वतंत्रता संघर्ष और समाज सेवा के कार्य में अपने को पूरी तरह संलग्न करते हुए राजेन्द्र बाबू ने भाषा और साहित्य तथा संस्कृति के विषय पर गंभीरता से विचार किया। यह इसलिए संभव हुआ क्योंकि वे भाषा-साहित्य और संस्कृति को राष्ट्रीय एकता और अस्मिता के लिए अनिवार्य मानते थे। उनके ये विचार आज भी हमें देश हित में संलग्न रहने के लिए प्रेरित करते हैं। निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि राजेन्द्र बाबू ने साहित्य के विभिन्न पक्षों पर विचार किया है। यह बात भी स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि उनके साहित्य सिद्धांत लोक मंगल की ओर झुके हुए हैं। उन्होंने साहित्यकारों से यह आग्रह किया है कि जनता में जातीयता का बीज वपन करें और युगधर्म के प्रति सचेत रहें। वे राष्ट्र के उत्थान में साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्वीकार करते हैं। उन्होंने यद्यपि शास्त्रीय शब्दावली का प्रयोग नहीं किया है, तथापि उनके विचारों में स्पष्टता और दृढ़ता है, उसमें वागाडम्बर का अभाव है। वस्तुत: राजेन्द्र बाबू केवल शब्दजीवी नहीं प्रत्युत् मूल्यजीवी थे। ज्ञान और कर्म के अपूर्व समन्वय के वे अप्रतिम उदाहरण थे। 'य: क्रियवान् स पण्डित:' यह उक्ति उनके जीवन में पूर्णतया चरितार्थ होती है। भारतीय परम्परा में विद्वान की परिभाषा दी गयी है-

सत्यं तपोज्ञानमहिंसता च विद्वत्प्रणामश्च सुशीलता।
एतानि यो धारयते सविद्वान् न केवल य: पठते सविद्वान्।।

केवल पढ़-लिख लेने से ही कोई विद्वान नहीं होता। जो सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा, विद्वानों के प्रति श्रद्धा एवं सुशीलता इन गुणों को धारण करता है, वही सच्चा विद्वान है। राजेन्द्र बाबू भारतीय परम्परा की उपर्युक्त परिभाषा को पूर्णत: अपने जीवन में अंगीकार करने वाले विद्वत्पुरुष थे।

सम्पर्क : सदानंद प्रसाद गुप्त
6, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ
कार्यकारी अध्यक्ष, उ.प्र.हिन्दी संस्थान
मो.9450818341

शकुंतला कालरा

प्रकाश मनु की आत्मकथा में किस्सागोई का हुनर

समकालीन साहित्य के विशिष्ट हस्ताक्षर और बाल साहित्य के शलाका पुरुष डॉ. प्रकाश मनु की साहित्य-साधना किसी भी खेमेबंदी से दूर, अपनी ही बनाई पगडंडी पर चलती हुई निरंतर निष्कंप दीपशिखा की भाँति साहित्य-जगत् को प्रकाशित कर रही है। उन्होंने स्वयं को लेखन में डुबो दिया है। हर नई कृति के साथ उनकी रचनाशीलता आगे बढ़ी है। अभी हाल में उनकी आत्मकथा का पहला खंड 'मैं मनु' छपकर आया है। इसमें सच पूछिए तो मनु जी का अपने आप से किया गया संवाद है। वे आत्मकथा की भूमिका में इसे लिखे जाने की प्रक्रिया और मन:स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, 'यों सच तो यह है कि यह आत्मकथा मैंने लिखी नहीं है। मेरे लिए तो यह अपने आप से बात करने का बहाना ही है। कोई आधी सदी के फासले पार करके मैंने अपने भीतर बैठे किशोर वय के कुक्कू से जो बातें की हैं, वे बातें ही खुद-ब-खुद इन पन्नों में उतर आई हैं।'

प्रकाश मनु जी के मस्तिष्क की मंजूषा से जीवन के कई महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों के साथ जीवन-गाथा की पुस्तक के बंद पृष्ठ खुलते गए, जिन्हें सबसे पहले तो स्वयं मनु जी ने पढ़ा, गुना और अतीत की स्मृतियों में खो गए। फिर उनमें से जीवन के विविध प्रसंग और आख्यान अनायास मुखरित होते गए, जिन्हें उन्होंने वैचारिक ऊर्जा लेकर सुरुचिपूर्ण ढंग से कुल बत्तीस शीर्षकों में, व्यवस्थित रूप से क्रमबद्ध किया है। हर आत्मकथाकार की भाँति मनु जी की स्मृति भी अच्छी है, इसलिए उन्हें सभी पुरानी बातें, अपने मधुर-कटु-तिक्त स्वाद के साथ याद हैं। जीवन में एक के बाद एक कई चीजें घटित हुईं, जिन्होंने उनके संवेदनशील मन को झकझोरा। ऐसे अनुभवों का उनके पास विपुल संसार है। अनुभव चाहे जटिल रहे हों, पर उनके जीवन में सादगी है। सादगी में एक विराट सुंदरता है। लेखक ने अपनी इस आत्मकथा में अपने साथ-साथ, अपने परिवेश और जीवन-यात्रा में मिले कई सहयात्रियों को शब्दों का जामा पहनाकर, मानो फिर से उपस्थित कर दिया है।

यों देखा जाए तो यह आत्मकथा केवल मनु जी की जीवन-कथा नहीं है। इनमें वे सब भी हैं जो मनु जी के लिए प्रणम्य हैं, उनके प्रिय और आत्मीय जन हैं, तथा उनके विस्तृत भाव-संसार में वास करने वाले अपने—बहुत अपने हैं, जिन्होंने उन्हें संवेदनशील बनाया। कुछ वे भी हैं जिन्होंने उन्हें चुभन दी है, किंतु उनके प्रति कोई दुर्भाव उनके मन में नहीं है। वे उनकी हल्की सी चर्चा तो करते हैं, पर शायद मन

ही मन उन्हें माफ भी करते जाते हैं।

प्रस्तुत आत्मकथा से गुजरते हुए यह विश्वास हो जाता है कि आत्मकथा में जिस प्रतिबद्धता, ईमानदारी और सत्य की आवश्यकता है, वह इसमें पूर्णरूपेण विद्यमान है। मनु जी ने सर्वत्र अपनी बात को पूर्ण निर्भयता और सच्चाई के साथ रखा है। उनकी बेबाकी पाठकों को प्रभावित करती है। वे खुद भी यह बात जानते हैं कि आत्मकथा लेखन साहस का काम है। लिहाजा उन्होंने बड़ी हिम्मत के साथ अपनी दुर्बलताओं और असफलताओं का पूरा चिठ्ठा खोलकर रख दिया है, किंतु साथ ही, बड़े सलीके से उन व्यक्तियों को भी उघाड़ा है जो समाज में कई-कई मुखौटे लगाकर घूमते हैं। यों पूरी आत्मकथा में उनकी निगाह जीवन के उजले पक्ष पर ही अधिक रही है, और जिनसे उन्हें बहुत कष्ट पहुँचा, उनके भी कुछ अच्छे गुण नजर आएँ या मन का कोई उजला कोना दिखाई दे जाए, तो वे जरूर उसकी चर्चा करते हैं।

किस्सागोई के हुनर से भरे प्रकाश मनु की कथा-शैली इतनी रोचक है, घटना-क्रम के ब्योरों में इतनी सच्चाई है, और एक कृति के रूप में आत्मकथा में 'आगे क्या हुआ' का कुतूहल-भाव इतना प्रबल है कि पाठक एक बार शुरू करके उसे पढ़ता ही जाता है। यह इसलिए संभव है कि उसमें अकृत्रिमता है जिसने आद्यांत कथा-रस को बनाए रखा है। जीवन के मूल्यवान क्षणों को पकड़े हुए आत्मकथा आगे बढ़ती जाती है। बिना किसी दबाव, बिना किसी बाहरी प्रभाव और बिना किसी उलझन के वह बड़ी आसानी से पाठकों के साथ संवाद करती हुई गति पकड़ती है। बचपन, किशोरावस्था और तरुणाई के सोपान चढ़ती जाती है।

आत्मकथा किसी भी व्यक्ति का सच्चा इतिहास है, क्योंकि उसमें लेखक द्वारा अपने विषय में स्वीकारोक्ति होती है। प्रस्तुत आत्मकथा में लेखक ने अपने आरंभिक जीवन की सुखद-दुखद घटनाओं से परिचय कराया है। जीवन के उस दौर के अपने अनुभव और वृत्तांत को पाठकों के साथ साझा करते हुए, पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं-

''मैं मनु' मेरी आत्मकथा का पहला खंड है जिसमें मेरे बचपन, किशोरावस्था और तरुणाई की जोश-खरोश भरी हलचलों का जिक्र है। मैंने गहन संवेदना के साथ एक ओर अपने शैशव की अबोधता और आत्मलीनता को देखा है, तो दूसरी ओर एक-एक कदम आगे बढ़ाते बचपन को, जिसके साथ अनगिनत किस्से-कहानियाँ और स्मृतियों के न जाने कितने धागे लिपटे हुए हैं। पर इसके साथ ही माँ, पिता, भाई-बहन, उस दौर के मित्रों, अपने प्रिय अध्यापकों और अन्य आत्मीय जनों को मैंने बड़े प्रेम से याद किया है, जिनकी छल-छल करती स्मृतियाँ इस पूरी आत्मकथा में बिखरी हैं। यहाँ तक कि मेरी जीवन-कथा से औचक ही जुड़ गए कुछ अनाम लोगों को भी मैंने भुलाया नहीं है। शायद सभी ने अपने-अपने तईं मुझे जीवन दिया। मैं सभी का ऋणी हूँ, कृतज्ञ भी। ...जाहिर है, इस आत्मकथा में अकेले मैं नहीं, बल्कि जीवन का पूरा प्रवाह है, समय है, परंपराएँ हैं, लोक आख्यान, विगत इतिहास का कौतुक और विचित्र वृत्तांत भी। और उनके बीच अनायास ही बहुत कुछ नया भी निर्मित हो रहा है। यों 'मैं मनु' मेरे साथ-साथ मेरे समय की भी कथा है। हो सकता है, इस आत्मकथा में बहुत बड़ी घटनाएँ न हों, पर बारीक संवेदना और स्मृतियों के धागे पूरी आत्मकथा में बिखरे हैं।'

प्रकाश मनु की यह सादगी और साफगोई पूरी आत्मकथा में नजर आती है। इसलिए पाठकों का

उसके साथ एक गहरा जुड़ाव हो जाता है। इस आत्मकथा की एक बड़ी उपलब्धि यह भी है कि इसमें मनु जी के लेखक होने की कहानी है। उसका बीज, अंकुरण, पल्लवन क्रमशः कैसे होता गया और कैसे वह पुष्पित और फलित होती हुई परवान चढ़ी। कौन-कौन सी स्थितियाँ या घटनाएँ थीं, जो उन्हें चुपके-चुपके लेखक बना रही थीं। इन सबके जवाब इस आत्मकथा में मिलते हैं। इसमें आत्मीयता मिलेगी। अनौपचारिकता मिलेगी। आत्मकथा के इन पृष्ठों में मनु जी को पहचानना अत्यंत सरल है, क्योंकि वे सरल हैं। कठिन को पहचानना कठिन होता है। सरल तो स्वयं ही खुलता जाता है। जीवन में नियति की कई-कई भंगिमाएँ हैं और हर भंगिमा मानो जीवन पर एक अमिट छाप छोड़ती चली गई।

फिर इस आत्मकथा की एक विशेषता यह भी है कि इसमें मात्र अपने व्यक्तिगत सुख-दुख का चित्रण या निजी जीवनानुभवों का ही लेखा-जोखा नहीं है। बल्कि पारिवारिक और सामाजिक परिदृश्य के साथ-साथ जगह-जगह उस समसामायक परिवेश का भी वर्णन है, जो एक कृति के तौर पर इस आत्मकथा को न केवल रोचक और पठनीय बनाने में सहायक है, वरन् उसमें अपने समय और समाज का जीवंत चित्र भी प्रस्तुत करता है।

इस लिहाज से 'मैं मनु' आत्मकथा जरूर है, लेकिन केवल मनु जी के निजी जीवन से संबंध नहीं रखती। इसमें माता-पिता के साथ अन्य अनेक पात्र भी हैं। माँ, पिता, भाई-बहन, उस दौर के मित्रों, अपने प्रिय अध्यापकों और अन्य आत्मीय जनों को उन्होंने बड़े प्रेम से याद किया है, जिनकी भावनात्मक स्मृतियाँ इस पूरी आत्मकथा में बिखरी हैं। यहाँ तक कि अपनी जीवन-कथा से आकस्मिक रूप से जुड़े कुछ अनाम लोगों को भी उन्होंने भुलाया नहीं है। मनु जी बहुत भावुक होकर लिखते हैं, 'शायद सभी ने अपने-अपने तईं मुझे जीवन दिया। मैं सभी का ऋणी हूँ, कृतज्ञ भी।'

स्पष्ट है कि मनु जी की आत्मकथा में ऐसे अनेक स्मृति-चित्र हैं, जिनमें उनके प्रिय पात्रों से जुड़े संस्मरणात्मक चित्रों में स्वयं उनका जीवन भी झाँकता दिखाई देता है। यह लेखक की विनम्रता ही है कि उन्होंने अपने व्यक्तित्व-निर्माण में सबकी भूमिका को कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार किया है तथा परिवार के सदस्यों के साथ ही मित्रों और अध्यापकों के जीवन की कई महत्त्वपूर्ण घटनाओं को भी इस आत्मकथा में बड़े आदर के साथ सँजोया है।

कुछ आत्मकथाकार इतने आत्ममुग्ध होते हैं कि वे अपने निर्माण का सारा श्रेय केवल स्वयं को देते हैं। इस तरह के लेखक आत्मप्रशंसक और उसकी कृति आत्मप्रशंसात्मक प्रलाप बनकर रह जाती है। यह प्रसन्नता की बात है कि मनु जी की आत्मकथा में आत्मश्लाघा कहीं नहीं है। पूरी आत्मकथा में लेखक ने अपने को एक सामान्य व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। विशिष्टता का दंभ कहीं नहीं है। औसत व्यक्ति के रूप में वह अपनी एक प्रतिछवि पाठकों के मन पर छोड़ता है।

मनु जी ने यह आत्मकथा लगभग तीन सौ बीस पृष्ठों के विस्तृत कलेवर में एक लंबे आत्म-संस्मरण के रूप में लिखी है, जिसमें बहुत सारे छोटे-बड़े संस्मरणों का वितान है। हर संस्मरण में लेखक अपने अतीत की कड़ियों को धीरे-धीरे खोलता जाता है। यहाँ उसे निर्मम और तटस्थ बनकर एक दर्शक की तरह खुद को देखकर, परखकर पूरी ईमानदारी के साथ विश्लेषित करना होता है। तभी वह अपने 'स्व' को पाठकों तक पहुँचा पाता है।

मनु जी ने अपने विषय में विचार करते हुए, आत्मविश्लेषण द्वारा यह कार्य सफलतापूर्वक किया है। यह विभाजन की त्रासदी भोगते एक शरणार्थी परिवार की संघर्ष-गाथा है, जिसमें लेखक का जन्म हुआ। इसमें मनु जी ने अपने बचपन और कैशौर्य के साथ-साथ तरुणाई की ओर बढ़ते कुछ वर्षों की ही जीवन-कथा सहेजी है। पर वह अपने समय में इस कदर धँसी है कि इसमें केवल लेखक ही नहीं, बल्कि देश के एक विशेष कालखंड का इतिहास जीवंत हो उठा है।

इस आत्मकथा में वह समकालीन परिवेश है, जिसने लेखक के व्यक्तित्व का निर्माण किया। वे सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ भी हैं, जिन्होंने उन्हें प्रभावित किया, उनके विचारों को आलोड़ित किया। सन् 1962 में हुए चीनी आक्रमण की घटना को लेखक ने 'दोस्त द्वारा पीठ में छुरा घोंपना' कहा है। 'दोस्त के मुखौटे में दुश्मन' कहा है। यह वह तूफान था जिसने हर भारतीय को अंदर से आंदोलित कर दिया था, फिर चाहे वह हिंदू, सिख या ईसाई हो। एक सामूहिक उत्तेजना का सा माहौल था। मनु जी ने तत्कालीन राजनेताओं की गलत नीतियों और अदूरदर्शिता की सच्चाई को भी बड़े साहस के साथ उघाड़ा है। उनका परिवार चूँकि पाकिस्तान से उजड़कर आया था, इसलिए चोट शायद दोहरी थी। वे यहाँ बड़ी तल्खी के साथ कहे गए अपने भाइयों के विचारों को उद्धृत करते हैं, जिन्हें लगता था कि नेहरू जी के बस का कुछ नहीं है, 'एक बार तो इन नेताओं की वजह से हम पाकिस्तान से उजड़कर आए हैं। वहाँ कितनी तकलीफें और कत्लेआम देखना पड़ा। लोग दिन-दहाड़े लुट-पिट गए और अब इस देश का भी नेहरू जी ने अपने काल्पनिक आदर्शों के चलते यह हाल कर दिया है कि चीन जैसा मुल्क भी इसे रौंदता हुआ आगे चला आता है। देश कहीं ऐसे चलता है!...'

इसी तरह तत्कालीन रक्षामंत्री कृष्ण मेनन के प्रति भी लोगों का काफी आक्रोश था। लोग बार-बार कहते थे, मेनन ने ही नेहरू जी और पूरे देश को धोखा दिया और अँधेरे में रखा। सेना की शक्ति और तैयारियों के मामले में हकीकत कुछ थी, बताया कुछ और। वरना क्या आज हमें यह हालत देखनी पड़ती? इसके लिए तो सबसे ज्यादा मेनन जिम्मेदार है।'

लेखक की जीवन-यात्रा में आए वे सब सहयात्री इस आत्मकथा में हैं, जिन्होंने उनकी संवेदना को जगाया है। उन्हें हँसाया और रुलाया है। इसमें महान हस्तियाँ भी हैं और ईंट-गारे से मकान बनाने वाले मजदूर और राजमिस्त्री भी हैं। सबके चरित्र-वर्णन में तटस्थ दृष्टि। मनु जी ने व्यक्तिगत राग-द्वेष से ऊपर उठकर, पूर्वाग्रह-मुक्त होकर संतुलित दृष्टि से उनका चरित्रांकन किया है। साथ ही प्रत्येक पात्र को उसकी पूरी अस्मिता के साथ देखा और प्रस्तुत किया है।

पुस्तक की भूमिका अत्यंत सुंदर है। 'मेरी कहानी : कुछ भूली कुछ भटकी सी' में प्रकाश मनु मानो अपने आप से कहते हैं, क्या मैं अब अपने मन की उन परतों को खोलूँ कि कैसे परिस्थितियाँ और घटनाएँ मुझे चुपके-चुपके लेखक बना रही थीं। मनु जी बताते हैं कि यह शायद उनकी भावुकता ही थी, जो उन्हें दूसरों से कुछ अलग कर देती थी। वे औरों से अधिक संवेदनशील थे। बचपन में माँ के मुख से सुनी कहानियों में विशेष रूप से अधकू की कहानी ने उन्हें बहुत प्रभावित और प्रेरित किया। वे अधकू में अपना अक्स देखते। शरीर से दुर्बल होते हुए भी अधकू अक्लमंदी में किसी से कम नहीं था, और उसी से वह अपने लिए एक सम्मानजनक राह बनाता है।

'अधकू' का चरित्र मनु जी चेतना में चुपके से आ बैठता है और उन्हें चुपके-चुपके लेखक बनाने में सहायता करता है। वही उनके भीतर से पुकारकर कहता है, 'जिस राह पर सब जा रहे हैं, वह राह तुम्हारी नहीं है। तुम्हारी राह अलग है। तुम लेखक हो। तुम्हें लेखक वाली राह पर चलना है।' और इसका नतीजा क्या हुआ, यह जरा मनु जी से सुनिए, 'बस, मैंने वह राह ले ली, जिसने मुझे चीजों को अलग ढंग से देखना सिखाया। जिससे चीजें भीतर-बाहर से प्रकाशित हो उठती थीं। यही सब करते-करते कब मैं लेखक हो गया, मुझे पता ही नहीं चला। दूसरों की जिंदगी की कहानियों की किताबें लिखते-लिखते एक दिन अपनी जिंदगी की किताब भी शुरू कर दी।'

वैसे यह एक आत्म-संवाद है, जो कथानायक कुक्कू ने अपने साथ किया है। भूमिका में मनु जी लिखते हैं, 'यों सच तो यह है कि यह आत्मकथा मैंने लिखी नहीं है। मेरे लिए तो यह अपने आप से बात करने का बहाना ही है। ...मैंने अपने भीतर बैठे किशोर वय कुक्कू से जो बातें की हैं, वे बातें ही खुद-ब-खुद इन पन्नों में उतर आई हैं। ...'

भूमिका के बाद पहले परिच्छेद में कुक्कू ने अपने संघर्षपूर्ण पारिवारिक जीवन, विभाजन की त्रासदी से उत्पन्न अनेक कष्टों के साथ हँसी-खुशी परिस्थितियों का मुकाबला करते बहन-भाइयों की प्यारी दुनिया का परिचय कराया है। इस आत्मकथा में संयुक्त परिवार के जीवन-मूल्य हैं और उसके प्रति आकर्षण और मोह है। परिवार में प्यार की सुगंध है जो परस्पर साहचर्य की चाह से उत्पन्न हुई है। माता-पिता के साथ भाई-बहनों से घिरा उनका जीवन बहुत ही सहज रहा।

आत्मकथा हो और उसमें माँ न हो, यह संभव ही नहीं। माँ का काया रूप ही है संतान। वह उसकी आत्मा है। तभी तो वह आत्मज कहलाती है। मनु जी के व्यक्तित्व की धुरी उनकी ममतालु माँ हैं। सहज और सरल माँ का होना जीवन में ईश्वर का सबसे बड़ा वरदान है। माँ, जिनके जीवन में कोई बनावट नहीं, जो बच्चों सी निहायत मासूम हैं। उनकी आँखों में मनु जी ने जो दुनिया देखी, वह भी खूबसूरत लगने लगी। उनमें दुख-निराशा या किसी किस्म की हीनता का मालिन्य नहीं था। कुक्कू ने बचपन में माँ से गायत्री मंत्र सुनकर याद किया। कई-कई अमिट प्रभाव छोड़ने वाली कहानियाँ सुनीं। कई कहानियों में अद्भुत फैंटेसी होती, जो कुक्कू को बिना पंखों के उड़ाकर किसी और दुनिया में ले जाती।

माँ बच्चों से असीम प्यार करती थीं। बीच-बीच में जीवन की बेहद जरूरी सीख भी देती थी। दुनियादारी भी समझाती थीं, ताकि बच्चे दुनिया की ठोकरों से बच सकें। माँ हमेशा चाहतीं कि बच्चे बड़ी लालसाओं के चलते अपने घर-परिवार से दूर न चले जाएँ। वे कहती, 'पास रहो, एक-दूसरे के सुख-दुख बाँटो और अनावश्यक लालसाएँ छोड़ दो। संतोष-भरा जीवन जियो।' ऐसी ममता की छाँव छोड़कर भला कौन जा सकता है? इसलिए जगन भैया ने बड़े पद पर नियुक्ति हो जाने के बावजूद बाहर नौकरी के लिए जाने का फैसला छोड़ दिया।

माँ की ममता के साथ पिता का वात्सल्य भी संतान का पोषण करता है। 'कुछ सतरें पिता के बारे में' अध्याय में मनु जी ने पिता का पूरा शब्दचित्र प्रस्तुत कर दिया है। ऐसा लगता है, जैसे व्यक्ति कोई रेखाचित्र पढ़ रहा है, 'उनकी पठानों जैसी कद-काठी और छवि आँखों में तैर रही है। वे बिल्कुल पठानों जैसे ही थे। सफेद कुरता, सफेद धोती और सिर पर सफेद रंग का ही पग्गड़। बड़ी-बड़ी और शानदार

मूँछें, जिनमें बाद में चलकर तो सफेदी उतर आई थी। खूब गोरे रंग के, पर चेहरे पर ऐसी लाली कि किसी को भी रश्क हो।'

माँ की तुलना में मनु जी को पिता कभी वैसे 'ममता और वात्सल्य की मूरत' नहीं लगे। पिता ने कभी उन्हें किसी चीज की कमी महसूस नहीं होने दी, 'लेकिन यह भी उतना ही सच है कि उन्होंने कभी बच्चों को अपनी छाती से नहीं चिपकाया। कभी भाव-विभोर होकर मीठे बोल नहीं बोले। ...' उनका प्रेम मूक था। उनकी सख्ती के भीतर एक मृदुलता थी। पिता का स्नेह किसी शांत अंतर्धारा की तरह अव्यक्त ही रहता।

इसी तरह बड़ी बहन और जीजा जी की मीठी यादों के साथ कृष्ण भाईसाहब का मुस्कुराता चेहरा भी मनु जी कभी नहीं भूलते, जिनके बड़प्पन के कारण घर में छोटे-बड़े सब उनकी इज्जत करते थे। परिवार के मीठे अनुभवों के साथ स्कूल के अपने अनुभव साझा करते हुए मनु जी लिखते हैं, 'हम लोग अक्सर काठ की तख्ती और मिट्टी का बुदक्का (मिट्टी की छोटी कुलिया) लेकर जाते थे। ...एक लंबी टाट-पट्टी पर बैठते थे।' कच्ची क्लास के स्नेहिल मास्टर जी की मधुर स्मृतियाँ तो आज भी लेखक की बड़ी पूँजी हैं। ये मास्टर जी हैं—चश्मे वाले मास्टर जी। मनु जी ने छोटे पालीवाल स्कूल में कच्ची से पाँचवीं तक, और फिर छठी से बारहवीं तक बड़े पालीवाल स्कूल, जिसे स्कूल न कहकर इंटरमीडिएट कॉलेज कहा जाता था—में पढ़ाई की।

पूरी आत्मकथा लेखक के चरित्र का आइना है। अपनी दुर्बलताओं को कहीं छिपाया नहीं गया। लेखक ने जैसा जीवन जिया, उसकी सत्यता को विश्वसनीय ढंग से व्यक्त किया है। आठवीं, नवीं कक्षा में आँखों पर चश्मा चढ़ने से पहले की स्थिति पर वे लिखते हैं, 'आत्मविश्वास मेरा क्षीण हो चुका था। लिहाजा नंबर कम आए तो मैंने सोचा, मैं शायद इसी लायक हूँ। मुझमें योग्यता नहीं है।' पढ़ाई ही नहीं, खेलकूद में भी वे कहीं अव्वल नहीं थे, 'खेलकूद में मैं कच्चड़ था। बहुत कच्चड़...! बस समझिए कि किसी तरह कबड्डी ने लाज रख ली। ...कुल मिलाकर मैं शायद कबड्डी का भी एक बुरा खिलाड़ी ही था और मेरे खेल में जितना जोश था, उतनी कला हरगिज नहीं थी, और मैं शायद इसे सीखने के काबिल भी न था। ...'

अन्यत्र भी एक जगह मनु जी ने अपने स्वभाव की दुर्बलता का वर्णन किया है। 'एक पंक्ति में कहना हो, तो मैं एक डरा, झिझका हुआ झेंपू बच्चा था। मोटे तौर से यही अपने बचपन के बारे में कह सकता हूँ। बरसों लगे मुझे अपने झेंपूपन से मुक्त होने में। हालाँकि अब भी कहाँ पूरी तरह से मुक्त हो पाया हूँ?'

इसी तरह अपने पिता की दुर्बलता के विषय में भी उन्होंने खुलकर लिखा है। एक बार पिता के जीवन में न जाने कहाँ से सट्टा खेलने का व्यसन आ गया, तो पूरे घर की हालत डाँवाडोल हो गई। मनु जी लिखते हैं, 'हमारे घर के वे बहुत दुख भरे दिन थे। इसलिए कि पिता ने शिकोहाबाद आकर खासा कमाया था, पर इस कमाई के साथ ही उनमें व्यसन भी आने लगे थे, जो अति समृद्धि से जनमते हैं। वे सट्टा खेलने लगे थे और सट्टे में उस समय के हिसाब से भी हजारों रुपये गँवा चुके थे। घर की हालत डाँवाडोल थी। साथ ही परिवार की इज्जत भी दाँव पर थी। पर पिता को इस सबका होश न था।'

पाकिस्तान से आने के बाद परिवार को किस तरह तंगहाली में जीवन-यापन करना पड़ा, मनु जी ने इस बारे में खुलकर लिखा है। इसी तरह घर की आर्थिक स्थिति का, अभावों का भी उन्होंने नि:संकोच वर्णन किया है।

आत्मकथा के ये तमाम अध्याय संस्मरणात्मक शैली में लिखे गए हैं, जिनमें कहीं केंद्र और कहीं हाशिए में लेखक उपस्थित है। यों तो हर अध्याय की कथा कुछ अलग और स्वतंत्र सी है, पर ये सभी अध्याय किसी कोलाज-कथा की तरह एक हैं। सारे अध्याय एक सूत्र में पिरोए हुए हैं। बोझिलता और बोरियत से परे, मनु जी उन पात्रों के साथ ही उनसे जुड़े अपने अनुभव एवं अनुभूतियों को भी सरलता और सहजता के साथ प्रस्तुत करते हैं, जिसमें सुख-दुख, हँसी-खुशी, संयोग-वियोग सब कुछ है। इस आत्मकथा में जीवन की प्रत्यक्ष और यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है, और आत्मकथाकार सहित सभी पात्रों का चरित्र उद्घाटित हुआ है।

आत्मकथा जिस विस्तृत फलक की माँग करती है, 'मैं मनु' वह विस्तृत फलक लेकर चली है। उसमें लेखक की जीवन-यात्रा है। बचपन से लेकर किशोरावस्था तक की अतीत में की गई अंतर्यात्रा है। यह बचपन और तरुणाई की ओर बढ़ती किशोरावस्था के विभिन्न पड़ावों से होकर गुजरती है, और आखिर तरुणाई के शुरुआती चरण पर जाकर रुकती है। हालाँकि आगे बहुत कुछ जानने की उत्सुकता के साथ-साथ हमारे ऊपर ऐसा अमिट प्रभाव छोड़ जाती है, जिसे हम भूल नहीं पाते।

कहीं-कहीं कन्फेशन है। जीवन का ईमानदारी से विश्लेषण किया गया है। मुझे विश्वास है कि मनु जी की आत्मकथा हिंदी के गद्य साहित्य की इस विधा को समृद्ध करने में पूर्ण सक्षम होगी। यह आत्मकथा सहज, सरल और ईमानदार व्यक्ति की मानवीय संवेदना से ओतप्रोत आपबीती है, जिसमें वह केवल अपने दुख से ही नहीं, दूसरों के दुख से भी द्रवित होकर रोने लगता है। ऐसे कई भावुक क्षण आते हैं, जो उसे रुलाते हैं। संपर्क में आने वाले किसी भी शख्स की वेदना लेखक की अपनी वेदना बनकर उसके हृदय में उतर जाती है और फिर आँसू बनकर छलक उठती है।

बचपन की स्मृतियों से निकली इस आत्मकथा में बचपन में खेलों का तिलिस्म भी मिलेगा। कबड्डी, लँगड़ी, कबड्डी, कंचे, आँख-मिचौली, चोर-सिपाही, आइस-पाइस, गिल्ली-डंडा आदि खेल खेलता कुक्कू पाठक को भी अपने बचपन में ले जाता है। किशोर होते-होते उसने श्याम भैया के साथ बहुत सी फिल्में भी देखीं। श्याम भैया उनके 'हीमैन' थे। गॉडफादर भी। मनु जी कहते हैं, 'आज मैं कुछ न होता, कहीं न होता, अगर बचपन में श्याम भैया ने किसी उस्ताद और गुरु की तरह कसकर भीतर-बाहर से थाप लगाते हुए, मुझे पक्का न किया होता। वे मेरे दोस्त भी थे, गाइड भी, हीरो भी। वे मुझे सर्वशक्तिमान लगते। ...'

बचपन के बाद किशोरावस्था की दस्तक और दोनों की संधि में जो किशोर वय बच्चों को अच्छा लगता है, वह है जासूसी उपन्यास पढ़ना। मनु जी ने इस आयु में कुछ जासूसी उपन्यास भी पढ़े। बचपन में 'चंदामामा' और 'मनमोहन' पत्रिकाएँ पढ़ीं, जिनकी कहानियों का असर बहुत दिनों तक बना रहा। इसी तरह 'नंदन' और 'पराग' पत्रिकाओं को दीवानों की तरह पढ़ना। लगता है, यही 'बीज' था बाल साहित्य लेखन का, जो धीरे-धीरे अंकुरित हो रहा था। ये कहानियाँ उनके भीतर उतर रही थीं। उनकी चेतना पर

अपना अमिट प्रभाव छोड़ती जा रही थीं।

मनु जी की आत्मकथा में स्कूल और कॉलेज की और भी अनेक मधुर स्मृतियाँ हैं। दो सीधे-सादे गँवई सहपाठियों रामपाल और भीकम ने चित्रकला में कच्चड़ मनु जी को चित्रकला के गुर सिखाए और 'अच्छी कला का मर्म' बताया। उनका उपकार वे कभी नहीं भूल पाते, क्योंकि यह मर्म तो स्वयं कला के अध्यापक मुंदा जी भी नहीं बता पाए थे। सबसे अधिक याद आने वालों में अंग्रेजी के अध्यापक राजनाथ सारस्वत हैं, जिनका नाटकीय अंदाज में पढ़ाना और पूरी क्लास पर कभी न मिटने वाला जादुई प्रभाव मनु जी कभी नहीं भूल पाए।

सारस्वत जी ने पहले नवीं में, और फिर दसवीं कक्षा में भी अंग्रेजी पढ़ाई। परिणामत: लेखक की अंग्रेजी में डिस्टिंक्शन आई। इसी तरह इंटरमीडिएट में पढ़ाने वाले अंग्रेजी के आदर्श अध्यापक मिस्टर खुराना, गणित के बड़े ही अनोखे अध्यापक गिरीशचंद्र गहराना और भौतिक विज्ञान के लक्ष्मणस्वरूप शर्मा जी उन्हें खूब याद आते हैं। मोहिनी मुस्कान के स्वामी, हाईस्कूल में गणित के शिक्षक लालाराम शाक्य, विज्ञान के सी.पी. कुलश्रेष्ठ तथा अन्य अध्यापकों को भी उन्होंने अत्यंत श्रद्धा के साथ याद किया है।

इन अध्यापकों के साथ ही मनु जी ने उन अध्यापकों को विशेष रूप से स्मरण किया है, जिन्होंने खुद दीया बनकर उन्हें राह दिखाई। हिंदी के आचार्य किस्म के अध्यापक शांतिस्वरूप दीक्षित, अंग्रेजी के शांतमना ओंकारनाथ अग्रवाल और पालीवाल इंटर कॉलेज के प्रधानाचार्य रामगोपाल पालीवाल जी, जिन्होंने इस कॉलेज के लिए अपना पूरा जीवन होम कर दिया था- सभी का बहुत सम्मान के साथ जिक्र है। रामगोपाल पालीवाल जी को भावुक होकर याद करते हुए मनु जी लिखते हैं-

'वे ऐसे बड़े और समर्पित 'कृतिकार' थे, जो अपनी रक्त और मज्जा से कृति की रचना करता है और अपना सर्वस्व उसे देकर नि:शेष हो जाता है। आज मैं जो कुछ भी हूँ, उसे बनाने में रामगोपाल पालीवाल जी और उनके द्वारा निर्मित कॉलेज का बड़ा मूल्यवान योगदान है। मैं इसे भला कैसे भूल सकता हूँ?'

अपने कॉलेज में हुआ कवि सम्मेलन तो लेखक की स्मृतियों में विशेष रूप से दर्ज है, जिसमें हिंदी के दिग्गज कवियों ने श्रोताओं को बाँध लिया था। ये ख्यातलब्ध कवि थे सोहनलाल द्विवेदी, रामावतार त्यागी, रमानाथ अवस्थी, रामकुमार चतुर्वेदी, सोम ठाकुर आदि।

अपनी आत्मकथा के अंत में मनु जी ने उस घटना का भी जिक्र किया है, जब वे घर से भाग गए थे। उस समय वे बारहवीं कक्षा में थे। मन में कौन सा दुख, मानसिक विषाद या उद्वेलन था, शायद वे स्वयं भी ठीक-ठीक नहीं जानते। बड़े भाईसाहब जगन्नाथ जी से वे कुछ रुष्ट थे। पर घर से भागने के बाद जो कष्ट उन्होंने भोगे, उन सबका चित्रण इस आत्मकथा में है। उन्हें भूखा रहना पड़ा। यहाँ तक कि भीख माँगकर पेट भरा। मीलों पैदल चले। इन दुखों में घर के सुखों का याद आना स्वाभाविक था। माँ की ममता उन्हें वापस घर की ओर लौटा लाई। माँ के हृदय से लगकर वे घंटों रोते रहे।

इसी घटना को केंद्र मे रखकर लेखक ने संजीदगी से भरा बाल उपन्यास लिखा 'गोलू भागा घर से', जिसे पाठकों ने बहुत पसंद किया। क्योंकि इसमें बच्चे के मन में उठने वाली भावनाओं की आँधी है,

जिसे अभिभावक समझ नहीं पाते। और फिर बच्चे का विद्रोही स्वभाव उसे घर से भागकर कहीं और जाने के लिए उकसाता है। मनु जी ने इस उपन्यास में किशोर मनोविज्ञान के जरिए बच्चे के मन में उठने वाले द्वंद्व, उद्वेग और विद्रोह की तस्वीर उकेर दी है। माँ-बाप और बच्चे के बीच में एक पीढ़ी का जो अंतर होता है, उसे समझने का प्रयास दोनों तरफ से होना चाहिए। विशेष रूप से माता-पिता इस बात को समझें तो शायद कोई गोलू इस तरह घर से नहीं भागेगा।

पूरी आत्मकथा में लेखक ने काल-क्रम का सर्वत्र ध्यान रखा है। बचपन की बात बचपन में, किशोरावस्था की बात किशोरावस्था में और तरुणाई की बात तरुणावस्था में। अपने व्यावहारिक जीवन में लेखक जितना संवेदनशील है, आत्मकथा में वही संवेदनशीलता पूरी तरह मुखरित होते हुए घटित होती है। आत्मकथा की भाषा सरल, सुबोध, प्रवाहयुक्त तथा प्रभावोत्पादक है, जिससे पाठक आत्मकथाकार के भावों को भलीभाँति हृदयंगम कर लेता है। परिस्थिति और पात्रानुसार भाषा-शैली में कहीं आवेग, कहीं भावुकता, तो कहीं बौद्धिकता और गांभीर्य भी है।

कहा जा सकता है कि मनु जी की आत्मकथा उनके अंतर्बाह्य व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन का आइना है। यह आत्मकथा व्यक्तिगत जीवन-अनुभवों के साथ-साथ समसामयिक परिवेश, तत्कालीन समाज, रीति-रिवाज, लोक संस्कृति और धार्मिक विश्वास-सभी का दस्तावेज है। लेखक ने बिना अतिरंजित कल्पना का सहारा लिए अपने जीवन-अनुभवों को पूरी सच्चाई और सफाई के साथ पाठकों के सामने रख दिया है। उन्होंने बड़े साहसपूर्वक अपनी सही-सही पड़ताल की है। अपनी कमियों और दुर्बलताओं को खुले दिल से स्वीकार करते हुए, उन्हें रेखांकित किया है। अपने विद्रोही स्वभाव का उन्होंने वर्णन किया है तो उससे जीवन में कदम-कदम पर जिस तरह की ठोकरें खानी पड़ीं, उनका भी उल्लेख है।

कुल मिलाकर एक मध्यवर्गीय भरे-पूरे खुशहाल परिवार का बँटवारे की त्रासदी का शिकार होना, परस्पर प्रेम और आत्मीयता के साथ दुर्दिनों का सामना करना, कठिन से कठिन परिस्थिति से जूझते हुए उन पर विजय पाना और मंजिल की ओर बढ़ते जाना, यही इस आत्मकथा का केंद्रीय भाव है। इन्हीं में कहीं न कहीं मनु जी का भोला बचपन, उनकी भावुकता और एकांतप्रियता, पढ़ने-लिखने की दीवानगी और लेखक होने की कहानी भी पिरोई हुई है।

इसमें संदेह नहीं कि पूरी ईमानदारी और गहन संवेदना से लिखी गई यह आत्मकथा पाठकों के लिए अत्यंत उपयोगी और रुचिकर सिद्ध होगी तथा मनु जी को और निकट से देखने-समझने में सहायक होगी। वैसे भी अच्छी और महत्त्वपूर्ण आत्मकथा का नोटिस लेने में साहित्य जगत् ने कभी कोताही नहीं बरती। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि निहित स्वार्थों और गुटबाजी के चलते-चलते कभी किसी रचना को ज्यादा उछाल दिया गया, किंतु समय ने फिर उसे आइना दिखा दिया।

प्रकाश मनु जी की आत्मकथा 'मैं मनु' अपनी पूरी सच्चाई, पूरी प्रतिबद्धता के साथ पाठकों तक पहुँची है और मुझे विश्वास है, अपनी इसी सच्चाई के कारण वह साहित्य जगत् में अवश्य चर्चित और प्रतिष्ठित होगी।

डॉ. शकुंतला कालरा, (एसोसियेट प्रोफेसर, मैत्रेयी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय),
एन.डी.-57, पीतमपुरा, दिल्ली-110034, मो. 9958455392

डॉ. भरत ठाकोर

गुजराती भक्ति साहित्य में सामाजिक समरसता का प्रकाश
(कवि नरसी मेहता के विशेष संदर्भ में)

मनुष्य स्वभाव से ही समाजशील है। हँसते-हँसते फाँसी पर झूलने की हिम्मत रखने वाले व्यक्ति भी लम्बे एकान्तवास के दंड को सहन नहीं कर सकते, विक्षिप्त हो जाते हैं। अपने स्वयं के सुख-साधन के लिए व्यक्ति की अपेक्षा अनेक व्यक्तियों का एकत्रित प्रयास अधिक फलदायी होता है, साथ-साथ सुरक्षा भी प्रदान करता है। इसी कारण, प्राचीनकाल से मनुष्यों ने अपने-अपने समाज बनाए हैं तथा विभिन्न देशों में सामजिक जीवन की न्यूनाधिक नयी-पुरानी धाराएँ चल पड़ी है। जगत के जीवन- व्यवहार के अनुभव से यह एक मान्यता बन गई है की वही देश एवं समाज सुखी, सुरक्षित तथा प्रतिष्ठित जीवन प्राप्त करता है, जिसमें इस प्रकार परस्पर एकता का दर्शन होता है।

केवल स्वार्थ के 'समान-हित-संबंधों' के आधार पर एकता का निर्माण नहीं हो सकता। समरसता का आविर्भाव प्रेम और समानता के बिना नहीं हो सकता। 'समानशील : व्यसनेषु सख्यम' (समान गुण वालों में मैत्रीभाव होता है) यह उक्ति प्रसिद्ध है ही। फिर समानता लाने के लिए कुछ स्वार्थों का बलिदान भी करना पड़ता है। बिना इस बलिदान के समरसता तथा समानता का आविर्भाव संभव नहीं।

जिस आंतरिक आत्मीयता के भरोसे, अपनी व्यक्तिगत आशा-आकांक्षा तथा स्वार्थ के बलिदान के लिए भी व्यक्ति सिद्ध रहता है, अपने समाज-बांधवों के हित की संवेदना जिस आंतरिक संस्कार के कारण व्यक्तियों के हृदय को झंकृत करती है, उसी को समरसता कहते हैं। समरसता की ऐसी भावना के आधार पर ही विविधताओं से भरा भारतवर्ष और उसका हिन्दू समाज अपने एकरस जीवन का निर्वाह प्राचीन समय से कर रहा है। जब-जब भारत में सामाजिक समरसता की पूर्णता देखी गई तब-तब उसके वैभव, सामर्थ्य तथा प्रतिष्ठा की जगत में पराकाष्ठा होती गयी। जब-जब किसी दोष, दुर्बलता अथवा बाह्य कारणों से समरसता के पूर्ण-बिंब का क्षय हुआ तब-तब भारतवर्ष श्री हीन, विद्याहीन, दुर्बल होकर विदेशी आक्रांताओं द्वारा पद-दलित एवं खंडित हुआ।

भारत की आंतरिक एकता की आधारभूत इस समरसता को जगाने तथा विषमता तथा उसके कारणों को हटाने के भागीरथ प्रयास अनेक महा मनीषियों द्वारा प्रवर्तित हुए। अभी भी कम अधिक मात्रा में चल रहे हैं। अन्य अनेक प्रयासों के कारण ही विदेशी दास्य से भारत ने मुक्ति पायी। स्वतंत्र भारत के

परंवैभव की पूर्व शर्त के नाते सामाजिक समरसता के प्रयास अधिक दृढ़ एवं व्यापक रूप से सर्वत्र यशस्वी होने की आवश्यकता है।

भारत के उत्थान के कारण जिनको अपने स्वार्थ के खेल बंद होने का भय है, ऐसी देशबाह्य एवं आंतरिक शक्तियों ने, सामाजिक समरसता के प्रयास यशस्वी न हों, आपस में दूरियाँ बढ़ें- ऐसे क्रियाकलाप जारी रखे हैं। उस कर्म में भारतीय परंपराओं, मान्यताओं, श्रद्धाओं को विषमता एवं समर्थक समता विरोधी बताना उनके लिए सामान्य बात है। भारतीय समाज के स्थापित एवं उच्चवर्गीय घटक या तो इस विषमता के जनियता (जन्म- आधारित) पक्षधर रहे अथवा इस अन्याय के प्रति पूर्ण उदासीन, ऐसा भी वे प्रचारित करते हैं। सत्य एवं प्रमाणित जानकारी के अभाव में समाज के विभिन्न वर्गों में इस असत्य एवं द्वेषमूलक प्रचार के शिकार होकर, आपस में कलह एवं दूरियाँ उत्पन्न होने की संभावना बढ़ती है।

अध्यात्म की एक प्रबल धारा का नाम है 'भक्ति'। 'भक्ति' तो सभी के अंदर प्रभु का दर्शन समभाव से करती है। भक्तिभाव मन में लेकर, ममता और प्रेम का संदेश घर-घर ले जाने का दायित्व ये संत लोग अपने ऊपर ले लेते हैं। ये संत सभी प्रकार के जातिगत भेद, ढोंग तथा पाखंड पर कठोर प्रहार भी करते हैं। देश के प्रत्येक प्रांत में खड़े होने वाले ये संत सभी भाषा तथा जातियों में स्वाभाविक रूप से प्रकट हुए किन्तु, वह कौन-सी बात ऐसी है जो दक्षिण के आलवारों से लेकर कश्मीर की लल्लेश्वरी तक सभी में मिलती है? यह 'भगवद-भक्ति' ही थी। संतों की भाषाएँ अलग-अलग थी, उनकी पूजा तथा साधना की पद्धतियाँ भी भिन्न रही होंगी, किन्तु सम्पूर्ण देश के संतों, भक्तों तथा उनके अनुयायियों में एक बात सभी जगह उपस्थित थी, वह थी 'भक्ति'। ईश्वर के प्रति यह 'भक्ति' एक और सारे समाज को जोड़ रही थी वही दूसरी ओर मनुष्य जीवन के उदात्त गुणों का आह्वान भी कर रही थी। इसी आध्यात्म प्रेरित भक्ति ने हजारों वर्षों से देश की एकता के सांस्कृतिक अधिष्ठान को सुदृढ़ बनाए रखा है।

इन संतों तथा भक्तों का यह अटूट विश्वास रहा कि- यह 'भक्ति' मानव- मानव के मध्य सभी भेदों को अस्वीकार कर, अभेद की सृष्टि करने के साथ ही, सभी प्रकार की सामाजिक दूरियों को समाप्त करती है तथा सामाजिक समरसता का संदेश भी देती है। यह 'भक्ति' ही है जो सम्पूर्ण देश में इस्लाम के विरुद्ध एक आध्यात्मिक सुरक्षा कवच का निर्माण करती है। हजारों संत-महात्मा भक्ति-भाव जगाते-जगाते इस्लाम के अत्याचारी शासन के विरुद्ध संगठित होकर संघर्ष करने का वातावरण भी बनाते रहे। इस देश की अनन्य पूँजी का नाम है 'भक्ति' जो विश्व परिदृश्य में दुर्लभ है। संत लोग इस 'भक्ति' को ही जगाने का कार्य करते है। भारतीय जनमानस आध्यात्मिकता से सराबोर है, यह परम्परा बहुत प्राचीन एवं विलक्षण हैं।

'गुजरात की भूमि पर गाँधी जी से पहले एक परम् वैष्णव का उच्च नागरी नाते की उपहास के विचार किये बिना युग-युग से छुआछूत के भोग बने हुए हरिजन, समाज के साथ खड़े हुए। नरसी मेहता के जीवन प्रसंग हमारे समाजजीवन की एक पवित्र घटना है'। (गु, सा.इ. ग्रंथ-2, उमाशंकर जोशी)

गुजराती भक्ति कविता में नरसी मेहता की भक्ति रचना में समरस शब्द प्रयोग मिलता है-

'सुरना तेजमा साव समरस थइ,...'।

'वस्तुनो सार साव समरस भर्यो...'।

कवि नरसिह मेहता के स्वामीनु सुख हतु माहरे त्या लगी रचना में 'समरस' शब्द मिलता है।

वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे - नरसी भगत

गुजरात में जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर भक्तिभाव जगाने वाली आध्यात्मिक मालिका में सिद्ध, नाथ, भक्त तथा संत चारों की ही प्रभावी भूमिका रही है। गुजरात क्षेत्र में सैकड़ों सिद्धों के नाम चौदहवीं सदी के पहले के काल में मिलते हैं। इनके अतिरिक्त गुजरात की धर्मप्राण भूमि पर जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर भक्तिभाव जगाने वाले भक्तों और संतों में भक्त नरसी मेहता, संत मूलदास, संत अखा, संत मेकण, गुजराती में रामायण लिखने वाले भक्त गिरधर, स्वामी सहजानंद, स्वामी मुक्तानंद, स्वामी दयानन्द, समरसता की गंगा प्रवाहित करने वाली गंगाबाई और पानबाई आदि ने भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है। गुजरात प्रदेशान्तर्गत वल्लभ सम्प्रदाय एवं रामानंद सम्प्रदाय के शिष्यों ने भी भक्ति का व्यापक प्रसार किया। काशी के स्वामी रामानंद तो जाति, वर्ण, सम्प्रदाय आदि सभी प्रकार के भेदभावों को समाप्त करने के लिए ही अवतरित हुए थे। उनके शिष्यों-प्रशिष्यों में योगानंद, सुरसुरानंद, संत पीपा, संत कबीर एवं अनंतानंद आदि सभी ने गुजरात में इस सम्प्रदाय का सर्वाधिक प्रसार किया। स्वामी रामानंद जी की भक्ति-साधना का भगवच्चरणों में पूर्ण आत्मसमर्पण का विशेष महत्व था। उनके प्रभु दयालु हैं और उनके सम्मुख धनी-निर्धन, बली-निर्बल, ऊँच-नीच तथा जाति-पाँति महत्वहीन थी। वे तो केवल प्रेम के भूखे थे। इस प्रकार गुजरात के रामानंदीय संतों की भक्ति-साधना का मूल लक्ष्य सभी प्रकार की सामाजिक विषमताओं का समूलोच्छेद कर एक ऐसे समाज का निर्माण करना था, जहाँ सभी समान हों। वे एक भेदभाव विहीन समाज निर्माण के लिए दृढ़ संकल्पित थे। इस कारण, उन्होंने प्राचीन चातुर्वण्य के सिद्धांत पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का पुरजोर विरोध किया। उसके लिए प्रेरणास्रोत काशी के रामानंद ही थे। ऐसे अनेक रामानंदीय संत हैं, जो अपनी वाणी से गुजरात क्षेत्र में अपना व्यापक प्रभाव बनाने में सफल हुए, उनमें सर्वश्री पीपा जी महाराज, टीलाचार्य, मंगल चार्य, वैष्णवाचार्य, भक्त बस्तो, भक्त विश्वम्भर, भक्त प्रीतम, भक्त द्वारकादास, भक्त बलरामदास तथा भक्त रामकुमार खाकी का नाम प्रसिद्ध है। भगतकवि नरसी मेहता : (वि.सं. 1470-1536; ई.सन.1413-1479)

गुजरात के जूनागढ़ में नरसी भगत का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम कृष्ण दास तथा माता का नाम दया कुँवर था। नरसी भगत ने कृष्णभक्ति का गुजरात में व्यापक प्रचार किया। गुजराती भाषा में साहित्य रचना करके भक्ति-गीतों द्वारा सामान्य जन को भक्ति के प्रवाह में जोड़ा। भक्त नरसी ने संसार के सभी जीवों को समान समझा तथा सम्पूर्ण जगत को वे ब्रह्ममय मानते हैं। वे कहते हैं की इस विराट जगत में ईश्वर अपने विविध स्वरूपों में व्याप्त है :

अखिल ब्रह्माण्ड माँ एक तु श्री हरी, जूजये रूप अनंत भासे।
देहमा देव तुतेजमा तत्व तु, शून्य माँ शब्द यह वेदवासे।।
(नरसी मेहता आस्वाद ओर स्वाध्याय, पृ.17)

अर्थात 'अखिल ब्रह्माण्ड में तू श्रीहरि ही है, जो लघु से लेकर अनंत तक सर्वत्र दिखलाई देता है। सभी शरीरों में देव रूप से, तेज में तत्व रूप से, शून्य में शब्द रूप से ऐसा वेद कहते हैं। नरसी भगत, जाति-पाति के भेदभाव को नहीं मानते थे और हरिजनों के बीच जाकर कीर्तन किया करते थे। भक्त नरसी मेहता कहते हैं :

गिरी तलेटी ने कुंड दामोदर त्यां मेहता जी नहावा जाय।
ढेढ़ वरण मो दृढ़ हरिभक्ति (ते) प्रेम धरी ने लाग्या पाय।।
पक्शापक्षी त्या नहि परमेश्वर, समदृष्टि ने सर्व समान।
गोमुत्रे तुलसी-थल लिम्प्जो, एवु वैष्णवे आप्यु वाग्दान।
घेर पधार्या हरि जश गाता, वहाता ताणने शंख मृदंग।
नात न जाणो, जात न जाणो, न जाणो काई विवेक विचार!
कर जोड़ीने कहें नरसैंयों : ए वैष्णव तणो मुजने आधार। - (वही, पृ.191)

अर्थात् 'पर्वत की तलहटी में जो दामोदर कुंड है वहाँ नरसी मेहता स्नान करता है और दृढ़ भक्तिभाव वाले हरिजन (शूद्र) के पाँव पड़ता है।' भक्त नरसी मेहता जाति-भेद के बहुत ऊपर है। उनके भजन-कीर्तन में सभी जातियों के लोग आते थे तथा वे सभी भक्तों में प्रभु का दर्शन करते थे। अस्पृश्य कहे जाने वाले लोग भी यदि भक्त नरसी को बुलाते थे तो वे वहाँ जाकर कीर्तन करते थे। एकदिन एक अस्पृश्य कहे जाने वाले परिवार में एकादशी का व्रत था। उसने संकोच के साथ नरसी मेहता को अपने घर पर आमंत्रित किया कि वे उसी के घर पर रात्रि को कीर्तन में रहे। नरसी की पत्नी को तीव्र ज्वर था, किन्तु वे औषधि आदि की व्यवस्था करके उस भक्त के घर पर आनंद के साथ भजन-कीर्तन करते रहे। प्रात: जब वे घर वापस आए तब तक पत्नी चिरनिद्रा में सो गई थी। नगर में यह समाचार फैल गया। अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों के घर जाकर भजन करने के कारण गुजरात के नागर ब्राह्मणों ने इन्हें ब्राह्मण जाती से बहिष्कृत कर दिया।

एवा रे अमो एवा रे एवा, तमे कहो छो तेवा रे;
भक्ति करताँ जो भ्रष्ट कहेशो तो करशु दामोदरनी सेवा रे। - (वही, पृ.44)

इस पद के प्रारंभ में नरसी कि बेफिक्राई, निजानंदी मस्ती और दृढ़ता का परिचय मिलता है। साथ-साथ अड्ग्ता के साथ अगाध भक्ति का परिचय मिलता है। भक्ति करने के लिए नात जात के सभी बंधन तोड़ दिए और अपनी बात पर टीके रहते हैं। वह कहते हैं कि भक्ति कि है उस में मैंने कुछ गलत नहीं किया है, इस तरह भक्ति करने पर लोग अगर भ्रष्ट कहेंगे तो वह कार्य है। भक्ति की अवस्था समता की होती है, ममता की होती है यही सामाजिक समरसता का भाव है। इस भक्ति भाव को जगत को कोई साधन हिला नहीं पाता है। इस पद के अंत भाग में कहते हैं कि-

'हलवा करमनो हूँ नरसैयो, मुझे तो वैष्णव
हरिजन थीं जे अंतर गणशे, तेना फोगट फेरा रे'। (वही, पृ.44)

कवि के जीवन में अनेक समस्या, बाधायें आई हैं। नरसी की इस भक्ति को उमाशंकर जोशी ने अध्यात्म का आविष्कार माना है ओर कर्म जड़ की इस तपस्या के पीछे जीवात्मा और परमात्मा की समरसता का भाव प्रगट होता है।

अमारु वसाणु साधु सहु कोने भावे;
अढारे वरण जेने वहेवरवाने आवे।
(नरसी मेहता आस्वाद अने स्वाध्याय, पृ. 313)

अर्थात् अढारे वरण माटे सुलभ भी है। ज्ञानी जन ने कभी-कभी स्त्रीपुरुष का भेद
उच्च-नीच का भेद किया है पर संत भक्त कवियों ने कभी भी नहीं किया है।
हूँ तु मटशे, दुग्धा ट्ळ्शे, निरभे थाशो नींरखी रे...। (वही, पृ. 321)

अचरज वात ए कोई माने नहीं, जेहने वींती होय तेह जणे;
वस्तुनो सार साव समरस भर्यो नरसैयो अण्छ्तो थइने माणे। (वही, पृ. 223)

सभी प्राणीमात्र के दु:ख को अपना दु:ख समझने वाला करुणा भाव से परिपूर्ण इनका भजन जो पूरे भारत में प्रसिद्ध हो गया :

वैष्णव जन तो तेने कहिये जे, पीर पराई जाणे रे।
परदु:खे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।।
(हमारे साधु संत, भाग-3, पृ.30)

अर्थात् 'प्रभु का भक्त तो वह है, जो दूसरे के दु:ख को दूर करने का कार्य करे, किन्तु मन में किसी भी प्रकार का अहंकार भाव न लावे।' आगे चलकर नरसी मेहता का भक्तिभाव तथा उनकी प्रसिद्धी देखकर सभी ब्राह्मणों ने आकर भक्त नरसी से क्षमा याचना की। नरसी के लिए तो वे (अस्पृश्य) हरि के बालक (हरिजन) ही थे। स्वामी महादेवानन्द लिखते हैं : 'सभी ईश्वर-भक्तों को वे एक बड़े परिवार का सदस्य मानते थे। भक्तों के मध्य किसी भी प्रकार का जातिगत भेदभाव मानना सम्भव ही नहीं। इस कारण, नरसी तो उच्च ब्राह्मणों के घरों में तथा अस्पृश्यों के घरों में बिना किसी भेदभाव के जाते थे, वहाँ गाते थे तथा नृत्य करते थे। महात्मा गाँधी जी ने अपने समाज सुधार के आंदोलन के समय हिन्दू समाज के वंचित तथा अस्पृश्यों के लिए जिस 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया वह नरसी के भजनों से ही लिया था।'

भक्त कवि मेहता ने सम्पूर्ण गुजरात में भगवदभक्ति का साम्राज्य स्थापित किया साथ ही भारतभूमि का पावन स्मरण भूतल में भी किया :

भरतखंड भूतल माँ जन्मी जेणेगोविंदना गुण गया रे।
धन्य-धन्य रे एना मात-पिता ने, सफल करी ऐने काया रे।।
(नरसी मेहता आस्वाद अने स्वाध्याय, पृ.223)

अर्थात् 'इस पृथ्वी पर जिन्होंने भरतखण्ड में जन्म लेकर गोविन्द का गुण-गान किया उनके मात-पिता धन्य है। उन्होंने अपना जीवन सफल कर लिया है।' छियासठ वर्ष की आयु में इस महान ईश्वर भक्त संत कवि का लौकिक शरीर पूर्ण हो गया।

सम्पर्क : डॉ. भरत ठाकोर प्राध्यापक
गुजराती विभाग,
वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय सूरत

यशवंत कोठारी

सुब्रमण्यम भारती और भारतीय चेतना

भारतीयता का सुब्रमण्यम भारती की कविताओं से बड़ा निकट का संबंध रहा है। वास्तव में जब सुब्रमण्यम भारती लिख रहे थे, तब पूरे देश में अंग्रेजों के खिलाफ जन-आन्दोलन की शुरुआत हो रही थी और भारती ने अपनी पैनी लेखनी के द्वारा राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद की अलख जगाई थी। यही कारण था कि सुब्रमण्यम भारती के बारे में महात्मा गाँधी ने लिखा- 'मुझे सुब्रमण्यम भारती की रचनाओं जैसी कृतियाँ ही वास्तविक काव्य प्रतीत होती है, क्योंकि उनमें जन-जन को अग्रसर करने की प्रेरणा है, जीवन की ज्योति जगाने की शक्ति है।'

भारती का जीवन काल मुश्किल से 39 वर्षों का रहा। परन्तु इस अल्प जीवन काल में ही भारती कवि, लेखक, पत्रकार तथा देशभक्त के रूप में सफल हो गये। भारती ने तमिल भाषा में वहाँ के निवासियों के विचारों में एक नवीन चेतना भर दी। उनकी कविताओं ने एक नये युग का प्रवर्तन किया। भारती ने तमिल भाषा के माध्यम से सुदूर दक्षिण में राष्ट्रवाद की अलख जगाई।

सुब्रहमण्यम भारती का जन्म 11 दिसम्बर 1812 को तिरुनेलवेली जिले के एट्टयपुरम गाँव में चिन्नस्वामी अय्यर के घर हुआ। माता का निधन उनके जन्म के पाँच वर्ष बाद ही हो गया। भारती को मैटिक की परीक्षा में प्रवेश नहीं मिल पाया। लेकिन शुरू से ही स्कूल में भारती ने अपनी काव्य प्रतिभा से सहपाठियों तथा अध्यापकों का दिल जीत लिया। 12 वर्ष की अवस्था में ही तरुण भारती को जमीन के दरबारी उत्सव में 'भारती' की उपाधि दी गयी। क्योंकि उनकी विद्वता तथा काव्य प्रतिभा ने सब का मन मोह लिया था।

भारती ने कुछ समय बनारस में भी बिताया। बनारस में रहकर भारती ने संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उन्होंने एन्ट्रेंस परीक्षा पास की। 1901 में भारती पुनः एट्टयपुरम लौट आये। कुछ समय उन्होंने जमींदार के यहाँ काम किया। लेकिन शीघ्र ही वे स्वदेश मित्र नामक दैनिक पत्र के सह-सम्पादक बन गये। अपने कार्य में भारती ने शीघ्र ही प्रवीणता प्राप्त कर ली और विवेकानन्द, अरविन्द घोष, बाल गंगाधर तिलक जैसे विचारकों के वाक्यांश लेकर लेख लिखने लगे। अनुवाद करने लगे। लेकिन भारती की प्रतिभा बहुमुखी थी। कांग्रेस के समर्थन में उन्होंने लेख लिखे। बंगाल विभाजन पर उनकी कविता 'बंगाल तुम्हारी जय हो' ने छपते ही तहलका मचा दिया।

1905 में वे विवेकानन्द की मानसपुत्री सिस्टर निवेदिता से मिले और उनमें आध्यात्मिक परिवर्तन हुए। वे जाति भेद तथा नारी मुक्ति के लिए कार्य करने लग गये।

देशभक्ति के गीतों की उनकी पहली पुस्तक स्वदेश गीत संसार '1908' तथा ज्ञान भूमि '1909' में छपी। 1906 में भारती महिलाओं की पत्रिका 'चक्रवर्तिनी' के सम्पादक बने।

भारती साहित्य, पत्रकारिता और राजनीति के क्षेत्र में जम गये। इसी समय 'इंडिया' नामक पत्र का उन्हें सम्पादक बना दिया गया। दिसम्बर, 1907 में भारती ने राष्ट्रवादी प्रतिनिधियों के साथ कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में भाग लिया। 190। में 'भारत' तथा 'यंग इंडिया' के सम्पादक बने।

भारती की कविताओं में प्रबल राष्ट्रवाद और भारतीयता थी। इस कारण वे ब्रिटिश हुकूमत की आँखों में चुभ रहे थे। गिरफ्तारी से बचने और सम्पादन के काम को सुचारू रूप से चलाने के लिए वे सितम्बर, 1908 में पांडिचेरी चले गये। भारती की पुस्तकों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

आगे के कुछ वर्ष भारती के लिए घोर निराशा और संकट के रहे। लेकिन उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और कविता के द्वारा विचार व्यक्त करते रहे। अपनी अधिकांश श्रेष्ठ रचनाएँ भारती ने इन्हीं दिनों में लिखीं। अब भारती की कविताओं में वेदान्तिकता, मानवतावाद तथा वसुधैव कुटुम्बकम की छवि दिखने लगी।

नवम्बर, 1918 में भारती पांडिचेरी से वापस आ गये। 1919 में उनकी महात्मा गाँधी से भेंट हुई। 1920 में वे पुनः स्वदेश मित्र के सम्पादक बने। 1921 में जून में वे बीमार पड़े और 11 दिसम्बर, 1921 को 39 वर्ष की आयु में व स्वर्ग सिधार गये।

भारती की पुरानी सनातन परम्परा, वेदान्तिक मानववाद तथा भारतीय संस्कृति के विभिन्न परिदृश्य भारती की रचनाओं में बार-बार मुखर हुए हैं। उनके लोकप्रिय राष्ट्र गीतों में भारत माता को एक ऐसी माता के रूप में चित्रित किया गया है जो सबकी जननी है। कवि उसे चिरनिद्रा से जगाता है और पढ़ने वाले को लुभाता है, वह माँ की महिमा के गीत गाता है।

स्वतंत्रता, देशभक्ति तथा विद्रोही स्वर की भारती की कविताओं ने तमिल समाज में तहलका मचा दिया था। उनका कहना था कि वेदों को नया रूप दो, व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का नित्य नवीनीकरण करो।

भारती की रचनाओं को पढ़ने से पता लगता है कि भारती रूढ़िवादी नहीं थे, वे परम्परावादी भी नहीं थे, वे विद्रोह और ओज के कवि थे। अपनी प्रसिद्ध कविता भारत देशम् में वे कहते हैं-

भारत देश नाम भयहारी, जन-जन इसको गायेंगे
सब शत्रुभाव मिट जायेंगे।

स्वतंत्रता के व्यापक सन्दर्भों को रेखांकित करते हुए वे अपनी कविता स्वतंत्रता में कहते हैं-

हे स्वतंत्रता हरिजन लोगों और चर्मकारों को।
हे स्वतंत्रता आदिवासियों, दलित बंजारों को।।

ऐसा विराट सांस्कृतिक स्वतंत्र अनुष्ठान कोई प्रखर राष्ट्रीय चेतना के कवि के द्वारा ही संभव है : भारत माता की महिमा का गान वे इन स्वरों में कहते हैं -

धवल धाम अधिपति हिमालय की
तीरात्मा पुत्री है हमारी माँ
खंडित हो हिमाचल तो भी रहेगी वह
सदा कीर्ति के तन को धारण करेगी वह।

बाद में जाकर भारती का स्वर वेदों और अध्यात्म में डूब गया। वे परम् तत्व की वंदना, प्रेम की महिमा, सर्व धर्म समभाव जैसी कविताएँ लिखने लगे।

भारती प्रखर गद्यकार भी थे। नारी चेतना, समाज में व्याप्त विसंगतियों पर उन्होंने हजारों लेख लिखे। उन्होंने नारी के बारे में लिखा- जहाँ नारी है वहीं कलाएँ हैं। और कला मानवता का दिव्यता की ओर अग्रसर होने का प्रयत्न नहीं तो और क्या है?

भारतीय संस्कृति का बीज शब्द-रस नामक लेख में वे लिखते हैं-

और हे मानव! तुम क्या चाहते हो?
तुम तो इस लीला के केन्द्र, असंख्य जीवों में एक
शाश्वत के मध्य स्थित वर्तमान।

भारती की रचनाओं पर विचार करते समय के राजनीति घटनाक्रम पर भी विचार किया जाना आवश्यक है। वह समय ऐसा था जब पूरा देश आंग्ल समाज का गुलाम था चारों तरफ नवजागरण का उफान आने को था। औरत आदमी भारतीयता को भूल कर विदेशी सत्ता का दास बन गया था।

पूरे समाज में एक कुंठा, निराशा और अन्धकार छा गया था। इसी समय पूरे देश में अलग-अलग कवियों, पत्रकारों, लेखकों ने देश की जनता के जागरण का काम शुरू किया। अरविन्द घोष, बाल गंगाधर तिलक, आदि काम कर रहे थे। महात्मा गाँधी का वर्चस्व कायम नहीं हुआ था। अंग्रेज दमन कर रहे थे। ऐसे समय में राष्ट्रवाद की बात करना, भारतीयता की बात करना, राष्ट्र भक्ति की बात करना या माँ भारती के लिए गीतों की रचना करना बड़ा मुश्किल काम था। भारती ने यही मुश्किल काम दक्षिण में कर दिखाया।

वे नव सामाजिक चेतना के प्रबल पक्षधर थे। सामाजिक, लौकिक जीवन में भारतीयता की प्राण प्रतिष्ठा में उनका योगदान उल्लेखनीय है। वे सच्चे अर्थों में मानवतावादी थे। भारती राष्ट्रीय एवं मानव एकता के अपने समय के सशक्त प्रहरी थे। देश को वे शक्ति का एक प्रतिरूप मानते थे।

प्रेम को वे आद्यशक्ति मानते थे। भारती के चिन्तन का सिद्धान्त उनकी प्रसिद्ध कविता नगाड़े में एक बार फिर मुखर हुआ-

तू बजा धू का स्वर गूँजे/जग में समत्व का भाव जगे,
सुख उमड़े, जग में समस्त/तू बजा एकता गूँज उठे,
कल्याण विश्व का हो अनन्त।

पूरे विश्व के कल्याण की भावना के साथ-साथ प्रखर भारतीय चेतना के कवि थे सुब्रहमण्य भारती।

सम्पर्क : यशवंत कोठारी, 86 लक्ष्मी नगर, ब्रह्मपुरी बाहर, जयपुर-302002
मो. 9414461201

मोहन कुमार

नवगीत की प्रथम कवयित्री : शान्ति सुमन

गीत के प्राचीनतम साक्ष्य वेदों में प्राप्त होते हैं। वेद से लेकर कालिदास, जयदेव, सरहपा, अमीर खुसरो, विद्यापति और फिर मध्यकालीन संत और भक्त कवियों की रचनाओं के रूप में हिंदी गीत का विकास हुआ। रीतिकाल में गीत का विकास कुछ अवरुद्ध अवश्य हुआ परन्तु आधुनिक काल में गीत का पुनः अत्यधिक विकास और विस्तार हुआ। छायावाद और उसके बाद के दौर में गीतों की लोकप्रियता अपने शिखर पर थी। स्वतंत्रता के बाद हिंदी गीत का विकास नवगीत और जनवादी गीतों के रूप में हुआ। बदलते समय-संदर्भों, आधुनिकता के तीव्र प्रसार, सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों, लोकतांत्रिक व्यवस्था की बिडम्बनाओं के कारण मोहभंग तथा लोक-जीवन, प्रकृति, और ग्रामीण जीवन के प्रति लगाव के भाव ने हिन्दी नवगीतकारों को आवश्यक रचनात्मक ऊर्जा और प्रेरणा प्रदान की। नवगीत आन्दोलन के बाद हिंदी गीत विधा में देश की विशाल श्रमशील आबादी, मेहनतकश किसान-मजदूर वर्ग के जीवन यथार्थ, भूख, शोषण, गरीबी, अत्याचार आदि को विषय बनाकर और विशिष्ट सामाजिक-राजनीतिक समझदारी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर जनवादी गीत लिखे गए। जनवादी गीत आम जनमानस के जीवन-यथार्थ से संबंधित होने के कारण जनता की जुबान पर चढ़ गये। पारंपरिक गीतों से नवगीत और जनवादी गीत होते हुए समकालीन गीतों तक की विकास यात्रा में नवगीत आंदोलन गीत के विकास में एक महत्त्वपूर्ण और बेहद प्रभावशाली मोड़ रहा है। नवगीतकारों ने नए विषय, बिंब और प्रस्तुतीकरण की विशेषताओं से लैस नवगीतों के माध्यम से हिंदी नवगीत विधा को पारंपरिक गीतों से अलग एक विशिष्ट श्रेणी के गीतों के रूप में स्थापित किया और हिंदी गीतों के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया।

शंभुनाथ सिंह, श्रीपाल सिंह 'क्षेम', ठाकुर प्रसाद सिंह, नईम, माहेश्वर तिवारी, देवेंद्र कुमार बंगाली, उमाशंकर तिवारी, गुलाब सिंह, जैसे गीतकारों ने हिंदी नवगीत विधा के विकास और विस्तार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। हिंदी नवगीत विधा को समृद्ध करने वाले गीतकारों में कवयित्री शांति सुमन का उल्लेख किए बगैर हिंदी नवगीत से जुड़ा कोई भी प्रसंग सार्थक और पूर्ण नहीं हो सकता है। डॉ. शांति सुमन हिंदी नवगीत की प्रथम कवयित्री हैं। जिस नवीन विषयवस्तु, भावबोध, नजाकत और नवीनता को लेकर नवगीत का उभार हुआ था, शान्ति सुमन ने अपने परिमार्जित और सुपठित नवगीतों के माध्यम से उसको और अधिक समृद्ध किया। शांति सुमन जब नवगीत क्षेत्र में आईं उस समय तक हिंदी नवगीत के क्षेत्र में

पुरुष गीतकारों का बोलबाला था। शांति सुमन हिंदी नवगीत के क्षेत्र में कदम रखने वाली पहली स्त्री गीतकार थीं। उस वक्त तक स्त्री कवयित्रियों का रुझान कविता के क्षेत्र में ही अधिक था। लेकिन शांति सुमन ने कविता के स्थिर और मजबूत संसार को छोड़कर नवगीतों की अपेक्षाकृत नयी दुनिया में अपनी जगह बनाने की सफल रचनात्मक कोशिश की। गीत रचना और उसकी स्थापना में शांति सुमन का अटूट विश्वास था। इसलिए जब उनके पहले नवगीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' (1910 ई.) का प्रकाशन हुआ तो उसकी लोकप्रियता और स्वीकार्यता ने अपना एक मुकाम निर्मित किया। इस संग्रह की भूमिका में शांति सुमन लिखती हैं-'मैंने मुख्यत: गीत-रचना की है-नवगीत की रचना। आधुनिक गीतों के साथ नवता का प्रयोग ऐतिहासिक परिपेक्ष्य की अपेक्षा तंत्र की भंगिमा से संबद्ध है। नयी कविता के समानांतर ही मुझे नवगीत की स्थापना में आस्था है तथा नयी कविता की भाँति गीतों में भी नूतन दृष्टि एवं भाव-बोध को अपनाए जाने के पक्ष में हूँ।' शांति सुमन के समकालीन और वरिष्ठ गीतकारों तथा आलोचकों ने नवगीत के क्षेत्र में शांति सुमन के अवदान को रेखांकित करते हुए महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किए हैं। वरिष्ठ कवि सत्यनारायण ने नवगीत के क्षेत्र में शांति सुमन के पदार्पण को एक घटना की संज्ञा देते हुए लिखा है कि- 'गीत के फलक पर शांति सुमन का आविर्भाव एक घटना है। जी हाँ, एक घटना। ऐसा कह कर मैं उन्हें महिमामंडित नहीं कर रहा। मेरे पास इसके ठोस और वाजिब आधार हैं। मुजफ्फरपुर की एक युवा कवयित्री ने अपने नवगीत संग्रह के साथ अपना होना प्रमाणित किया। कवयित्री थीं, शांति सुमन और संग्रह था-'ओ प्रतीक्षित'। 'हिंदी नवगीत के इतिहास में शांति सुमन के अवदान को रेखांकित करते हुए डॉ. सुरेश गौतम लिखते हैं-'शांति सुमन का नाम लिए बिना नवगीत का इतिहास अधूरा और अपंग होगा। तमाम वैचारिक मतभेदों एवं प्रस्थान बिंदुओं के बाद भी आलोचक ऐसा महसूस करता है कि नरगिस की पृष्ठभूमि एवं उसके विकास में शांति सुमन का महत्त्वपूर्ण योगदान है।' वरिष्ठ नवगीतकार उमाकांत मालवीय ने तो शांति सुमन को 'नवगीत की एकमात्र कवयित्री' के विशेषण से संबोधित किया है।

उत्तर बिहार के सहरसा (अब सुपौल) जिले के कासिमपुर गाँव में 15 सितम्बर 1944 ई. को जन्मी शान्ति सुमन का मूल नाम 'शान्तिलता' है। 'शान्ति' नाम उनकी बुआ ने दिया और 'सुमन' परिवार का दिया हुआ नाम है। शान्तिलता के नाम से ही इन्होंने अपनी शिक्षा-दीक्षा पूर्ण की और लंबे समय तक सरकारी नौकरी भी की। 'शान्ति सुमन' नाम इन्होंने काव्य रचना के क्षेत्र में अपनाया। शान्ति सुमन के माता-पिता का नाम श्रीमती जीवनलता देवी और श्री भवनंदन लाल दास था। शान्ति सुमन का बचपन जिस परिवेश में बीता, वह साधारण किसानों और खेतिहर मजदूरों का परिवेश था। इनका गाँव खेत-खलिहान, आम-जामुन, अमरूद, कटहल और शिरीष की हरियाली से घिरा एक नितांत पिछड़ा हुआ गाँव था। शिक्षा की वहाँ कोई व्यवस्था नहीं थी। पिता के वैयक्तिक शिक्षा-प्रेम से इनका पढ़ना-लिखना शुरू हुआ। शान्ति सुमन पेशे से हिंदी की प्राध्यापिका (प्रोफेसर) रही हैं। शान्ति सुमन का व्यक्तित्व एक मेधावी विद्यार्थी-शोधार्थी और आदर्श शिक्षक की विशेषताओं से पूर्ण है। बेहद कठिन परिस्थितियों और मुश्किल हालातों और संकटों के बीच से गुजरते हुए उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की और उसके बाद आजीविका के रूप में अध्यापन की जिम्मेदारी भरे और महत्त्वपूर्ण कार्य को अपनाकर उसे सफलतापूर्वक पूर्ण किया। लंबे अध्ययन-अध्यापन से उत्पन्न साहित्य की व्यापक और विस्तृत समझ तथा पुत्र, पुत्री, बहू, पौत्र, पौत्री और नाती-नातिन से भरा-पूरा

खुशहाल परिवार शांति सुमन की रचनात्मकता को समृद्ध करने वाला प्रेरक तत्व है। उनके नवगीतों में भी घर-परिवार और रिश्तों की गर्माहट और खुशी की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है-

'नहीं जान पाओगी अपने/होने के तुम माने/ कितने-कितने सपनों में तुम/रची रहीं सिरहाने/ केवल दीवारें थीं घर में/अब संसार हुआ।/ आँखें ही दीखीं थीं केवल/और नहीं कुछ भी/ कोमलता का वह अभिलेख/कहाँ था कैसा भी/ तुम्हारे आने से यह घर/पूरा परिवार हुआ।'

बिहार जैसे अल्पविकसित राज्य के बाढ़ और अशिक्षा जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहे कोसी अंचल के एक छोटे से गाँव से निकलकर हिन्दी नवगीत के क्षेत्र में सूर्य की भाँति चमकने वाली शांति सुमन का जीवन और रचनाकर्म सर्जनात्मकता, संघर्ष, जिजीविषा, शोषण के विरुद्ध तीव्र प्रतिरोध, न्याय और समानता के लिए अथक परिश्रम का श्रेष्ठ प्रतिमान है। हिंदी नवगीत विधा में शांति सुमन का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उन्होंने गीत से आरंभ कर नवगीत और जनवादी गीत रचना तक की सफल और सार्थक काव्य-यात्रा तय की है। दयाबाई, सहजोबाई, अंडाल, मीराबाई, महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान की काव्य परंपरा की विकसित और अगली कड़ी के रूप में शांति सुमन के नवगीतों की महत्ता को स्पष्ट रूप से देखा और परखा जा सकता है। शांति सुमन के गीतों की दुनिया बहुत व्यापक और समृद्ध है। वे गीत को अपने से अलग नहीं मानतीं। उनका व्यक्तित्व ही गीतमय है। 'नव' और 'जन' के विशेषण से परे उनके लिए गीत का होना ही सबसे अधिक जरूरी और महत्त्वपूर्ण है क्योंकि गीत मनुष्य के शाश्वत भाव हैं जो सदैव किसी न किसी रूप में मनुष्य के मन में मौजूद रहते हैं। लगातार कमजोर होते मानवीय संबंधों को, समाज के संघर्षशील लोगों, मजदूरों, कामगारों, स्त्रियों, भूख से बिलखते बच्चों, विवश माँ और श्रमजीवी वर्ग के जीवन में व्याप्त अंधकार और उनके संघर्ष एवं प्रतिरोध को शांति सुमन ने अपने गीतों में मुखर रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

नवगीत की पहली कवयित्री-गीतकृति के रूप में प्रतिष्ठित और चर्चित शांति सुमन को हिंदी नवगीतों की रचना में जैसी कुशलता, सफलता और प्रसिद्धि प्राप्त हुई है, वह अद्भुत है। शांति सुमन हिंदी गीत काव्य की अनन्य साधिका हैं। उनके गीतों के विषय वैविध्यपूर्ण हैं तथा उनकी भाषा सरल, सहज, लययुक्त और आडंबर से मुक्त हैं। शांति सुमन बहुमुखी प्रतिभा संपन्न प्रातिभ रचनाकार हैं। उनके गीतों की दुनिया बहुत विस्तृत और व्यापक है। उनमें जीवनानुभूति, मध्यवर्ग की हिस्सेदारी की चिंता, किसान-मजदूर जीवन के विभिन्न जीवंत चित्र, समय, समाज और जीवन से एकरूपता, सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ का वर्णन, जड़ होते व्यापक मानवीय परिवेश में सार्थक हस्तक्षेप, लोकजीवन के संस्कार, गृहस्थिक प्रेम और सौंदर्य का वर्णन, व्यवस्था की विसंगतियों का वर्णन और मनुष्य के हक और हित में सतत् परिवर्तन की आवश्यकता पूरी रचनात्मक प्रतिबद्धता और वैज्ञानिक रचना-दृष्टि के साथ उपस्थित है। शांति सुमन के गीतों में मिथिलांचल के गाँवों की मिट्टी की सुगंध और उसकी पहचान मौजूद है। मिथिलांचल के ग्रामीण जीवन और वहाँ के लोगों के श्रम, दु:ख-दर्द, जीवन-शैली और लोक संघर्ष की स्पष्ट झलक शांति सुमन के गीतों में मिलती है। शांति सुमन के गीतों में इन विशेषताओं की शिनाख्त करते हुए गीतकार और समालोचक वशिष्ठ अनूप अपनी पुस्तक 'गीत का आकाश' में लिखते हैं- 'जिस प्रकार महाश्वेता देवी के कथा साहित्य का केंद्रीय विषय आदिवासी समाज है, उसी प्रकार शांति सुमन के गीतों

के केंद्र में बिहार के किसान और मजदूर और विशेषकर खेतिहर मजदूर हैं। ये वे मजदूर हैं जो दिन-रात अपना खून-पसीना बहाकर धरती को उर्वर बनाते और अन्न उगाते हैं, किंतु स्वयं अन्न के एक-एक दाने के लिए तरसते-तड़पते हैं, जिनके लिए रोटी, कपड़ा और झोपड़ी के सपने भी सपने ही रह जाते हैं।'

आम जनमानस की पीड़ा, व्यथा, दु:ख और संवेदना की व्यापक अभिव्यक्ति शांति सुमन के गीतों में हुई है। नये बिम्ब और प्रतीक, नवीन भाव और कल्पना की कोमलता के साथ-साथ जन-समस्याओं और जनपक्षधरता, पर गंभीर चिंतन शांति सुमन के गीतों में दिखाई पड़ता है। एक ऐसे समय में जब मानवीय रिश्तों और मनुष्यता पर तमाम तरह के आधुनिक संकट उत्पन्न हो गए हैं, शांति सुमन ने मनुष्यता के श्रेष्ठ और सुंदर भाव, मानवीय संबंधों तथा पारिवारिक रिश्तों को बचाने और बनाये रखने की कोशिश अपने गीतों के माध्यम से लगातार की है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ. शिवकुमार मिश्र उनके गीतों की व्यापकता और समृद्ध दुनिया के विषय में लिखते हैं कि-'उनके ये गीत हमारे समय का आईना भी हैं, और उसमें एक सार्थक हस्तक्षेप भी। इन गीतों से होकर गुजरना जनधर्मी अनुभव-संवेदनों की एक बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है, साधारण में असाधारणता के, हाशिए की जिंदगी जीते हुए छोटे लोगों के जीवन-संदर्भों में महाकाव्यों के वृत्तांत पढ़ना है। स्वानुभूति, सर्जनात्मक कल्पना तथा गहरी मानवीय चिंता के एकात्म से उपजे ये गीत अपने कथ्य में जितने पारदर्शी हैं, उसके निहितार्थों में उतने ही सारगर्भित भी। मुक्तिबोध ने कविता को जन-चरित्री के रूप में परिभाषित किया है। शांति सुमन के ये गीत मुक्तिबोध की इस उक्ति का रचनात्मक भाष्य हैं।'

हिंदी नवगीत के क्षेत्र में जिस समय शांति सुमन का आगमन हुआ, वह कविता वादियों के द्वारा गीतों पर कितने जा रहे चौतरफा आघातों का दौर था। छठें और सातवें दशक के उस दौर में गीत लिखना बहुत ही जोखिम भरा कार्य था। उस समय तक हिंदी नवगीत के क्षेत्र में ठाकुर प्रसाद सिंह का 'वंशी और मादल', राजेंद्र प्रसाद सिंह का 'रात आँख मूँदकर जगी', चंद्रदेव सिंह का 'पाँच जोड़ बाँसुरी', शंभुनाथ सिंह का 'समय की शिला पर', रमेश रंजक का 'गीत विहग उतरा', उमाकांत मालवीय का 'मेंहदी और महावर' जैसे चुनिंदा नवगीत संग्रह-संकलन ही प्रकाशित हुए थे। हिंदी गीतकाव्य की अनन्य साधिका शान्ति सुमन की अब तक प्रकाशित नवगीत संग्रहों में 'ओ प्रतीक्षित' (1970 ई.), 'परछाईं टूटती' (1978 ई.), 'तप रहे कचनार' (1997 ई.), 'भीतर-भीतर आग' (2002 ई.), 'पंख-पंख आसमान' (2004 ई.), 'धूप रंगे दिन' (2007 ई.), 'नागकेसर हवा' (2011 ई.), 'लय हरापन की' (2015 ई.), 'लाल टहनी पर अड़हुल' (2016 ई.) आदि प्रमुख हैं। शान्ति सुमन का पहला नवगीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' वर्ष 1910 ई. में लहर प्रकाशन, 2 मिन्टो रोड, इलाहाबाद (अब प्रयागराज) से प्रकाशित हुआ। उस समय तक आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री और राजेंद्र प्रसाद सिंह के अतिरिक्त मुजफ्फरपुर ही नहीं बिहार में भी किसी अन्य नवगीतकार का नवगीत संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ था। नवगीत विधा में भी 'ओ प्रतीक्षित' के पहले तक चुनिंदा नवगीत संग्रह ही प्रकाशित हुए थे। इसलिए नवगीत के फलक पर शान्ति सुमन के आगमन को एक घटना के रूप में देखा गया। 'ओ प्रतीक्षित' में निन्यानवे गीत संकलित हैं। इस संग्रह में भाषा की एक नयी व्यवस्था, नयी तकनीक के परिचायक के रूप में नवगीत को परिभाषित किया गया है। तत्कालीन असंतोष, क्षोभ, घुटन, ऊब और कुण्ठा के परिवेश में नवगीत एक विवशता के रूप में फूट पड़ा था। अपने इन गीतों के विषय में शान्ति सुमन

लिखती हैं कि- 'मेरे ये गीत भाव-भीगे क्षणों के, हल्के-फुल्के और भारी-भरकम क्षणों के गीत किसी सुग्गे के लिए सेमल के फूल नहीं हैं। इनमें मध्यवर्गीय भाव-चेतनाओं का उतार-चढ़ाव आपको यत्र-तत्र मिलेगा और धरती की बातों से धरती की गंध मिलते ही आप यह महसूस करेंगे कि इन गीतों में कुछ ऐसा है जो आपको बार-बार छू जाता है। इस छुअन के पीछे इन नवगीतों में न केवल मध्यवर्गीय ऊब, कुण्ठा, घुटन, पीड़ा, विवशता एवं शैथिल्य है अपितु हृदय का असामंजस्य, व्यवहार एवं आदर्श का वैषम्य एवं टुकड़े-टुकड़े होकर बँटे व्यक्ति के बाहरी दबाव भी हैं।' प्रेम-सौंदर्य, जीवन, समय तथा समाज के यथार्थ का व्यापक चित्रण 'ओ प्रतीक्षित' के नवगीतों में हुआ है। मानव मन की गहराई की परतें खोलतीं इन दिनों में आधुनिक मानव जीवन का यथार्थ और उसकी विद्रूपता स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है :

'वह भी होना था/यह भी होना है!/ शीशे के आर-पार हम/ कांच के कचनार से तुम/खाली-खाली मन का/ वह भी कोना था/यह भी कोना है!/ बासी-बासी तन का/सब कुछ ढोना था/ सब कुछ ढोना है/ सूना-सूना छन का/ क्या सब खोना था/क्या सब खोना है!'

'ओ प्रतीक्षित' जब प्रकाशित हुआ था, उस समय इलियट से प्रभावित कवितावादियों के द्वारा गीत को अस्वीकार करने का प्रयास किया जा रहा था। नवगीत तब अपने विकसनशील अवस्था में था। ऐसे समय में शांति सुमन के नवगीतों ने पाठकों के बीच अपनी एक खास पहचान बनाई। अपने पहले ही गीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' के गीतों की अपार लोकप्रियता के बाद शान्ति सुमन हिन्दी गीत विधा के क्षेत्र में नवगीत की एक महत्त्वपूर्ण गीतकार के रूप में स्थापित हो गईं। 'परछाईं टूटती' शान्ति सुमन का दूसरा नवगीत-संग्रह है, जो बीज प्रकाशन, पटना से 1978 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह के नवगीत और अधिक सुपरिणत, मँजे हुए तथा श्रेष्ठ हैं। भारतीय मध्यवर्गीय समाज के जीवन-यथार्थ, उनकी तकलीफों, दु:ख-दर्द और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करते इस संग्रह के गीत नवगीत के भविष्य की संभावनाओं के तत्वों और संकेतों को प्रकट करने वाले साबित हुए। मध्यवर्गीय जीवन के आत्मीय प्रसंगों, अनुभूति की गहराई, सौंदर्यबोध और गाँव-घर के साधारण जन के जीवन से जुड़े बिम्बों के कारण 'परछाईं टूटती' के नवगीत अत्यधिक लोकप्रिय हुए :

'जब कभी कोई बच्ची /वर्षा में नहाती है /घर की याद आती है।'

शान्ति सुमन के बहुत से नवगीत अद्वितीय प्रेम गीत भी हैं। 'परछाईं टूटती' में संकलित एक ऐसा ही प्रेम गीत अत्यधिक प्रसिद्ध है :

'केसर रंग-रंगा मन मेरा/सुआपंखिया शाम है/ बड़े प्यार से सात रंग में/लिखा तुम्हारा नाम है।'

शान्ति सुमन के नवगीतों की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि वे लगातार अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करती हैं। इन गीतों में सामाजिक-जीवन, पारिवारिक संबंधों, प्रेम और आत्मीयता के साथ जीवन-यथार्थ और श्रम-सौंदर्य का भाव मिश्रित है :

'माँ की परछाईं-सी लगती/गोरी दुबली शाम/ पिता-सरीखे दिन के माथे/चूने लगता घाम।'

शान्ति सुमन के ये नवगीत केवल गीत विधा में नयेपन को लाने के लिए नहीं लिखे गए बल्कि सामाजिक जीवन के संवेदनशील पलों और स्वतंत्रता के बाद के भारतीय मध्यवर्गीय समाज के मोहभंग की मन:स्थिति के विभिन्न पहलुओं को गीत विधा में दर्ज करने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी इन गीतों के

माध्यम से हुआ है :

'तुम न बोलोगे तुम्हारी बात बोलेगी/ उम्र भर ठहरी हुई बरसात बोलेगी।/अँगुलियों में दर्द का कुछ/ मौन मधु बजता/देश सुरभित रोशनी का/ ताल-सा लगता/बैजनी-कत्थई उदासी साथ बोलेगी।'

शान्ति सुमन के इन नवगीतों के माध्यम से तत्कालीन समय के नवगीतों की रचना-संगति, उपलब्धि, सार्थकता और प्रासंगिकता की पहचान की जा सकती है। 'तप रहे कचनार' 1991 श्री प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित शान्ति सुमन का साझा नवगीत संकलन है। इसमें शान्ति सुमन, निर्मल मिलिंद और मधुसूदन साहा के नवगीत संकलित हैं तथा इस संग्रह का संपादन डॉ. मधुसूदन साहा ने किया। इस संग्रह में शान्ति सुमन के तीस नवगीत संकलित हैं। मानवीय प्रेम, श्रम और प्रकृति के सौंदर्य के अद्वितीय चित्र इस संग्रह के गीतों में दिखाई पड़ते हैं :

'अबके काट रहा जब मैं खुद/अपने हाथों फसलें/ परस तुम्हारे हाथों का भी/कहता मिलकर हँस लें/ पीला फूल कनेर का खिलता/है तो दिन माह में/ तुमको चाहा कितना-कितना मैंने अपनी चाह में/ सूरजमुखी खेत में झूमे फसलें खड़ी गवाह में।'

इस साझा संग्रह में शान्ति सुमन के 'सूर्य का उदय', 'गीत गाये देहरी', 'फागुन के दिन', 'बदली का हिरना' और सिंदूरी साँझ जैसे अन्य महत्त्वपूर्ण नवगीत शामिल हैं। शान्ति सुमन के गीत-संग्रह 'भीतर-भीतर आग' का प्रकाशन 2002 ई. में हुआ। इस संग्रह के पचहत्तर गीत 'आइने दूर तक', 'पूरी पृथ्वी माँ', 'भीतर-भीतर आग' और 'नदियाँ इंगुर की' शीर्षक से चार खंडों में विभक्त हैं। शान्ति सुमन के इन गीतों के विषय में राजेंद्र प्रसाद सिंह के विचार हैं कि- 'प्रथम खंड के गीतों में पूरी मनोवस्था पर निरंतर बदलते संवेदना-संकट का प्रक्षेप उभरा है। सान्द्र और संश्लिष्ट बिम्बों, प्रतीकों, संकेतकों और वैकल्पिक चित्रणों में गहरी और ऊँची, फिर भी कलात्मक और पारदर्शी संरचना मूर्त होती है। दूसरे खंड के गीतों में प्रकृति के विविध परिदृश्य ताजे संयोजन से मार्मिक निहितार्थ की झलक देते हैं। तीसरे खंड के गीत प्रेम-प्रीति और रागानुराग के जीवंत संदर्भों की महीन बुनावट से स्मृति और अद्यतनता का संबंध प्रकट करते हैं। चौथे खंड के गीत सामाजिक सदाशयता से अनुप्राणित और ग्राम-नगर, घर-बाहर, निजी-सामाजिक तथा व्यापक मानवीय संवेदनाओं के बचाव और सुरक्षा रखने की गारंटी देते हैं।' इस संग्रह के नवगीतों में कई विशेषताएँ एक साथ दिखाई पड़ती हैं। शान्ति सुमन के इन नवगीतों में मन के कोमल भावों की अभिव्यक्ति के साथ गाँव की चिंता, परंपरा और संस्कार के अमूल्य धरोहरों को सहेजने की और उन्हें अगली पीढ़ी तक पहुँचाने की चिंता भी व्यक्त की गई है :

'दरवाजे का आम-आँवला/घर का तुलसी-चौरा/ इसीलिये अम्मा ने अपना/गाँव नहीं छोड़ा..'

मिथिलांचल के स्त्रियों की जीवन, उनके रीति-रिवाज और संस्कृति के सौंदर्य का, भारतीय समाज में परिवार और विवाह आदि विभिन्न संस्कारों का, बेटी-बहू के महत्व का, माता-पिता, बुजुर्गों की देखभाल और जिम्मेदारियों का, उनके द्वारा संतानों को दिए जाने वाले सीख और संस्कार का बहुत ही गीतात्मक वर्णन इन गीतों में हुआ है :

'धीरे पाँव धरो!/आज पिता-गृह धन्य हुआ है/ मंत्र-सदृश उचरो!/आँचल भरकर दूब-धान
सिन्दूरी नमन करो!/पितरों के गौरी-गणेश को/ पूजो, वरन करो!/धीरे पाँव धरो!'

'पंख-पंख आसमान' शीर्षक से 2004 ई. में शान्ति सुमन के एक सौ चुने हुए गीतों का संकलन नचिकेता के चयन और संपादन में प्रकाशित हुआ। इसमें शान्ति सुमन के 'ओ प्रतीक्षित' से लेकर 'भीतर-भीतर आग' तक के संग्रहों से गीतों को चुनकर शामिल किया गया। इसमें नवगीत और जनवादी गीत-दोनों ही प्रकार के गीतों को शामिल किया गया है। इस संकलन की भूमिका में संपादक नचिकेता ने शान्ति सुमन के गीतों की सहजता, स्वाभाविकता, शक्ति, सौंदर्य और सार्थकता पर विस्तार से चर्चा की है। शान्ति सुमन का नवगीत-संग्रह 'धूप रंगे दिन' 2001 ई. में प्रकाशित हुआ। नब्बे गीतों के इस संग्रह में उनके 'पहचान बनो', 'कोशी के कछेर की लड़की', 'नदी का हँसना', 'जिया हुआ जीवन', 'निम्न मध्यवर्ग का गीत', 'मजदूर माँ की लोरी' जैसे जनधर्मी गीत संकलित हैं। 'धूप रंगे दिन' के गीतों को 'एक सूर्य रोटी पर' के गीतों की अगली कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। शान्ति सुमन के ये गीत समय और समाज सापेक्ष होने के साथ ही जीवन की बोलती तस्वीरों की तरह हैं। भारत के किसान-मजदूर और मध्यवर्ग के लोग किस तरह मुसीबतों से घिरे जिये हुए जिंदगी को बार-बार जीते हुए अपना गुजारा करते हैं, उनकी संघर्षपूर्ण जीवन-दशा का चित्रण इस संग्रह के गीतों में हुआ है :

'फटी हुई गुदड़ी सीते हैं/जिया हुआ जीवन जीते हैं/ घर में तेल नहीं ढिबरी में/अँधियारों की ऐसी बरसा/ झउआ का हो फूल रेत में/पानी-पानी को भी तरसा/ छोटे सपनों को पीते हैं/जिया हुआ जीवन जीते हैं।'

देश की समस्याओं का हल मजदूर-किसानों और नौजवानों के पास है। वही श्रम और संघर्ष के वास्तविक ध्वजवाहक हैं। इसलिए देश की करोड़ों जनता की आवश्यकताओं और उनकी समस्याओं का समाधान भी उनके बीच से ही निकलेगा। शान्ति सुमन के गीतों में इस भाव की उपस्थिति है। वहाँ देश के किसानों-मजदूरों और नौजवानों से जागने, श्रम करने और देश के पौरुष की पहचान बनने के लिए आह्वान किया गया है :

'जागते रहो जवान देश के/ओ मजूर ओ किसान देश के/ पहरेदारी करती है गर्म हवा/टूटेगी मौसमों की मनमानी/ शिरा-शिरा अभी कौंधती बिजलियाँ/खून नहीं रचा करता है पानी/ पौरुष की पहचान बनो देश के/ओ मजूर ओ किसान देश के।'

कथ्य, शिल्प और संवेदना के स्तर पर 'धूप रंगे दिन' संग्रह के गीत मन को गहराई तक छूते हैं। आधुनिक यथार्थ की आंतरिक गतिशीलता को परखने की दृष्टि शान्ति सुमन के इन गीतों को विशेष बनाती है। अंतर्वस्तु और संवेदना के स्तर पर भी ये गीत समकालीन कविता के बेहद निकट प्रतीत होते हुए भी अपने गीतात्मक तेवर और संरचना के कारण विशिष्ट हैं। 'धूप रंगे दिन' (2001 ई.) के तीन वर्षों के बाद शान्ति सुमन का अगला नवगीत-संग्रह 'नागकेसर हवा' 2011 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में छियासी गीत संकलित हैं। गीतकार ने अपने दूसरे नवगीत संग्रह 'परछाईं टूटती' (1918 ई.) के पहले गीत के शीर्षक पर इस संग्रह का नाम 'नागकेसर हवा' रखा है। शान्ति सुमन के ये गीत कथ्य और शिल्प की दृष्टि से सुस्पष्ट हैं। वे स्वयं कहती हैं- 'मेरे मन में अपने गीतों को लेकर कोई दुविधा नहीं है। देश-दुनिया के संघर्षजीवी जन के सुख-दुख, हर्ष-विषाद, आशाकांक्षा और बेहतर जिंदगी, बेहतर दुनिया के लिए उनकी मुक्ति-चेतना ही मेरी प्रतिबद्धता है। 'अपने गीतों के विषय में शान्ति सुमन की यह उक्ति उनके इस संग्रह के गीतों के लिए बिल्कुल सटीक बैठती है। इस संग्रह में आमजन के दु:ख-सुख, हर्ष-विषाद, नदी,

फूल, हवा, आकाश, समुद्र, पक्षी सहित प्रकृति के विभिन्न अवयवों से संबंधित गीतों के साथ-साथ जन-सरोकारों तथा जन संपृक्ति से युक्त गीत शामिल हैं। कुछ गीत द्रष्टव्य हैं :

'चाँदनी की नदी में मछली-सी चल के/रात भर हम गीत गाये फसल के'

तथा,

'चिड़िया की पाँखों पर/बारिश का पहला पानी/ यह बारिश का नहीं,/प्यार का पानी बरसा है'

इस संग्रह में नदी, पोखर और पानी से संबंधित कई गीत हैं। 'कोसी महरानी' शीर्षक गीत कोसी के बाढ़ की विभीषिका के कारण होने वाले पलायन और बर्बादी की स्मृतियों को ताजा कर देता हैं :

'बालू उगल गई गुस्से में/यह कोसी महरानी/ अंतरी दाबे तीन दिनों से/भोला तीन परानी
घटना केवल एक रात-दिन/रह-रह नीर बहाना/ अभी गाँव मत आना।'

शान्ति सुमन का नवगीत संग्रह 'लय हरापन की' 2015 ई. में प्रकाशित हुआ। इस नवगीत संग्रह में पंचानवे गीत संकलित हैं। अनुभव और संवेदना के आँच पर पके हुए इन गीतों में अद्वितीय सौंदर्यबोध उपस्थित है। शान्ति सुमन के ये गीत ताजे बिम्ब-प्रतीकों और मिथिलांचल के टटके शब्दों के कारण अपनी अलग पहचान बनाते हैं। 'नवगीत ने गीत की शिल्पगत जड़ता को तोड़ा और प्रथित-प्रचलित मुहावरों की सीमा का अतिक्रमण करते हुए, उनको नयी शक्ति के रूप में ढाला। आत्माभिव्यक्ति और सामाजिक सरोकार की सोच के अंतर को बदल दिया। ये नवगीत के सबसे बड़े अवदान हैं। 'इन मानदंडों पर इस संग्रह के गीत खरे उतरते हैं। इन गीतों में एक नये तरह की ताजगी है, हृदय के कोमल भावों और संवेदना की गहरी पैठ है। शान्ति सुमन के ये गीत उनकी अपनी पीड़ा है, अपने शब्द और अपने बिम्ब हैं, जो अपनी पृथक पहचान रखते हैं। ये गीत दु:ख और संघर्ष से भरे जिंदगी के मरुस्थल में प्रेम और संवेदना का हरापन लौटने की आस के गीत हैं :

'लौटती है जिंदगी में/नयी लय हरापन की/ नाचती कभी नीदों में/आँख की भीगी पुतलियाँ
छींटती बीज आशा केध्धूप-हवाओं की परियाँ/ जुड़ती कथाओं में कथा/रचती है जीवन की!'

इस संग्रह में संकलित गीतों में अर्थ की गहराई की व्यापकता समाहित है, जो गीत को पढ़ने के बाद ठहरकर सोचने को विवश करती है। ये गीत बाँसुरी की मद्धिम ध्वनि की तरह हैं, जो धीमे-धीमे मन-मस्तिष्क पर असर करते चले जाते हैं। इन गीतों में दु:ख, करुणा और संघर्ष की स्थिति को स्वीकार करने का साहस भी है और वह आवश्यक उम्मीद भी जो इस घेरे से बाहर निकलकर सुख के धरातल पर पहुँचने के लिए अनिवार्य है :

'ऐसा ही जीकर देखेंगे/दुख को कर भीतर देखेंगे/थोड़ी सी उम्मीद बची है/फिर से कोयल भी कूकेगी
हरियाली का आँचल थामे/राहों बीच हवा रोकेगी/ पीतल के गहने दमकेंगे/अपने सारे सुख सँवरेंगे।'

'लाल टहनी पर अड़हुल' का प्रकाशन 2016 ई. में हुआ। इस संग्रह में अठहत्तर गीत संकलित हैं। 'ओ प्रतिक्षित' से लेकर 'लाल टहनी पर अड़हुल' के प्रकाशन तक शान्ति सुमन गीत-रचना की एक सुदीर्घ यात्रा पूरी कर चुकी हैं। इस संग्रह के गीत रूप, कथ्य और प्रस्तुति के स्तर पर गहराई और स्थायित्व से संयुक्त हैं। जीवन-अनुभव और जीवन-यथार्थ इन गीतों में और अधिक प्रामाणिकता के साथ व्यक्त हुआ है। कई गीतों में गुजरे हुए जीवन के पावन स्मृति चित्र उपस्थित हुए हैं :

'दुख ने ही जोड़ा था मुझको/तुम से, घर से/ फिर तो मिलते गये सभी से/इनसे, उनसे/ कभी उतार न पाये दुख को/अपने सिर से।'

शान्ति सुमन कहती हैं कि–'गीत रचना मेरी रचनात्मक विवशता है। मैं अपने विचारों और भावों को गीत के माध्यम से व्यक्त करने में सहूलियत महसूस करती हूँ।' 'लाल टहनी पर अड़हुल' के गीत उनकी इस उक्ति के प्रमाण हैं। 'कुछ सगुन सा', 'नदी के गाँव से', 'पीत कनेरों में', 'कन्धे पर बेटी', 'बहुत लड़े हैं', 'समझने की भाषा' जैसे गीत इस संग्रह के महत्त्वपूर्ण गीत हैं, जिनमें जीवन के विविध पक्षों प्रेम, सौंदर्य, श्रम–संघर्ष, पलायन, अलगाव और आधुनिक विषम जीवन स्थिति का चित्रण हुआ है। अनेक तरह की मुश्किलों, मुसीबतों और त्रासद परिस्थितियों के बीच भी जीवन के लिए लड़ते और श्रम करते क्षणों के दृश्य इस संग्रह के गीतों में मौजूद हैं :

'खर–पतवार जमा खेत में/कब से वहीं खड़े हैं/ अपने जीवन की खातिर/तब से बहुत लड़े हैं।'

शान्ति सुमन एक श्रेष्ठ नवगीत–जनवादी गीतकार–कवयित्री होने के साथ–साथ एक कुशल संपादक भी हैं। उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण पत्र–पत्रिकाओं का संपादन किया है। लेखन के साथ संपादन कला में भी शान्ति सुमन निपुण हैं। लेकिन मुख्य रूप से उनका जोर संपादन के बदले रचना–कर्म पर ही केंद्रित रहा। हिंदी नवगीत की वरिष्ठ गीतकार शान्ति सुमन को उनके रचनात्मक साहित्यिक अवदान के लिए अबतक विभिन्न पुरस्कार एवं सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है। लेकिन उनकी सबसे बड़ी विशेषता जो हिंदी गीतों की दुनिया में उनकी पहचान है, वह है हिंदी नवगीत की प्रथम, एकमात्र, विशिष्ट और ऐतिहासिक गीतकार के रूप में उनकी उपस्थिति। उन्होंने विभिन्न आकाशवाणी केंद्रों और कवि सम्मेलन के मंच से भी अपने नवगीतों की वर्षों तक प्रस्तुति दी है। शांति सुमन के नवगीतों को इस प्रकार की लोकप्रियता और ख्याति प्राप्त हुई, वह दुर्लभ है। उनके प्रारंभिक नवगीत भी अपनी सीमा का अतिक्रमण करते हैं। हिंदी नवगीत के क्षेत्र में शांति सुमन के योगदान का मूल्यांकन करते हुए यह कहना सर्वथा उचित और सार्थक है कि हिंदी नवगीत पर की गई कोई भी चर्चा शांति सुमन को शामिल किए बिना निश्चित ही अपूर्ण प्रतीत होती है।

सम्पर्क : शोधार्थी
हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी
मो.1839045001

डॉ. माया दुबे

साठोत्तर हिन्दी कविताओं में राजनीतिक चेतना

साहित्य एवं राजनितिक एक-दूसरे के पूरक रहे हैं। साहित्य का प्रभाव राजनीति पर तथा राजनीति का प्रभाव साहित्य पर हमेशा देखा गया है। गुप्तकाल को साहित्य का स्वर्णकाल कहा गया है, जब समाज में शांति होती है, शासन समस्याविहीन होता है तो साहित्य एवं कला भी उत्कर्ष को प्राप्त होती है। स्वतंत्रता से पूर्व की हिंदी कविता राजनीति को विशेष रूप से समेटे हुए है, स्वतंत्रता के पश्चात् इसमें विस्तार हुआ। क्षण-क्षण बदलते राजनीतिक परिवेश का हिंदी साहित्य एवं काव्य पर भी प्रभाव परिलक्षित होता है। अत: कविता में भी राजनीतिक चेतना होना सामान्य बात है। काव्य समय के चाक पर तैयार होता है, कवि तत्कालीन चेतना से बहुत प्रभावित होता है। 1947 का समय, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद त्रासदी देश ने झेली है, बँटवारे की पीड़ा है। राजनीतिक उथल-पुथल है, भारत स्वतंत्र तो हो गया लेकिन कई समस्याओं से जनता जूझ रही थी। ये सब साठोत्तरी हिन्दी कविता में स्पष्ट झलकते हैं।

अत: यह स्पष्ट है कि आदिकाल से अबतक भारत की राजनीतिक चेतना ने जितने परिवर्तन देखे हैं, उतने विश्व के किसी अन्य देशों की राजनीति ने नहीं। सन 1857 से जो संघर्ष शुरू हुआ उसका समापन 15 अगस्त 1947 को हुआ। स्वतंत्रता के बाद कई समस्याएँ सामने थीं, ऐसे में प्रेम की कविता संभव नहीं। लोक की चेतना, संघर्ष, बेरोजगारी, बँटवारे की त्रासदी, स्त्रीअस्मिता का संघर्ष, शिक्षा, चिकित्सा सभी प्रश्न थे। साठोत्तरी काव्य में कवियों ने समय पर लेखनी चलायी लेकिन सबसे अधिक राजनीतिक उथल-पुथल को भी रेखांकित किया। दुष्यंत कुमार के शब्दों में-

'एक चिंगारी कहीं से/ढूँढ़ लाओ दोस्तों,
इस दिये में तेल से/भीगी हुई बाती तो है।

सचमुच मानव परिस्थितियों का दास है, समाज की चेतना कवि को भी लिखने को मजबूर करती है। सुप्रसिद्ध समाज शास्त्री जे.एस. मेकेन्जी ने मानव की परिभाषा देते हुए लिखा है-

'मनुष्य एक बुद्धिजीवी प्राणी है जो एक विचित्र एवं जटिल ढाँचा रखता है।'

यही प्रवृत्ति उसे सामाजिक चेतना से जोड़ती है। राजनीति से समाज प्रभावित होता है, कवि भी समाज में रहता है, अत: समाज की राजनीतिक गतिविधियाँ उसकी कविता में भी दिखती हैं। 1969 बिखराव का वक्त था, आपातकाल ने एक नयी राजनीतिक हलचल उत्पन्न की। भारत में स्थितियाँ 1913

से गंभीर होने लगीं, 1915 तक तो राजनीतिक हालात बिगड़ गये, कविता में इसकी स्पष्ट छाप दिखती है। साहित्यकारों पर भी प्रतिबन्ध लग गये, दिल्ली महानगर परिषद् के एक सदस्य राजेश शर्मा ने साहू आयोग के समक्ष भावुक होकर कहा था–

'किस–किस की जुबाँ रोकने जाऊँ/तेरी खातिर
किस–किस की तबाही में तेरा हाथ/नहीं है।'

दिल्ली को सुन्दर बनाने के नाम पर जो विध्वंस हुआ, कवियों पर भी प्रतिबन्ध लगा। आपात काल के पूर्व रघुवीर सहाय की कविताएँ राजनीतिक चेतना से ओत–प्रोत थीं–

'इस लज्जित और पराजित युग में/कहीं से ले आओ वो दिमाग
जो खुशामद आदतन नहीं कराता/कहीं से ले आओ निर्धनता
ओ अपने बदले में कुछ नहीं माँगती।

शोषण के द्वारा निरंतर अधिक से अधिक धन संग्रह करने वाला शोषक सत्ताधारी वर्ग, दूसरी ओर शोषित जनता। रघवीर सहाय के शब्दों में–

'दिल्ली के बसंत का वह विशेष दिन था,/गर्मी थी और हवा थी,
जो धूप को उड़ाये लिये जाती थी/सिमटे हुए लोग उसमें बैठे थे,
मृत्यु की खबर की प्रतीक्षा में।'

इस तरह साठोत्तरी काव्य में राजनीतिक उथल–पुथल का पूरा असर द्रष्टव्य होता है, श्री जाजू ने आपात काल की पीड़ा समझते हुए लिखा–

'अनुशासन कर भंग/शासन में भर नया रंग
कुछ पर कालिख पोतता हूँ /कुछ को धो देता रंग
अपने ही नाम का मैं/लिखता नया पता हूँ
सोचता हूँ.../किसको दबोचता हूँ,
मैं सर्वोदय नहीं।/प्रजातंत्र हूँ।
समतल भूमि पर/नये बिल खोदता हूँ।'

बाबा नागार्जुन ने अपनी कविताओं में राजनीतिक उथल–पुथल का सुन्दर चित्रण किया है–

'लूट–पाट की काले धन की/करती है रखवाली
पता नहीं दिल्ली की देवी/गोरी है या काली।
महँगाई का तुझे पता क्या/जाने क्या तू पीर–पराई
इर्द–गिर्द बस तीस हजारी/साहबान की मुस्की छाई।'

इतना ही नहीं कवि ऐसी शासिका को सुरसा मानते हैं, यथा –

'सौ कंसों की खीझ भरी है/इस सुरसा के दिल के अन्दर
कंधों पर बैठे हैं इसके/धन पिशाच के मस्त कलंदर।'

साठोत्तरी काव्य में राजनीतिक चेतना सर्वत्र दृष्टि गोचर होती है, कवि समाज की आँखें होता है, यथा–

'न्यायमूर्ति कठमुल्ले होंगे/न्यायपालिका शीश धुनेगी
संविधान की पंक्ति-पंक्ति अब/दण्डनीय का जाल बुनेगी।'

कवि केवल मन के कोमल तत्वों का शाब्दिक जाल नहीं बुनता वह समाज की चेतना पर भी प्रहार करता है-

'हम जिन आदर्शों के वास्ते लड़े/भीतर से निकले वे खोखले बड़े
सत्य और मिथ्या/सब लगे अंत में/कर पाये भेद कहाँ/ललाट में संत में।
सबके सब मन के काले निकले।'

देखा जाये तो साठोत्तरी कविता में राजनीतिक सेहत ना व्याप्त हो। तत्कालीन कवि बंधनों के बाद भी बेबाकी से मन की बात कहता है। एक कविता दृष्टव्य है -

'पुलिस और फौज/सचिवालय और न्यायालय
कर्फ्यू और गोली /प्रजा और तंत्र के सम्बन्धों की/संवैधानिक व्यख्यायें हैं।'

रघुवीर सहाय की कविताएँ बेबाकी से राजनीतिक संदर्भों को उधेड़ती हैं-

'निर्धन जनता का शोषण है/कह कर आप हँसे
लोकतंत्र का अंतिम क्षण है/कह कर आप हँसे
सबके सब हैं भ्रष्टाचारी/कहकर आप हँसे
चारों ओर बड़ी लाचारी/कह कर आप हँसे
कितने आप सुरक्षित होंगे/मैं सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर/फिर से आप हँसे।'

राजनीतिक व्यंग्य करने में सहाय पीछे नहीं हटते, कवि के लिए साहस का काम है, सभा में विपरीत परिस्थितियों में राजनीतिक संदर्भ की पुष्टि करना। साठोत्तरी कविताओं में यह सर्वत्र दृष्टिगत है। राजनीति के कागजी आश्वासन पर देखिये-

'इतने आश्वासन दिये तुझे/पर तेरा पेट नहीं भरता
इतना कागजी रोटियाँ दीं/फिर भी तू भूखा ही मरता।'

नेता का प्राण कुर्सी में बसा है, जनता बेहाल है-

'अरमान बसे हैं कुर्सी में/ मन-प्राण बसे हैं कुर्सी में,
सब धर्म-कर्म कुर्सी उनके/भगवान बसे हैं कुर्सी में
वे कुरसी को छोड़ न सकते/लाचारों को आवाज न दो।'

इस प्रकार यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि साठोत्तरी कविता में राजनीतिक चेतना समायी हुई है। कवि बार-बार उनकी ओर ध्यान आकर्षित करता है। राजनीतिक उथल-पुथल को दिखाता है। समाज को चेताता है कि उठो, तुम्हीं इस राष्ट्र के कर्णधार हो क्यों तुम तटस्थ हो, नागार्जुन, रघुवीर सहाय सभी तत्कालीन कवियों के काव्य में यह चेतना दिखाई देती है।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*

डॉ. वासुदेवन 'शेष'

हिंदी भाषा एवं संस्कृति के प्रसार में अनुवाद की भूमिका

(हिंदी साहित्य को तमिल साहित्यकारों का योगदान)

कविता एवं वैभव वही श्रेष्ठ है, जो पतित पावन गंगा के समान सबके लिए हितकर, स्वास्थ्यकर तथा लाभदायक हुआ करता है। हमारे देश में साहित्य का मुख्य उद्देश्य 'स्वांतः सुखाय' माना जाता है। साथ ही उसे परहित कारक के रूप में भी स्वीकार किया गया है। विद्वानों ने साहित्य की आंतरिक प्रेरणा और बाह्य प्रयोजनों का विवेचन तथा विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है। बोध एवं ज्ञान एक ही वाहन के दो पहिए हैं। वाहन इन दो पहियों के सहारे संसार के पथ पर अग्रसर होता रहता है। काव्य तथा दृश्य के रूप में साहित्य का सृजन प्रारंभ हुआ। धीरे-धीरे टीका, व्याख्या और गद्य काव्यों का श्रीगणेश होने लगा। साहित्य का मुख्य अभिप्राय 'बहुजन हिताए बहुजन सुखाय है।' इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संस्था, संगठन, संघ की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। प्रत्येक संस्था, संस्थान तथा संगठन की अपनी-अपनी पृथक प्रवृत्तियाँ हुआ करती हैं। कहीं-कहीं इन संगठनों की कार्य प्रणालियों में भिन्नता में एकता का आभास हो जाया करता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एकता राष्ट्र के लिए अनिवार्य प्रतीत हो रही है। इस प्रकार की एकता तथा एकात्मकता भाषा द्वारा संभव है। भाषा विचारों के आदान-प्रदान की सवांहिका है। आदान-प्रदान के द्वारा सद्भावना पनपने लगती है। इससे हृदय से हृदय की पहचान हो जाया करती है। यह पहचान मनुष्य को एक दूसरे के निकट पहुँचने में सहायक सिद्ध होती है। इस भावना को भाषा तथा साहित्य द्वारा चरितार्थ किया जा सकता है। भाषा का साहित्य से, समाज का समाज से, समाज का राष्ट्र से संबंध कालान्तर से चला आ रहा है। राजभाषा हिंदी भारतीय भाषाओं को परस्पर जोड़ने वाली शृंखला है। एक रेशमी अनुबंध है। जो देशकाल की सीमा को पार करके साहित्य के इतिहास में अपने लिए अविस्मरणीय हस्ताक्षर के रूप में अंकित, स्थापित होकर युगों-युगों तक स्पंदित एवं अनुगुंजित होता रहेगा और जिसकी अनुगूँज वीणापाणि की वीणा में मुखरित होती रहेगी।

'एक राष्ट्र भाषा हिंदी हो, एक हृदय हो भारत जननी', यह दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई का मूलमंत्र है। इसी मूलमंत्र के आधार पर सभा हिंदी प्रचार-प्रसार के कार्यों में संलग्न रही है। हिंदी के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ मद्रास के हिंदीतर भाषा भाषियों में साहित्यिक अभिरुचि उत्पन्न करने का श्रेय

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास को जाता है। हिंदी प्रचार आंदोलन में पत्र-पत्रिकाओं का श्लाघनीय योगदान रहा है।

सन 1934 में श्रीमती अम्बुजम्माल ने 'रामचरित मानस' के 'अयोध्याकांड एवं गोदान' का तमिल अनुवाद प्रस्तुत किया। श्री के.एम. शिवराम शर्मा ने महाकवि सुब्रमणियन भारती की तराजू, ज्ञानरथम आदि तमिल कृतियों का हिंदी रूपांतर प्रस्तुत किया। श्री रा.विलिनाथन ने कल्कि कृष्णमूर्ति की तमिल कृति शेलैमलै की राजकुमारी, पार्थिपन का सपना, बाहर का आदमी, भजगोंविदम (राजाजी कृति) जय जय शंकर (शंकराचार्य की जीवनी रा.गणपति कृत), हृदयनाद, लहरों की आवाज (श्री कल्कि कृत) की तमिल कृतियों का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया। आपकी नूपूर गाथा (तमिल महाकाव्य) कसौटी, मास्टर जी (तमिल नाटक) पाण्डुलिपि के रूप में है। श्रीमती सरस्वती रामनाथ ने क.प.राजगोपालन का (पौ फटेगी,) गोपूर का दीप, श्री सुब्रमणियम भारती की प्रेरक कथाएँ, नारी (उपन्यास अखिलन कृत), करिंचतेन (उपन्यास राजम कृष्णीन) तथा कम्ब रामायण, अशोक मित्रण (प्रतीक्षा में), आर.वी का (मेटिनी शो), इंदूमति (अंकूर), उमा चंद्रन (मिटटी), एस समुद्रम (अकेला एक गुलाब), कुमारी चूड़ामणि (रिश्ता), कु.म.मोदडम (उन ऊँचे पहाड़ों के बीहड़ में) डी. जयकांतन (आत्मकदर्शन), टी जानकीरामन का (अरुणाचलम और पटटू), पावण्णन का (काई) प्रभंजन का (बह्मा), राजमकृष्णन का (उद्धार), वण्ण दासन (चादर), अखिलन (बच्चा मुस्कुरा उठा) शिवशंकरी जी का (गिद्ध) मल्लणरवनन जी का (अल्प जीवी) कृतियों को तमिल से हिंदी में प्रस्तुत किया।

डॉ.के.ए.जमुना को 'नालायिर दिव्य प्रबंधन और सूरसागर में कृष्ण कथा का स्वरूप' पर पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की। श्रीनिवासाचारी ने सप्तकसरिता (लेख), महात्मा गाँधी (जीवन चरित्र), तराजू तथा नारी(उपन्यास) का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया। आपने हंस, भारती, गल्प (संसार, आजकल आदि हिंदी पत्रिकाओं के माध्यम से तमिल की नवीनतम उपलब्धियों को हिंदी में प्रस्तुत करने का सराहनीय कार्य किया है। श्रीमती ए.व.बालम ने 'आण्डाल तथा आलवार' की कविताओं का हिंदी रूपान्तर 'मोहन लतिका' में प्रस्तुत किया है। आपने भारती की 'पांचाली शपथम' का हिंदी अनुवाद 'पांचाली की शपथ' शीर्षक से प्रस्तुत किया।

डॉ.पी.जयरामन अनुवाद के क्षेत्र में प्रख्यात हैं। आपने 'पुरनानूर की कथाओं' तथा राष्ट्रकवि भारती के 'तमिल पद्यों' का हिंदी में पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है। दीपम पार्थसारथी के उपन्यास का अनुवाद 'आत्मा के राम' शीर्षक से प्रकाशित किया है। आपने अखिलन के 'चित्तिरप्पा वै' तमिल उपन्यास का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया। आपका आधुनिक तमिल 'साहित्य एक सर्वेक्षण ग्रंथ' विशेष सराहनीय है। शा.रा.सारंपाणि ने हिंदी पत्रकारिता जगत में अपने लिए एक विशेष स्थान प्राप्त किया है। उन्होंने 'दक्खिन हिंदी' के सह संपादक, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा समाचार मद्रास तथा दिल्ली के संपादक के रूप में ख्याति अर्जित की है। मल्लिका, 'राजीनामा' आपकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। निबंध, लेख तथा तमिल कविताओं का हिंदी अनुवाद भी आपने प्रस्तुत किया। पत्रकारिता की दीर्घकालीन सेवाओं के निमित्त राष्ट्रीय स्तर पर आपका सम्मान भी हुआ है। सानवती की कथावस्तु के आधार पर आपने 'पल्लविनी' उपन्यास की रचना भी की है।

उमाचंद्रन 'राकाचंद्र' के उपनाम से लिखा करते थे। आप तमिल और हिंदी उपन्यासकार तथा कहानीकार हैं। आपका 'मुल्लम मलरूम' तमिल उपन्यास पुरस्कृत हुआ। आपने 'काँटा और कली' शीर्षक से तमिल उपन्यास का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया। आपकी रचनाएँ तमिल और हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं। इनके 'मुल्लम मल्लरूम' उपन्यास पर तमिल और हिंदी में फिल्म बन चुकी है। आप आकाशवाणी मद्रास केन्द्र के हिंदी कार्यक्रमों से सम्बद्ध रहे।

विद्वान श्रीनिवास राघवन संस्कृत, हिंदी तमिल के ज्ञाता हैं। एक सुकवि भी हैं। 'कंदब (हिंदी काव्य संग्रह)' 'अवैल कयार की नीतियाँ' तमिल से हिंदी में अनुवाद) 'पश्मोषिं, 'नानूल' हिंदी अनुवाद 'अमरकोष' (संस्कृत से हिंदी में अनुवाद) के अतिरिक्त आपने मौलिक दोहे भी लिखे हैं। आपने तिरूकुरल के कुछ अंश, 'नालडियार', 'भारती के गीत' एवं 'भजगोंविदम' का हिंदी अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। आपकी रचनाएँ हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुलकलाम के हाथों राष्ट्रपति भवन में सम्मानित किए गए हैं। उनकी तिरूकुरल पर उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया भी लिखी।

डॉ. एस.एन. गणेशन हिंदी, तमिल, मलयालम तथा अंग्रेजी के ज्ञाता थे। इन चारों भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। 'नाचती लहरें', 'काव्यरूप मंथन', तमिल की सुप्रसिद्ध रचना 'शिलप्धिकारम' का आपने अपने विभागीय अध्यक्ष श्री शंकरराजु नायडु के साथ सफल अनुवाद प्रस्तुत किया। तमिल हिंदी 'व्याकरण में विषमता' आपकी उल्लेखनीय कृति है। हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन (शोध प्रबंध) बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत है। आप भाषा वैज्ञानिक तथा प्रखर चिंतक थे। आप साहित्यिक अनुशीलन समिति के अध्यक्ष भी रहे। मद्रास महानगर की साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से सम्मिलित हुआ करते थे। आप एक आदर्श प्राध्यापक, सफल मार्गदर्शक एवं वक्ता भी थे। आप मद्रास विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के अध्यक्ष थे। आपके शोध पत्र, निबंध लेख आदि हिंदी की पत्र पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित हुआ करते थे।

इसी प्रकार डॉ. मधु धवन के संपादन में '21 तमिल कहानियाँ' का भी प्रकाशन किया गया। जिसमें प्रसिद्ध कहानीकारों की तमिल कहानियों का हिंदी में अनुवाद प्रस्तुत किया है। कृष्णममूर्ति कल्कि (नहले पर दहला), तेनकच्ची स्वामीनाथन (बाद में सोचते हैं), पुष्पा तंगदूरै (लुंगिसम जिंदाबाद), शिवशंकरी (गधा घिस-घिस कर गर्द हो गया), एस.वी. रमणी (समझ में न आने वाली राजनीति), अखिलन (संतान वरदान), सावी (अनाड़ी एकाम्बणरम), इन सभी का अनुवाद : डॉ. कमला विश्वनाथन जी ने हिंदी में किया।

अनुराधा रमणन (अम्बलि की बहुमंजिली योजना), अरसु मणिमेगलै (सोने की हथकड़ी), अशोक मित्रण (सुन्दकर), का अनुवाद शिवकामी जी ने हिंदी में प्रस्तुत किया।

इसी प्रकार भाग्यकम रामस्वामी (ससुर की राजनीति), पोन परमगुरु (विचित्र वारदातें), श्रीमती आर. पार्वती जी ने किया है।

रा. शौरिराजन तमिल और हिंदी के विद्वान हैं, संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता हैं। आप सृजनशील लेखक हैं। तमिल और हिंदी के आदान-प्रदान के क्षेत्र में आपका योगदान स्तुत्य है। कालीदास कृत

'अभिज्ञान शांकुतलम' का आपने हिंदी में अनुवाद किया है। डी. जयकांतन (भूलें गुनाह नहीं होतीं) एवं इनकी 10 तमिल कहानियों का अनुवाद हिंदी में किया है। द्राविड़ और आर्य के संबंध में भी आपने हिंदी में काफी लिखा है। एन. शंकरन के 'यात्रा वृतांत' का हिंदी अनुवाद 'बीस साल के देश (जर्मनी)' में बीस दिन की यात्रा कृति को केन्द्र सरकार द्वारा पुरस्कृत किया गया। आपने सुजाता के उपन्यास 'चौदह दिन' का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया। जयकांतन की कुछ चुनी हुई कहानियों का एवं टी. पी. मीनाक्षी सुंदरम पिल्ले के शोधपरख निबंधों का सफल अनुवाद किया। जयकांतन की कहानियाँ पुस्तक केन्द्र सरकार द्वारा पुरस्कृत है। आप दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास की मुख पत्रिका 'हिंदी प्रचार समाचार' दक्षिण वाणी, 'बहुबीहि' के संपादन मंडल में भी रहे। डॉ. जयलक्ष्मी सुब्रमणियन जी ने लक्ष्मीरमणन कृत (सावधान) का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया।

आण्डाल प्रियदर्शनी (जीवन एक इंद्रधनुष) का अनुवाद डॉ. शारदा रमणी जी ने हिंदी में किया। श्रीमती ज्योतिर्लता गिरिजा (दक्षिण अफ्रीका का दामाद) इसका अनुवाद डॉ. एम. गोविंदराजन जी ने हिंदी में किया। डॉ. एम. गोंविदराजन हिंदी और तमिल के ज्ञाता हैं। वे रामकृष्ण मिशन स्कूल में हिंदी शिक्षक के पद से सेवानिवृत्त हुए। आजीवन वे हिंदी एवं तमिल भाषा की प्रोन्नति में तल्लीनता से कार्य कर रहे हैं। उत्तर और दक्षिण के बीच भाषायी सेतु एवं सौहार्द का कार्य कर रहे हैं। उन्होंने 'आलवार एवं अष्टछाप के भक्ति काव्य' का तुलानात्मक अध्ययन शोध ग्रंथ प्रकाशित किया। तमिल साहित्य की रूपरेखा, 'विद्यापति' के कुछ चुने हुए पद उनकी कुछ प्रकाशित रचनाएँ हैं। उन्होंने गोस्वामी कृत 'विनयपत्रिका', गीतावली, 'कवितावली' का तमिल में अनुवाद प्रस्तुत किया। 'भारतीय काव्य शास्त्र' हिंदी तमिल 'शक्ति मालै' को प्रकाशित किया। भाषा संगम तमिलनाडु इकाई के महासचिव के तौर पर उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय कार्य किए हैं। चेन्नई के विद्यार्थियों को एम.ए. हिंदी, एम.फिल, पी.एच.डी. एवं शिक्षा विशारद की उपाधियाँ दिलाईं आज वे विद्यार्थी हिंदी के शिक्षक एवं केन्द्र सरकार के उच्च पदों पर आसीन हैं। उन्होंने भाषा संगम की ओर से कई साहित्यकारों एवं चेन्नई के लेखकों की तमिल से हिंदी में अनुदित पुस्तकों को भी प्रकाशित कर विमोचित किया। उन्हें इस भाषायी प्रोन्नति के लिए उत्तर प्रदेश सरकार, बिहार सरकार ने सम्मानित भी किया है।

डॉ. दयानंद फ्रासिंस (गरीब का खून) का अनुवाद डॉ. पी.के. बालसुब्रमणियन जी ने प्रस्तुत किया। इन्होंने डॉ. शिव मंगल सिंह सुमन के साहित्य पर अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत किया है। और कई तमिल के संद्यकालीन ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद प्रस्तुत किया है।

पी.मुरूगेशन (वय:संधि) का एवं तमिल साहित्य एक झाँकी, भारतीय भाषाओं में रामकथा- तमिल भाषा के संपादक के रूप में हिंदी में डॉ. एम. शेषण जी ने प्रस्तुत किया। डॉ. शेषण जी का 'कल्कि एवं वृंदावन लाल वर्मा के उपन्यासों का तुलानात्मक अध्य्यन' शोध प्रबंध प्रकाशित किया है। आपने शिव कुमार मिश्र के 'नीलाचाँद' (उपन्यास) का तमिल में अनुवाद किया है। हाल ही में आपने हिंदी प्रचार सभा के उच्च शिक्षा शोध संस्थान, चेन्नई से डी. लिट. की उपाधि प्राप्त की है। आप सक्रियता से तमिल और हिंदी साहित्यों के संवर्धन में पूरी कर्मठता से कार्य कर रहे हैं।

डॉ.एन.सुंदरम तमिल कन्नड़, हिंदी और अंग्रेजी के ज्ञाता हैं। आपने मु.वरदराजनार के उपन्यास

कोयले का टुकड़ा शीर्षक से हिंदी अनुवाद किया है। राष्ट्र कवि भारती की राष्ट्रीय कविताओं का हिंदी रूपांतर भी आपने किया है। आपने तिरूकुरल का अनुवाद किया है। बाल साहित्य के क्षेत्र में एच.दुरैस्वामी के महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया है। इनकी प्रकाशित कहानियों में 'नानी की कहानी' 'एक स्फटिक के बीस पहलू', 'अव्वैरयार की कथा?' बालोपयोगी संकलन उल्लेखनीय हैं। आपकी बालपयोगी पुस्तकें पुरस्कृत हुई हैं। आपने लौह पुरुष 'वल्लभ पटेल की जीवनी' पर आधारित नाटक भी लिखा। वह पाण्डुलिपि के रूप में है।

डॉ.वी.पद्मावती जी ने' बीसवीं शताब्दी की तमिल कहानी' के शीर्षक से लगभग 80 कहानियों का हिंदी में अनुवाद किया है, जो सराहनीय है। तमिल के प्रसिद्ध के कहानीकार जैसे : भारतीयार (प्रेतों का समूह), व.वे.सु अय्यर (तालाब के किनारे पीपल का पेड़), अ. माधवया (गीदड़ से घोड़े होने की बिडम्बना), पुदुमैप्पितन (चेल्लोम्मा), राजगोपालाचार्य (देवानै), कु.प.राजगोपालन (सुबह होगी क्या), न. पिच्च मूर्ति (विजय दशमी), बी. एस. रासमैया (नक्षत्र रूपी बच्चे), वे.मु कोदैनायकी (कालचक्र), कल्कि (अनुभव का नाटक), एस विसालाक्षी (नववर्ष का जन्मा), सेतु अम्मलि (कुलवती), सी.चद्रशेखर (बच्ची का प्रश्न), रा.विल्लीनाथन तमिल की प्रसिद्ध साप्ताहिक 'कल्कि' पत्रिका के उपसंपादक थे। फलत: हिंदी से तमिल में प्रेमचंद, सुदर्शन एवं कल्कि आदि की कहानियों का अनुवाद किया। तमिल साहित्य पर हिंदी का प्रभाव, तमिल काव्य, रामकाव्य, तमिल साहित्य पर गाँधी जी का प्रभाव, तमिल का नाटक साहित्य, पर पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की गयी।

श्रीमती के.ए.जमुना ने पुदुमैप्पितन की कुछ कहानियों का हिंदी 'पुदुमैप्पितन की कहानियाँ' नाम से अनुवाद किया। इन्होंने इसके अतिरिक्त तमिल की बीस कहानियों का अनुवाद 'कथा भारती' संकलन में तमिल कहानियाँ शीर्षक से भी प्रकाशित किया। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास द्वारा हिंदी में 'तमिल की प्रतिनिधि कहानियाँ' शीर्षक से एक कहानी संग्रह प्रकाशित किया। जयकांतन की कहानियों का अनुवाद 'युग-संधि' के नाम से प्रकाशित किया। डॉ.के.ए.जमुना को 'नालायिर दिव्यु प्रबंधन और सूरसागर में कृष्ण कथा का स्वरूप' पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

डॉ. आर.एम.श्रीनिवासन जो केन्द्रीय सरकार की हिंदी शिक्षण योजना के अधीन उपनिदेशक पद से सेवानिवृत्त हुए। उन्होंने दक्षिण के महान संत 'रामानुजाचार्य की जीवनी' उनके उपदेशों का हिंदी अनुवाद कर प्रकाशित किया। हाल ही में उन्होंने एक और 'संत नम्माउलवार की तिरूमोषि' का भी हिंदी में अनुवाद कर प्रकाशित किया। कई पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी साहित्य से संबंधित आलेख प्रकाशित हो चुके हैं। तमिलनाडु सरकार के लिए संगमकालीन ग्रंथ' मुल्लैसप्पाआट, 'परिपाडल' और 'अहनानूरू' का हिंदी गद्यानुवाद प्रस्तुत किया है। भारत सरकार के सीनियर फेलोशिप प्राप्त तमिल और हिंदी के कृष्णभक्ति काव्य पर शोध कार्य किया है। इन्होंने अपने कार्य काल में लगभग 2 लाख विद्यार्थियों को हिंदी प्रशिक्षण दिया। केन्द्र सरकार के राजभाषा विभाग ने इन्हें उत्कृष्ट प्राध्यापक की उपाधि से पुरस्कृत किया है।

डॉ. सुब्रमणियन संस्कृत हिंदी, बंगला, तमिल, अंग्रेजी के ज्ञाता थे। आप कवि, समीक्षक, एकांकीकार, निबंधकार एवं अच्छे वक्ता थे। 'विमर्श से परे (कहानी संग्रह), 'सदर फाटक' (उपन्यास), 'तमिलनाडु

एक्सप्रेस', इधर से उधर, उधर से किधर, 'रामनाम सत्य है'। 'अमर अम्बिकापति (एकांकी)', 'अनामिका (हिंदी काव्य संग्रह) 'अतीत के चलचित्र' हिंदी से तमिल में अनूदित, हिंदी साहित्य का इतिहास (तमिल में) बृहत अंग्रेजी-हिंदी शब्द कोश प्रकाशित है। आप सृजनशील रचनाकार थे। आलमआरा से नवीन फिल्मी संगीत के ज्ञाता थे। वे 'हिंदी हृदय' 'रोज एक कविता रोज एक पाठक' पत्रिका भी चलाते थे। वे भारतीय रेल विभाग में वरिष्ठ हिंदी अधिकारी के पद पर भी रहे और दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा से भी आजीवन जुड़े रहे और सभा द्वारा संचालित हिंदी पाठयक्रमों में कई विद्यार्थियों को उन्होंने प्रशिक्षित किया। भाषण मालाओं में उन्होंने विषयगत व्याख्यान भी दिए। वे 'हिंदी विजन' मासिक समाचार पत्र के संपादक भी रहे। कई सम्मानों से वे सम्मानित भी हो चुके हैं।

सुमतीद्रंन जी की शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल काँगड़ी में हुई। आपके तमिल, संस्कृत तथा हिंदी तीनों भाषाओं का सम्यक ज्ञान था। आप एक सफल शिक्षक एवं वक्ता भी थे। आप हिंदी प्रचार सभा द्वारा संचालित राष्ट्रभाषा विशारद, राष्ट्रभाषा प्रवीण महाविद्यालय के आचार्य तथा अमेरिकन कॉलेज, मदुरै में हिंदी प्राध्यापक रहे। आप सशक्त प्रगतिशील के रूप में विख्यात थे। आपके दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। 'एक पल की याद में' शीर्षक से छठे दशक में प्रख्यात काव्य संग्रह की खूब चर्चा रही। आपके शोधपरख लेख एवं कविताएँ हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करते थे।

डॉ.चंद्रकांत मुदलियार को तमिल और हिंदी के भक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन 'विषय पर बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने सन 1965 में पी. एच.डी. की उपाधि प्रदान की। वे हिंदी और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने कई साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में अपने शोधपरख लेख लिखे।

डॉ.एन. वी. राजगोपालन तमिल और हिंदी के प्रकाण्ड विद्वान थे। अंग्रेजी भाषा पर भी उनकी अच्छी पकड़ थी। आप मद्रास के गवर्नमेंट आर्ट्स कॉलेज में हिंदी के प्राध्यापक रहे। 'तमिल और हिंदी के काव्य शास्त्र के तुलनात्मक अध्ययन' पर आगरा विश्वविद्यालय ने सन 1966 में आपको पी.एच.डी उपाधि प्रदान की। उनका यह ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। पूर्णम सोमबुन्दारम मौनवर्ती थे। आप तमिल और हिंदी के विद्वान थे। 'तमिल और उसका साहित्य ग्रंथ' 'सरस्वती सहकार' दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ है। 'अनामिका' काव्यकृति आपकी प्रतिभा को प्रदर्शित करती है।

श्रीमती तुलसी जयरामन लोकप्रिय कवयित्री थीं। 'मैं हूँ हिंदी की बिंदी,' 'प्रतीक्षा', 'सागर की लहरें' आदि कविताएँ कवि सम्मेलनों में विशेष ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। आपकी अनेक कविताएँ हिंदी की शीर्षस्थ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं। आकाशवाणी मद्रास केन्द्र में रोचक हिंदी कार्यक्रमों के द्वारा हिंदी को लोकप्रिय बनाने का श्रेय आपको है। आकाशवाणी मद्रास केन्द्र के बाद मुंबई केन्द्र में हिंदी कार्यक्रमों से आप सम्बद्ध रहीं।

डॉ.रांगेय राघव को तमिल और हिंदी का सम्यक ज्ञान था। वे हिंदी के मूर्धन्य विद्वान एवं प्रतिभाशाली साहित्यकार माने जाते हैं। रागेंय राघव को उनके गुरु 'श्री गोरखनाथ और उनका युग' शोध प्रबंध पर सन 1948 में आगरा विध्वविद्यालय ने पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की। आपकी रचनाएँ प्राय: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित हुआ करती थीं 'कब तक पुकारूँ' आपका उल्लेखनीय ग्रंथ है।

डॉ. शंकरराजु नायडु को तमिल हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं का समानाधिकार था। आपको 'कम्ब.

रामायणम् एवं तुलसी रामायण का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर सन 1959 में मद्रास विश्वविद्यालय से पी. एच. डी. की उपाधि प्रदान की गई। यह ग्रंथ सन 1911 में मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ था। डॉ. शंकरराजु नायडु हिंदी कवि भी थे। उनकी कविताओं का संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। वे मद्रास विश्वविद्यालय में हिंदी विभागाध्यक्ष भी रहे।

डॉ. मलिक मोहम्मद को 'आलवार भक्तों का तमिल प्रबंध और हिंदी के कृष्णा काव्य' शोध प्रबंध पर सन 1964 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय ने पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की। आपको 'वैष्णव भक्ति आंदोलन के अध्ययन' पर सन 1910 में आगरा विश्वविद्यालय ने डी.लिट् की उपाधि प्रदान की। आप तमिल हिंदी मलयालम एवं अंग्रेजी के विद्वान थे। आप कालिकट केरल विश्वविद्यालय में हिंदी विभागाध्यक्ष रहे। साहित्यिक सेवा के लिए आपको उत्तर प्रदेश सरकार राष्ट्रभाषा परिषद तथा तमिल लेखक संघ ने पुरस्कृत एवं सम्मानित भी किया। आप नागरी लिपि परिषद नई दिल्ली के कई वर्षों तक अध्यक्ष भी रहे।

डॉ.के.आर.नंजुण्डरन तमिल और हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठ लेखक माने जाते थे। आपको 'तिरूमूलर और गोरखनाथ' शोध प्रबंध पर सन 1963 में मेरठ विश्वविद्यालय ने पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की।

डॉ. नागलक्ष्मी को सन 1964 में मैथिली शरण गुप्त-और भारती का तुलानात्मक अध्ययन पर मद्रास विश्वविद्यालय ने पीएच.डी की उपाधि प्रदान की।

डॉ.जे.पार्थसारथी को सन 1966 में हिंदी एवं तमिल के वाक्य विन्यास का तुलनात्मक प्रकार पर आगरा विश्वेविद्यालय ने पीएच.डी की उपाधि प्रदान की।

इसी प्रकार डॉ. सुंदरवल्ली को सन 1968 में हिंदी और तमिल के गद्य का विकास पर सागर विश्वविद्यालय ने पीएच. डी. की उपाधि प्रदान की। डॉ. वी.आर. जगन्नाथ को सन 1968 में सूर और पेरियालवार की कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने पीएच.डी की उपाधि प्रदान की। इसी क्रम में डॉ. एस. वसंता 1969 में आधुनिक हिंदी कविता में दुरूहता पर तिरूपति विश्वविद्यालय ने पीएच.डी. उपाधि प्रदान की।

डॉ. सुब्बु लक्ष्मी को सन 1913 में 'तमिल अैर हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना' पर सागर विश्वविद्यालय ने पीएच.डी. उपाधि प्रदान की। डॉ.के.आर.विठ्ठलदास को सन 1919 में 'सूरदास और संत कवि श्रीमान मदन गोपाल नायक स्वामीगल' के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन पर कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय ने पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की।

इसके अतिरिक्त श्रीनिवासाचार्य का 'तमिल के प्राचीन महाकाव्य शैव सिद्धांत की परम्परा' को हिंदी में प्रकाशित किया है। पूर्णम रामचंद्रन का 'तमिल का आधुनिक काव्य साहित्य' का प्रकाशन हिंदी में किया गया है। श्री एस.धर्मराजन का 'तमिल और हिंदी का तुलनात्मक व्याकरण' भी प्रकाशित किया गया है। श्री प.वेंकटकृष्णन जी ने 'वैष्णव संत कवि आलवारों का जीवन साहित्य' आदि तमिल से हिंदी में प्रकाशित किया है।

डॉ. पी.के. बालसुब्रमणियन जी भी तमिल हिंदी के प्रकांड विद्वान हैं। उन्होंने तमिल से हिंदी में कई ऐतिहासिक ग्रंथों एवं भारतीय कविताओं का अनुवाद किया। उन्होंने प्रचार सभा से जुड़े रहकर

तमिल हिंदी के उन्नयन हेतु कई उल्लेखनीय कार्य किए हैं।

हाल ही में डॉ. चित्रा स्वामी अवस्थी जी ने 'हिंदी और तमिल भाषाओं की विश्लेषनात्मक व्याख्या' ग्रंथ प्रकाशित किया है जो कि इस क्षेत्र में सराहनीय कदम है।

डॉ. राजलक्ष्मी कृष्णन जी ने दक्षिण के तट से, 'शम्बुक की हत्या, चिर प्रतीक्षा', 'स्पंदन' आदि कृतियाँ प्रकाशित की हैं। उन्हें हाल ही में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सौहार्द पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। उनके लेख और कविताएँ निरंतर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

डॉ.एम.कलारानी चारक ने तमिल की कई कविताओं को हिंदी में प्रस्तुत किया है। डॉ. जमुना कृष्णराज जी ने तमिल से हिंदी कविताएँ अनूदित की हैं और 'मन्नू भंडारी और शिवशंकरी की कहानियों में स्त्री विमर्श पर' शोध प्रबंध प्रस्तुत किया है।

डॉ.एस.विजया जो कि वर्तमान भारतीय स्टेट बैंक ऑफ इंडिया में सहायक महाप्रबंधक के पद पर कार्यरत हैं उन्होंने 'हरिवंशराय बच्चन और कवि कण्णरदासन का तुलनात्मक अध्ययन' पर शोध प्रबंध प्रस्तुत कर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की और हाल ही में उन्हें प्रचार सभा से डी लिट् की उपाधि प्रदान की गयी है।

डॉ. बालशौरि रेड्डी ने तेलुगु भाषी होते हुए भी हिंदी साहित्य में काफी कुछ लिखा। उनका तमिलनाडु का इतिहास ग्रंथ अति लोकप्रिय है। डॉ. रूक्माह जी राव अमर भी कन्नड़ भाषी होते हुए हिंदी और तमिल साहित्य के लिए आजीवन कार्यरत रहे उनके योगदान को कदापि नहीं भुलाया जा सकता।

डॉ. वासुदेवन 'शेष' जी ने एम.फिल. पी.एच.डी और डी.लिट् की उपाधियाँ प्राप्त कीं। उनके डी लिट् के शोध प्रबंध का विषय हिंदी और तमिल कहानियों के विभिन्न, परिप्रेक्ष्य (1990-2010) था। उनकी 4 लघु कथा संग्रहों का हिंदी से अंग्रेजी, पंजाबी, तमिल में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने तमिल के एन गुरुवर का हिंदी में मेरे गुरुवर के नाम से रूपातंरण प्रस्तुत किया है।

हिंदी साहित्य एवं हिंदी भाषा को लोकप्रिय एवं इसके सवंर्धन की दिशा में डॉ. ए.भवानी अश्विनी कुमार जी ने भी तमिल की लोककथाओं का हिंदी में 'भौंरा और जुगनु' के नाम से किया है। प्रचार सभा में कई वषों तक हिंदी प्राध्यापक रहीं। डॉ.चेल्लसम जी ने हिंदी में पी.एच.डी की उपाधि प्राप्त की है। श्रीमती के सुलोचना जी ने तमिल की कई कहानियों का हिंदी में अनुवाद प्रस्तुत किया है। श्रीमती पार्वती जी ने भी हिंदी से तमिल में कई अनुवाद प्रस्तुत किए हैं और तमिल की कहानियों का हिंदी में अनुवाद कार्य किया है। डॉ. कौशल्या वदरराजन, डॉ. लावण्या, डॉ. संजय रामन के दो गजल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। तमिल भाषी लेखकों ने सक्रियता से हिंदी भाषा और साहित्य में योगदान दिया और दे रहे हैं।

सम्पर्क : मो. 09444170451

ब्रह्मानंद राजपूत

झंडेवाला पार्क के नायक : अमर शहीद गुलाब सिंह लोधी

(87वें बलिदान दिवस 23 अगस्त 2022 पर विशेष)

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास ऐसे वीर वीरांगनाओं की कहानियों से भरा पड़ा है जिनके योगदान को कोई मान्यता नहीं मिली है। ऐसे ही हमारे अमर शहीद गुलाब सिंह लोधी हैं जिनका योगदान भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अग्रणी रहा है। लेकिन दुर्भाग्य यह रहा है कि अमर शहीद गुलाब सिंह लोधी को इतिहासकारों ने पूरी तरह से उपेक्षित रखा है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अनेक वीर वीरांगनाओं ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध खुला विद्रोह किया और स्वतंत्रता की खातिर शहीद हो गये। इन्हीं शहीदों में क्रांतिवीर गुलाब सिंह लोधी का नाम भी शामिल है। जिन्होंने अपने प्राणों की बाजी भारत माँ को आजादी दिलाने के लिए लगा दी। उनका जन्म एक किसान परिवार में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के ग्राम चन्दीकाखेड़ा (फतेहपुर चौरासी) के लोधी परिवार में सन् 1903 में श्रीराम रतनसिंह लोधी के यहाँ हुआ था।

लखनऊ के अमीनाबाद पार्क में झण्डा सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेने उन्नाव जिले के कई सत्याग्रही जत्थे गये थे, परन्तु सिपाहियों ने उन्हें खदेड़ दिया और ये जत्थे तिरंगा झंडा फहराने में कामयाब नहीं हो सके। इन्हीं सत्याग्रही जत्थों में शामिल वीर गुलाब सिंह लोधी किसी तरह फौजी सिपाहियों की टुकड़ियों के घेरे की नजर से बचकर आमीनाबाद पार्क में घुस गये और चुपचाप वहाँ खड़े एक पेड़ पर चढ़ने में सफल हो गये। क्रांतिवीर गुलाब सिंह लोधी के हाथ में डंडा जैसा बैलों को हाँकने वाला पैना था। उसी पैना में तिरंगा झंडा लगा लिया, जिसे उन्होंने अपने कपड़ों में छिपाकर रख लिया था। क्रांतिवीर गुलाब सिंह ने तिरंगा फहराया और जोर-जोर से नारे लगाने लगे- तिरंगे झंडे की जय, महात्मा गाँधी की जय, भारत माता की जय। अमीनाबाद पार्क के अंदर तिरंगे झंडे को फहरते देखकर पार्क के चारों ओर एकत्र हजारों लोग एक साथ गरज उठे तिरंगे झंडे की जय, महात्मा गाँधी की जय, भारत माता की जय।

झंडा सत्याग्रह आंदोलन के दौरान देश की हर गली और गाँव शहर में सत्याग्रहियों के जत्थे आजादी का अलख जगाते हुए घूम रहे थे। झंडा गीत गाकर, झंडा ऊँचा रहे हमारा, विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, इसकी शान न जाने पावे, चाहे जान भले ही जाये, देश के कोटि-कोटि लोग तिरंगे झंडे की शान की रक्षा और अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए दीवाने हो उठे थे।

समय का चक्र देखिए कि क्रांतिवीर गुलाब सिंह लोधी के झंडा फहराते ही सिपाहियों की आँख फिरी और अंग्रेजी साहब का हुकुम हुआ, गोली चलाओ, कई बन्दूकें एक साथ ऊपर उठीं और धाँय-धाँय कर फायर होने लगे, गोलियाँ क्रांतिवीर सत्याग्रही गुलाबसिंह लोधी को जा लगीं। वे घायल होकर पेड़ से जमीन पर गिर पड़े। रक्त रंजित धरती पर ऐसे पड़े थे, मानो वह भारत माता की गोद में सो गये हों। इस प्रकार वह आजादी की बलिवेदी पर अपने प्राणों को न्यौछावर कर 23 अगस्त 1935 को शहीद हो गये।

क्रांतिवीर गुलाबसिंह लोधी के तिरंगा फहराने की इस क्रांतिकारी घटना के बाद ही अमीनाबाद पार्क को लोग झंडे वाला पार्क के नाम से पुकारने लगे। वह आजादी के आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय नेताओं की सभाओं का प्रमुख केन्द्र बन गया, जो आज शहीद गुलाब सिंह लोधी के बलिदान के स्मारक के रूप में हमारे सामने है। मानो वह आजादी के आंदोलन की रोमांचकारी कहानी कह रहा है। क्रांतिवीर गुलाब सिंह लोधी ने जिस प्रकार अदम्य साहस का परिचय दिया और अंग्रेज सिपाहियों की आँख में धूल झोंककर बड़ी चतुराई तथा दूरदर्शिता के साथ अपने लक्ष्य को प्राप्त किया, ऐसे उदाहरण इतिहास में विरले ही मिलते हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय अग्रणी भूमिका निभाने के लिए उनकी याद में केंद्र सरकार द्वारा जनपद उन्नाव में 23 दिसंबर 2013 को डाक टिकट जारी किया गया।

एक सच्चा वीर ही देश और तिरंगे के लिये अपने प्राण न्यौछावर कर सकता है। ऐसे ही अमर शहीद गुलाब सिंह लोधी एक सच्चे वीर थे जिन्होंने अपने देश और तिरंगे की खातिर अपना बलिदान दे दिया और तिरंगे को झुकने नहीं दिया। अमर शहीद गुलाब सिंह लोधी का बलिदान देशवासियों को देशभक्ति और परमार्थ के लिये जीने की प्रेरणा देता रहेगा। आज हम वीर शहीद गुलाब सिंह लोधी को उनके बलिदान पर नमन करते हुए यही कह सकते हैं कि-

'शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर वर्ष मेले।
वतन पर मरने वालों का यह बाकी निशाँ होगा।'

सम्पर्क : ब्रह्मानंद राजपूत, आगरा (उ.प्र.)
मो. 08864840607

अनिल श्रीवास्तव 'अयान'

राष्ट्र-मुखरित-स्वर वाहक : दिनकर

रामधारी सिंह दिनकर की रश्मिरथी को शायद ही कोई भूल पाएगा। साहित्य की मशाल को जलाए रखने का साहस है दिनकर। राष्ट्र के प्रधानमंत्री को कविता से ललकारने का जोखिम है दिनकर। किसी भी इंसान में जोश और राष्ट्रीयता का भाव जगा देने वाली कालजयी कविताएँ लिखने वाले रामधारी सिंह दिनकर अमर ही रहे। उनकी कविताएँ, किस्सों और किताबों ने हर पीढ़ी को एक साथ जोड़ा। आज भी युवा आपको रश्मिरथी और कुरुक्षेत्र का पाठ करते हुए दिख जाएँगे। कितने ही रंगमंच इन रचनाओं के आधीन आज भी हैं।

रामधारी सिंह दिनकर एक कवि होने के साथ-साथ संसद के सदस्य भी रहे थे। करीब 12 साल तक वे राज्यसभा के सदस्य रहे। कांग्रेस ने उन्हें राज्यसभा भेजा था। और इसी कारण से वे भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के काफी करीबी थे। रामधारी सिंह दिनकर तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के बड़े प्रशंसक थे और अक्सर दोनों के किस्सों का जिक्र होता रहता है। दिनकर ने अपने कई संबोधनों, किताबों में जिक्र किया है कि जवाहर लाल नेहरू जैसा नेता भारत में कभी नहीं हुआ। जवाहर लाल नेहरू लोकप्रिय थे, करिश्माई थे, दूरदर्शी थे। यही कारण था कि रामधारी सिंह दिनकर ने जवाहर लाल नेहरू की तारीफ में एक किताब भी लिखी थी, जिसका नाम था लोकदेव नेहरू। इसी किताब में उन्होंने लिखा है, 'मैं पंडित जी का भक्त था' लेकिन इन सबके बावजूद एक बार रामधारी सिंह दिनकर ने जवाहर लाल नेहरू के खिलाफ जमकर कविता पाठ किया और हर चीज का दोषी बता दिया।

रामधारी सिंह दिनकर स्वभाव से सौम्य और मृदुभाषी थे, लेकिन जब बात देश के हित-अहित की आती थी तो वह बेबाक टिप्पणी करने से कतराते नहीं थे। उन्होंने ये तीन पंक्तियाँ पंडित जवाहरलाल नेहरू के खिलाफ संसद में सुनाई थीं, जिससे देश में भूचाल मच गया था। देखने में देवता सदृश्य लगता है/बंद कमरे में बैठकर गलत हुक्म लिखता है। /जिस पापी को गुण नहीं गोत्र प्यारा हो/ समझो उसी ने हमें मारा है॥ दिलचस्प बात यह है कि राज्यसभा सदस्य के तौर पर दिनकर का चुनाव पंडित नेहरू ने ही किया था, इसके बावजूद नेहरू की नीतियों की विरोध करने से वे नहीं चूके।

1962 में चीन से हार के बाद संसद में दिनकर ने इस कविता का पाठ किया जिससे तत्कालीन

प्रधानमंत्री नेहरू का सिर झुक गया था। यह घटना आज भी भारतीय राजनीती के इतिहास की चुनिंदा क्रांतिकारी घटनाओं में से एक है।

'रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ जाने दे उनको स्वर्गधीर।
फिरा दे हमें गांडीव गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर॥'

इसी प्रकार एक बार तो उन्होंने भरी राज्यसभा में नेहरू की ओर इशारा करते हए कहा-

'क्या आपने हिंदी को राष्ट्रभाषा इसलिए बनाया है, ताकि सोलह करोड़ हिंदीभाषियों को रोज अपशब्द सुनाए जा सकें?'

यह सुनकर नेहरू सहित सभा में बैठे सभी लोग सन्न रह गए थे। किस्सा 20 जून 1962 का है। उस दिन दिनकर राज्यसभा में खड़े हुए और हिंदी के अपमान को लेकर बहुत सख्त स्वर में बोले। उन्होंने कहा-'देश में जब भी हिंदी को लेकर कोई बात होती है, तो देश के नेतागण ही नहीं बल्कि कथित बुद्धिजीवी भी हिंदी वालों को अपशब्द कहे बिना आगे नहीं बढ़ते। पता नहीं इस परिपाटी का आरम्भ किसने किया है, लेकिन मेरा ख्याल है कि इस परिपाटी को प्रेरणा प्रधानमंत्री से मिली है। पता नहीं, तेरह भाषाओं की क्या किस्मत है कि प्रधानमंत्री ने उनके बारे में कभी कुछ नहीं कहा, किन्तु हिंदी के बारे में उन्होंने आज तक कोई अच्छी बात नहीं कही। मैं और मेरा देश पूछना चाहते हैं कि क्या आपने हिंदी को राष्ट्रभाषा इसलिए बनाया था ताकि सोलह करोड़ हिंदीभाषियों को रोज अपशब्द सुनाएँ? क्या आपको पता भी है कि इसका दुष्परिणाम कितना भयावह होगा?'

यह सुनकर पूरी सभा सन्न रह गई। ठसाठस भरी सभा में भी गहरा सन्नाटा छा गया। यह मुर्दा-चुप्पी तोड़ते हुए दिनकर ने फिर कहा- 'मैं इस सभा और खासकर प्रधानमंत्री नेहरू से कहना चाहता हूँ कि हिंदी की निंदा करना बंद किया जाए। हिंदी की निंदा से इस देश की आत्मा को गहरी चोट पहुँचती है।' दिनकर जी पर प्रसिद्ध साहित्यकारों के विभिन्न मत रहे जिसमें आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था 'दिनकर जी अहिंदीभाषियों के बीच हिन्दी के सभी कवियों में सबसे ज्यादा लोकप्रिय थे और अपनी मातृभाषा से प्रेम करने वालों के प्रतीक थे।'

हरिवंश राय बच्चन ने कहा था 'दिनकर जी को एक नहीं, बल्कि गद्य, पद्य, भाषा और हिन्दी-सेवा के लिये अलग-अलग चार ज्ञानपीठ पुरस्कार दिये जाने चाहिये।'

रामवृक्ष बेनीपुरी ने कहा था 'दिनकर जी ने देश में क्रान्तिकारी आंदोलन को स्वर दिया।' नामवर सिंह ने कहा है- 'दिनकर जी अपने युग के सचमुच सूर्य थे।' और तो और संपादक और कथाकार प्रसिद्ध साहित्यकार राजेन्द्र यादव ने कहा था कि दिनकर जी की रचनाओं ने उन्हें बहुत प्रेरित किया। प्रसिद्ध रचनाकार काशीनाथ सिंह के अनुसार 'दिनकर जी' राष्ट्रवादी और साम्राज्य-विरोधी कवि थे।

दिनकर जी का जीवन वैचारिक आंदोलन की प्रतिबद्धता है। दिनकर जी की लेखनी और रचना प्रक्रिया कांग्रेसियत और नेहरू जी के पास से गुजरता हुआ राष्ट्रीय विचारधारा और चेतना का पोषण बनता है। दिनकर की कृतियाँ और रचनाएँ पौराणिक चरित्र और ऐतिहासिक पात्रों के महत्त्व का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

सम्पर्क : सतना मध्य प्रदेश
मो. 9479411407

प्रभु त्रिवेदी

गीत पुरोधा : चंद्रसेन विराट

सामान्य वाक् जहाँ विवश हो जाता है, शब्द निरवंशी हो जाते हैं, मौन सत्तासीन हो जाता है, वहाँ कविता जन्म लेती है। ऐसी कविताएँ जीवन की अनुभूतियों और अनुभवों का समुच्चय होती हैं। इस समुच्चय को आप कार्तिक की धूप और भादों का पानी दोनों कह सकते हैं। जो मन की जली हुई धरती पर बरस कर चिंतन की नई फसलें उगाते हैं। जिससे कृतियों के अनुपम पुष्प झरते हैं, जो जीवन की उदासी को सुखद संभावनाओं के तिलक लगाते हैं। इनमें गीत, साहित्य की आदि विधा और भारतीय काव्य की आत्मा है। गीत मनुष्य का नैसर्गिक आवास है। हृदय का स्निग्धतम नवनीत है। काव्य-रचना की कसौटी है। गुलाब की पाँखुरी के मंच पर बैठी सुगंध का मौन स्पर्श है। आस्थाओं के सुकोमल पाँवों पर लगाया गया प्रतीक्षा का महावर है। रेगिस्तान के प्यासे होठों पर उतरती हुई शीतल तरंग की उमंग है। गीत सौंदर्य के घाट पर अंजुरी-अंजुरी जल पी रहा होता है, जो न कभी रीतता है, न कभी बीतता है। गीत हमारी संवेदना का सत्य है, जिसे हम और हमारे घर-आँगन, तीज-त्योहार शताब्दियों से जी रहे हैं।

श्रद्धेय विराट जी ने विगत छः दशकों तक हिंदी जगत में अपनी उपस्थिति बनाए रखी। वे सृजन के माध्यम से लिखित साहित्य में बने रहे और मंचों पर भी छाए रहे। एक सशक्त व समर्थ गीतकार के रूप में उन्हें कौन नहीं जानता? यों तो गजल को उन्होंने हिंदी की तत्सम शब्दावली से संस्कारित किया, मुक्तकों में उनका माधुर्य उन्मुक्त होकर पराग की तरह बिखरा, दोहे की दौड़ में भी सम्मिलित होकर दुहते रहे। लेकिन मूल पहचान नीरज की तरह गीतकार की ही रही। भाषा, छंद और वर्तनी के प्रति एक सतर्क व सन्नद्ध रचनाकार के रूप में वे लोकप्रियता प्राप्त करते रहे। ईश्वर ने उन्हें कण्ठ का माधुर्य दिया और भावाभिव्यक्ति की अनोखी समझ दी, जिसे उन्होंने हिंदी साहित्य को सौंपा।

कथ्य की दृष्टि से देखा जाए, तो संयोग-वियोग, ओज-ऊर्जा, सामाजिक-समरसता, राष्ट्रीय-चेतना और पारम्परिक नीति-रीति आदि उनके सृजन के विषय रहे हैं। भारतीय सांस्कृतिक चेतना, बौद्धिक-परम्परा और तीज-त्योहार को उन्होंने गेयता प्रदान की। भूख-गरीबी, दर्द-दैन्य, अभाव-अत्याचार को भी अंतर्मन से उकेरा। जल, अग्नि, सूर्य, चंद्र, दीप, वृक्ष, परिवार, समाज व राष्ट्र उनके प्रतीक रहे। जैसाकि प्रायः हर रचनाकार पर पूर्ववर्ती रचनाकारों का प्रभाव होता है, वैसा ही उनके साथ भी हुआ। भक्तिकालीन कवि और छायावादी कवियों को अनेक रचनाओं में उन्होंने स्थान दिया। मानस और महाभारत के अनेक

संदर्भों को उन्होंने रचना-कर्म का आधार बनाया। उनके (हिंदी गजल) लेखन पर अँगुलियाँ भी उठीं और तालियाँ भी बजीं। उन्होंने नए प्रयोग किए। वे किसी वाद और विवाद में नहीं पड़ते थे। अपना पथ स्वयं निर्धारित करते। आरोपों को वे सुधार के रूप में लेते और सवालों के जवाबों में उनकी रचनाएँ ही होतीं। कवि-कर्म और कवि-धर्म को वे भरपूर जिए। हिंदी साहित्य में उन्हें राग का कवि माना गया। लेकिन वे ओज के कवि भी रहे। वे बुद्धि और भाव दोनों कद्म अलग-अलग करते और प्रधानता भाव को ही देते।

छंद का विद्यार्थी होने के नाते मैं उनसे सर्वाधिक प्रभावित रहा। विगत पच्चीस-तीस वर्षों के साहचर्य, संसर्ग और सम्पर्क ने मुझे उनके अधिक निकट ला दिया। पत्रों के माध्यम से, दूरभाष पर चर्चा के माध्यम से तथा श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति की बैठकों के माध्यम से मेरा कवि-मन उनकी विचारशीलता को ग्रहण करता रहा। मैं उन्हें सुनता, खूब सुनता और मन से सुनता, क्योंकि वे श्रवण के योग्य ही रहे। उन्होंने अपने निवास स्थान का नाम भी 'समय' रखा। 1977 में उनका सातवाँ गीत संग्रह 'दर्द कैसे चुप रहे' में वे कहते हैं :-

जब तक साँस निबाहूँगा ही,/वरना वापस कर डालूँगा।
वह दीपक हूँ बुझ जाऊँगा,/किंतु स्नेह की भीख न लूँगा।।

मूल रूप से मराठी परिवार से और पेशे से इंजीनियर। लेकिन न मराठीपन और न अंग्रेजी की धौंस। स्वभाव से कवि। भाषा ऐसी कि कभी पंत याद आयें, कभी निराला। वयानुसार मुझसे गरीब एक पीढ़ी का अंतर लेकिन कंधे पर हाथ रखकर जब प्रभु जी कहते, तो मुझे बड़ा संकोच होता। वे पास बैठाकर हमेशा कहते 'छंद मत छोड़ना'। आप जैसे दो-चार ही हैं लिखने वाले।' और मेरा हृदय गद्द हो जाता। 'बूँद-बूँद पारा' गीत संग्रह (1996) में उन्होंने अपना दर्द कुछ यूँ व्यक्त किया :-

मेरा जीवन बिखर गया ज्यों बूँद-बूँद पारा।
सारा का सारा।।

प्राय: उन्हें राग-अनुराग का कवि माना गया, मगर 'मिट्टी मेरे देश की' (1976) और 'ओ! गीत के गरुड़' (2012) जैसे गीत संग्रहों ने यह सिद्ध किया कि उनके रचना-संसार में राष्ट्रीयता के स्वर भी समय-समय पर उभरे हैं। वे कहते हैं:-

शेष अभी तो बहुत सृजन है, थकन भुलाओ मेरे देश।
अभी कहाँ मंजिल के दर्शन, कदम बढ़ाओ मेरे देश।।

विराट जी की विनम्रता और स्पष्टवादिता सर्वविदित है। वे सहजता से अपनी बात प्रतीकात्मक रूप से कह देते थे। उन्होंने एक बार चर्चा में कहा :-

चंदन घिसते ही रहे, हम कविता के घाट।
बौने हैं हर दृष्टि से, केवल नाम विराट।।

साहित्यकारों के सम्मान और मूल्यांकन के सम्बन्ध में उनकी पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान करता एक दोहा पढ़ियेगा :-

जीते जी यदि यश मिले, तो है उसका अर्थ।
बाद मरण के प्राप्त यदि, सभी प्राप्तियाँ व्यर्थ।।

वे सदैव पत्र लिखते और खूब लिखते। उनके हार्ड बेस्ड पेंसिल के पत्र भी मेरे पास सुरक्षित हैं। हमेशा प्रिय भाई से सम्बोधन करते। अब पत्र-लेखन विधा प्रायः लुप्तप्राय है। मैंने 'विराट और मैं' कृति में ऐसे अनेक संस्मरणों को लिखा है और उनके हस्तलिखित पत्र भी प्रकाशित किये हैं। मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी, भोपाल, मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति परिषद् ने विराट जी की स्मृति में 'गीत पर्व' कार्यक्रम आयोजित कर एक शब्द-साधक को सच्ची श्रद्धांजलि देकर पुनीत कार्य किया है। उन्होंने स्वयं 'चुटकी-चुटकी' दोहा संग्रह में कहा है-

सरि-तट के हम पेड़ हैं, देखें निज तस्वीर।
किसी बरस की बाढ़ में, ले जायेगा नीर।।

मैं भी उन्हें निम्न दोहों के माध्यम से स्मृति में बनाये रखता हूँ :-

काव्य-कलश में भर दिया, ऐसा मधुरिम स्वाद।
युगों-युगों तक पीढ़ियाँ, ...जिसे करेंगी याद।।

कौशल का कवि कर्म से, हुआ विलोपित तथ्य।
परिनिष्ठित भाषा गई, गया परिष्कृत कथ्य।।

काव्य जगत नीरस लगे, मौन हुआ माधुर्य।
लुप्त हुआ ब्रह्माण्ड में, प्रखर बुद्धि चातुर्य।।

खोजे से मिलता नहीं, अब विराट समतुल्य।
पीढ़ी-दर-पीढ़ी घटे, शनैः-शनैः बाहुल्य।।

अगर सीखना वर्तनी, विरल शब्द-विन्यास।
कवि विराट के काव्य में, रख पूरा विश्वास।।

भरा अर्थ गाम्भीर्य है, क्या उपमा क्या श्लेष।
शब्द-सुमन अर्पित करूँ, कविवर तुम्हें विशेष।।

सम्पर्क : 'प्रणम्य', 111, राम रहीम कॉलोनी, राऊ, इंदौर, म.प्र.
मो. : 9425076996

डॉ. सभापति मिश्र

दादू पंथ और संत रज्जब

सम्पूर्ण भक्ति साहित्य की चेतना सदैव ऊर्ध्वमुखी रही है। भक्ति साहित्य युगीन महान आशाओं आकांक्षाओं को दृष्टि में रखते हुए रचित है। समकालीन युग की परिस्थितियाँ बड़ी भयावह थीं। अनेक प्रकार की सामाजिक जटिलताओं, विद्रूपों एवं दबावों के बीच निर्माण की पृष्ठभूमि तैयार की। इससे समस्त भारतीय समाज श्रद्धा भक्ति एवं सक्रियता से जुड़ा। भक्ति ने विविध प्रकार की जड़ताओं पर प्रहार किया। समाज विरोधी सभी कारणों की खबर ली। यह भक्ति चेतना राष्ट्र व्यापी थी। लगभग चार शताब्दियों तक सम्पूर्ण भारत में एक ही चेतना प्रवाहित एवं प्रतिफलित हो रही थी। उसमें सबने अवगाहन करके अपने जीवन की धन्यता का अनुभव किया। यद्यपि उपासना के धरातल पर भक्ति के अनेक रूप और उनके आराध्य भी अलग-अलग थे। पूजा द्रव्यों एवं पूजन उपचारों में भी विविधता थी। इन सबके बीच इनमें दमित, पीड़ित एवं उपेक्षित मानवीय चेतना को सुषुप्ति से जगाकर समत्व की भावभूमि पर अवस्थापित करने की मूल चेतना विद्यमान रही। इस कार्य को भारतीय समाज ने अनेक विसंगतियों के बावजूद भी स्वीकार किया।

भक्ति साहित्य को एक बड़े आन्दोलन के रूप में हिन्दी साहित्य में स्थापित किया गया। इस आन्दोलन को सभी जातियों, वर्णों एवं संप्रदायों ने गति दी तथा इसे दृढ़ किया। इस चेतना की महत्त्वपूर्ण कड़ी दादूपंथ है। दादूपंथ ने विशेष रूप से गुजरात, राजस्थान तथा पंजाब को अपनी व्याप्ति के भीतर, समाहित किया। इन प्रान्तों से बहुत बड़ी संख्या में संत दादूपंथ के साथ जुड़े। दादूदयाल ने अपने पंथ को निर्गुण भक्ति चेतना के तात्विक धरातल पर स्थापित किया। उनके जीवन में ही इस पंथ को सामान्य जन से लेकर राजघरानों तक उनके अनुयायी बने। उनकी सदाशयता दयालुता, निष्कपटता तथा प्रपंचरहित जीवन शैली ने समाज में उन्हें आकर्षण का केन्द्र बनाया। उनके अनुयायियों में हिन्दुओं के सभी जाति वर्गों के साथ बड़ी संख्या में मुसलमान संत भी हैं।

दादूपंथी संतों में एक बहुत बड़ी संख्या पढ़े-लिखे संतों की थी। प्राय: निर्गुण संतों की कोई औपचारिक शिक्षा नहीं हुई थी। लेकिन ऐसी बात दादूपंथियों के साथ नहीं है। जगजीवनदास जैसे शास्त्रार्थी, सुंदरदास जैसे प्रकांड शास्त्र पंडित और साधु निश्चलदास जैसे दार्शनिक दादूपंथी ही थे। संत साहित्य के संरक्षण और संवर्द्धन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य दादूपंथियों ने किया इन लोगों ने

अपने गुरु की वाणियों को संरक्षित तो किया ही, पूर्ववर्ती तमाम संतों की वाणियों का संरक्षण भी किया। ऐसे संतों में रज्जब का नाम महत्त्वपूर्ण है। संतों की रचनाओं का संग्रह करते समय इन्होंने सगुण-निर्गुण का भेद नहीं किया। 137 संतों की रचनाओं का संकलन रज्जब ने सर्वंगी में किया है। सर्वंगी न होती तो मध्यकाल के बहुतायत कवि काल के गाल में चले गये होते। रज्जब ने अल्पख्याति प्राप्त बड़े कवियों को अपने संग्रह में स्थान दिया। रज्जब स्वयं एक बड़े कवि थे। उनकी रचनाएँ रज्जबवाणी में संकलित हैं।

दादूपंथ की प्रमुख धारा विद्वान रचनाकार शिष्यों की हैं। उनके प्रतिनिधि रज्जब हैं। रज्जब दादूपंथ के आदर्शों का वहन तो करते ही हैं, निर्गुण पंथ के विचारों का आचरण और लेखन दोनों ही दृष्टियों से परिष्कार करते हैं। रज्जब नाम जप की महिमा का बखान और वेश का विरोध साथ-साथ करते हैं। वे वेश बनाने को भारी आडम्बर मानते थे। वे जानते थे कि तरह-तरह के विषधारियों के कारण समाज बँटा हुआ है। नाम स्मरण के साथ बाह्य आवरण की अनिवार्यता समाप्त हो जाती है। इसलिए नामजप को वे सबसे बड़ी भक्ति मानते थे। वे नाम जप भी सगुण साकार का नहीं, निर्गुण का करते थे। सगुण के साथ भ्रम और वेश है। वेश है तो संप्रदाय और साम्प्रदायिक झगड़े हैं। वेश भ्रम निर्मित करता है-

संतो! भेष भरम कछु नाँहिं।
छः दरसन छयानवें पाखंड भूले प्रपंच माँहिं।।
स्वांग सलिल संपूरन दीसै मृगतृष्णा मन धावै।
नाम नीर ता में कछु नाँहिं दौड़ि-दौड़ि दुख पावै।।

मनुष्य जिस रूप में पैदा हुआ है, वही रूप सच्चा है। बाद में किया जाने वाला परिवर्तन झूठा है। इसीलिए रज्जब एक ओर जहाँ सुन्नत को झूठ कहते हैं, वहीं दूसरी ओर जनेऊ को भी मिथ्या बताते हैं। वे मुद्रा और सिंगी को भी झूठा ही कहते हैं-

सुन्नत झूठ जु बाहर काटी कपट अनेऊ हाथैं बाँटी।
मन मुख मुद्रा मिथ्या सींगी, भरम भगौहा धरिंगा धींगी।।

नाम जप के समक्ष रज्जब अन्य प्रकार की भक्ति को महत्त्व नहीं देते हैं। ये उन समस्त लोगों को मूर्ख मानते हैं जो अन्न छोड़कर फलाहार और दूधाहार पर जीवन यापन करते हैं। ये उनको भी मूर्ख कहते हैं जो काशी करवत लेते हैं, हिमालय में तपस्या करके अपने को गला देते हैं तथा पंचाग्नि ताप तापकर जलते रहते हैं। अनेक प्रकार का बाल धर्माचरण 'हरि सुमिरन' के बिना निरर्थक है। इसलिए रज्जब कहते हैं कि चतुर संत अनवरत 'राम' मंत्र का जप करता रहता है-

नाम बिना नाहीं निस्तारा और सवै पाखंड पसारा।
भरम मेष तीरथ व्रत आशा दान पुन्य सब गल के पाश...।।

रज्जब जिस राम के जप की बात करते हैं, वह निर्गुण राम हैं। वह जन्म-मरण से परे हैं। निर्गुण राम सगुण की तरह कर्म नहीं करता। सगुण को दास मानते हैं। वे कहते हैं कि सगुण का लय हो जाता है इसलिए वे निर्गुण की उपासना करते हैं-

निर्गुण राम न आवै जाई सह गुण फिर फिर कर्म कमाई।
निर्गुण राम न जामे मर ही, सहगुण संकट जो तन धरही।।

निर्गुण राम अवतरे नाँहिं, सहगुण जीव फिरै जग माँहिं।
निर्गुण स्वामी सहगुण दासा, साधु संत कहै गुण तासा।।
सहगुण रूप विलय हवै जाई, जन रज्जब, निर्गुण दिशि धाई।

दादू पंथ में हवादाग का विधान है। बाद में यह परम्परा नहीं चली। साधुओं का अग्नि दाह किया जाने लगा। रज्जब का हवादाग के पीछे तर्क है कि इससे हम निर्पक्ष रहते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों को मुर्दे को जलाने और गाड़ने को लेकर भी अहंकार का भाव है। मंदिर जाने पर मस्जिद वाले जलते हैं, मस्जिद जाने पर मंदिर वाले विरोध करते हैं, इसलिए वे दोनों का परित्याग करते हैं। माल और हसबी किसी को भी गले में धारण नहीं करते हैं। व्रत और रोजा दोनों का परित्याग करके रज्जब खुशी की अनुभूति करते हैं। वे इस प्रकार अपने को बंधन से मुक्ति का अनुभव करते हैं। कबीर की भाँति रज्जब भी एक तीसरे स्थान की तलाश कर रहे थे जो हिन्दू और मुसलामन के झंझट से परे हों। प्रभु स्मरण और भगवत प्राप्ति के लिए दोनों धर्मों के कर्मकाण्डों से जुड़ने को वे अनावश्यक मानते थे। बाह्य पूजा द्रव्यों की निरर्थकता से वे भलीभाँति परिचित हो गये थे। रज्जब किसी को भी दु:खी करना नहीं चाहते थे-

यूँ निर्पख मन भया हमारा, इन दोनों का देख पसारा।
माला पहरयों तसबी लागै, यासी हूँ कछु नाँहिं।।
ऐसे समझ तजे सब बंधन, क्या पहरै गल माँहिं।
वरत किया रोजे रिस मानें, इन में कहा बड़ाई।

रज्जब दादू के अनन्य भक्त होने के साथ-साथ बहु पठित और बहुश्रुत थे। उनके ज्ञान और भक्ति की प्रशंसा वर्तमान हिन्दी भाषी प्रदेशों में दूर-दूर तक होने लगी थी। उनकी साधना से प्रभावित होकर शिष्यत्व ग्रहण करने के लिए संत दूर-दर से उनके पास आने लगे। रज्जब ने साधुओं की योग्यता और संस्कारों को परखकर बहुत से शिष्य बनाये। राघवदास ने अपने भक्तमाल में इनके शिष्यों का परिचय दिया है-

रज्जब उज्जब महन्त के, भले पछोपे साधु सब।
दीरध गोविन्ददास, पाट अब रामट, राजै।
खेम सरस सखड़ि, तासु शिव तहाँ विराजै।।
हरीदास छीतर, जेगन, दामोदर कैसो...।
कल्याण दो बनवारि, मोहन रत गह वैसो।।
जन राघव मंगल रात दिन, दीसत दैदै कार अब।
रज्जब अज्जब महन्त के, भले पछोपे साधु सब।।

इस छप्पय में रज्जब के बारह शिष्यों के नाम आये हैं-बड़े गोविन्ददास, खेमदास, छीतर, जगन, दामोदर, केशव, कल्याणदास (बड़े), कल्याणदास (छोटे) बनवारी और मोहन। इनके अतिरिक्त भी रज्जब के अनेक शिष्यों के नाम मिलते हैं। इनके शिष्यों के नाम पर कई स्थान हैं। इनके मठ भी बने। रज्जब के नाम पर एक संप्रदाय भी खड़ा हुआ जिन्हें रजबावत सम्प्रदाय कहते हैं। रज्जब की परम्परा के प्रमुख स्थान है- 1. सांगानेर, 2. टूंटोली, 3. डिग्गी, 4. रतलाम, (बहुत बड़ा स्थान है) 5. लवान पाटन, 6.

बाँस को, 7. डोडवाड़ी (जिला-टोंक), 8. भादवा, 9. चौसला, 10. कोंणी, 11.लोराणा, 12. जोधपुर, 13. सरवाड़ 14. सुरसुरा, 15. बड़गाँव, 16. राधा किशनपुरा 17. व्यासों की ढांणी की सीमा में चार स्थान हैं 18. लवाँण पाटन 19. सोड़ा, 20. गोगा मेड़ी, 21. हरमाड़ा, 22.लोंहड़ी, 23. नया मोजा, 24. निवाई हैं।

रज्जब के शिष्य भी रचनाकार थे। इनके शिष्यों ने संतों की वाणियों को लिख लिखकर संत साहित्य को सुरक्षित रखने में महान योगदान किया। रज्जब के कवि शिष्यों में मोहनदास थे। इन्होंने रज्जब के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालने वाले अनेक छंदों की रचना की है। मोहनदास ने अपने गुरु के प्रति आदर भाव अर्पित किये हैं। यद्यपि ये छन्द गुरु भक्ति से प्रेरित होकर लिखे गये हैं। किन्तु इनमें रज्जब के व्यक्तित्व का यथार्थ मूल्यांकन भी प्रस्तुत हुआ है। एक छप्पय अधोलिखित है-

दादूदयाल बधती प्रकट, जन रज्जब पारस परस।
दरश सकल दुख हरन, करन मंगल हरि रंजन।
परम धरम परवान, आन मारग सब भंजन।।
करुणा सिन्धु कृतज्ञ, अखिल संपद बिसतारन।
मन संकल्प विकल्प, जलपि दुख द्वन्द्व निवारन।।
निर्लेप निरंजन गुण मगन मोहन अघ नाशन दरस।
दादू दयाल बधती प्रकट, जन रज्जब पारस परस।।

इस प्रकार के अनेक पद रज्जब को प्रशंसा में उनके शिष्यों-प्रशिष्यों द्वारा लिखे गये हैं। ये छंद रज्जब वाणी में संग्रहीत हैं। दादूपंथ परिचय में भी इन छन्दों को रज्जब के प्रसंग में उल्लिखित किया गया है।

रज्जब के शिष्यों ने उन्हें हनुमान, हरिशचन्द्र, विक्रमादित्य, शिव, गोरखनाथ, शुकदेव, शुक्राचार्य, दत्तात्रेय, नारद आदि कहकर प्रशंसा की है। इन प्रशंसाओं से इनके प्रति शिष्यों की भक्ति का तो पता चलता ही है, रज्जब के प्रभाव का भी पता चलता है।

भक्ति आन्दोलन की लिखित और मौखिक दोनों परम्पराओं के संवाहक संत रज्जब हैं। ये आँखिन देखी भी कहते हैं, कागदलेखी भी। रज्जब की साधना और समर्पण का परिणाम है कि आज संत साहित्य का सुन्दरतम हिस्सा अक्षुण्ण है। रज्जब का कवि पक्ष जितना सबल है उससे कम उनका सम्पादक पक्ष नहीं है। साहित्य के सम्पादन की दिशा में उन्होंने सर्वथा नूतन पद्धति को सुझाया और उसे अपनाया। उनकी पद्धति जाने वाले संत सम्पादकों के लिए मार्गदर्शक बनी।

रज्जब दादू के प्रत्यक्ष शिष्य थे। उनके समय में दादूपंथ का कोई व्यवस्थित स्वरूप नहीं उभरा था। दादू से प्रभावित होकर उनके शिष्यों की विशाल शृंखला अवश्य खड़ी हुई थी। रज्जब के भी अनेक शिष्य बन गये थे।

दादू कबीर से अत्यधिक प्रभावित थे। उन्होंने कबीर के मार्ग को ही अपना मार्ग बतलाया है। अतएव कबीर के विचारों का दादू और उनके शिष्य रज्जब पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। रज्जब के जीव, बह्म, माया सम्बन्धी विचारों पर कबीर का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

रज्जब भी दादू की भाँति निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते हैं। वह ब्रह्म अवतारी नहीं है तथा सृष्टि के

कण-गण में व्याप्त है। उसका बिंब चारों तरफ प्रतिबिंबित होता है। वह किसी प्रकार के भार या क्लेश का अनुभव नहीं करता। वैसे ही जैसे दर्पण में सारे अंग प्रतिबिम्बित होते हैं लेकिन दर्पण को किसी भार की अनुभूति नहीं होती-

दर्पण में दीसै सब दशा, ताकूँ भार नाँहिं दुख लेशा।

यूँ गुण रहित स अंतरजामी, ता माहै खेलें सब कामी।।

संत रज्जब कहते हैं कि अवतार को मानने से बहुत सी समस्या खड़ी होती है। अवतारों को लेकर कोई मतैक्य नहीं है। कोई दस अवतार की बात करता है तो कोई चौबीस अवतार की। जो ईश्वर इन सभी अवतारों से ऊपर है, उसी की आराधना करनी चाहिए। वह न तो किसी में लिप्त होता है और न छिपता है-

औतार आभो की कला, सहगुण निर्गुण माँहिं।

आदि नारायण शून्य सम, लिपै छिपै सो नाँहिं।।

रज्जब सुगुण को निर्गुण में ही समाविष्ट मानते हैं। निर्गुण की उपासना करने से सगुण उसमें अपने आप समाहित हो जाता है। अवतार तो कार्य है। इस सृष्टि के आदि में रहने वाले नारायण सबके कारण हैं। रज्जब कहते हैं कि यह काफी सोच-विचारकर कह रहा हूँ। इसलिए इस विचार में परिवर्तन का कोई कारण नहीं है-

सबका कारण आदि नारायण कारज में औतार।

रज्जब कहीं विचार कर ता में फेर न सार।।

रज्जब पंच तत्त्वों को ब्रह्म नहीं मानते। वे कहते हैं कि पंच तत्त्व तो सभी स्थानों पर हैं। सर्वत्र पंच तत्त्व रूप में माया का ही विस्तार है। इसलिए इन्हें ब्रह्म कहना उचित नहीं है-

पंच तत्त्व सब ठौर हैं सब घट सब ही माँहिं।

रज्जब माया बिस्तरी, ब्रह्मा सु कहिये नाँहिं।।

रज्जब के साहित्य में निर्गुण के पक्ष में सशक्त तर्क भरे पड़े हैं। विभिन्न दृष्टान्तों और उदाहरणों के माध्यम से वे अपने पक्ष को पुष्ट करते हैं। एक साखी के माध्यम से एक ही सत्ता के अस्तित्व को स्पष्ट करते हुए रज्जब कहते हैं कि द्वैत भाव के कारण दस दर्पणों में एक ही मुख दस दिखाई पड़ता है। वस्तुतः होता एक ही मुख है। ठीक उसी प्रकार एक ही ब्रह्मदस अवतारों में दस दीखता है। दस अवतार को अलग-अलग देखना एक ही दर्पण में अपने दस स्वरूप को देखने जैसा है-

ज्यों द्वे दर्पण दश मुख दीसैं, त्यों दुविधा दश राम।

जन रज्जब दश में नहिं दोस्त एक सरै सब काम।।

दादू और दादूपंथी साहित्य पर उपनिषदों का प्रभाव बड़ा साफ दिखलाई पड़ता है। इसी प्रकार उपनिषदों के अर्थों का बहन करने वाले अनेक पद और साखियाँ रज्जब के साहित्य में भी मिलती हैं।

रज्जब अद्वैतवादी हैं। वे जीव और ब्रह्म में अद्वैत भाव मानते हैं। माया से ग्रस्त होने के कारण यथार्थ तत्त्व को जीव नहीं समझ पाता और इधर-उधर भटकता रहता है। जब मनुष्य इस दृश्यमान जगत से मुख मोड़कर अपने अन्तरतम में झाँकता है तब उसे अपने वास्तविक स्वरूप का बोध होता है। रज्जब

कहते हैं कि जिस जीव में जितना अधिक अज्ञान होता है, ब्रह्म उससे उतना ही अधिक दूर होता है। वस्तुत: ब्रह्म और जीव में कोई भेद नहीं है। अज्ञान के कारण हो भेद दिखाई पड़ता है। यह पूरी तरह से निर्णीत सिद्धान्त है–

रज्जब जीव ब्रह्म अंतर इता, जिता–जिता अज्ञान।
है नाँहिं निर्णय भया, परदे का परमान।।

रज्जब के मतानुसार सच तो यह है कि जीवन भी ब्रह्म ही है किन्तु जीव शरीर सुख की आसक्ति से ढँका हुआ है। जैसे किसी लोहे की पेटी में पारस रखा हो और वह पेटी वस्त्र आदि से ढँकी हुई हो। ऐसी स्थिति में वह लोहे की पेटी सुवर्ण नहीं बन सकती। वैसे ही शरीर सुख की आसक्ति से मढ़ा हुआ जीव ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता–

प्राण सु पेटी लोह की, पति पारस ता माँहिं।
रज्जब तन सुख सौ पढ़े, कंचन होत सु नाँहिं।।

अज्ञान के कारण असावधान प्राणी अपने स्वरूप को नहीं पहचान पाता है। जो प्राणी अपने स्वरूप को नहीं पहचान पाता, वह राम को प्रिय नहीं है। वह जीते जी शव के समान है–

अचेत न जाने आपको, पर हि पिछाणे नाँहिं।
रज्जब रुचे न राम को, जीवत मूवों माँहि।।

जीव की सबसे बड़ी समस्या अज्ञान है। रज्जब विभिन्न दृष्टान्तों के माध्यम से अज्ञान से मुक्ति पर बल देते हैं। एक साखी में अनल पक्षी का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि अनल पक्षी तभी तक नीचे जाता है जब तक उसके पंख नहीं निकले होते हैं। पंख निकलते ही वह ऊपर की ओर उड़ता है। वैसे ही जीव को जब तक ज्ञान नहीं होता, उसकी वृत्ति अधोमुखी होती है। ज्ञान होने पर वह ब्रह्म के साथ एकाकार हो जाता है–

अनल अंड अज्ञान गति, जब लग नीचे जाँहिं।
रज्जब पाये ज्ञान पर, उलटे शून्य समाहिं।।

रज्जब के मतावसार चैतन्य नित्य है। वह नित्य ब्रह्म माया के कारण प्रतीत नहीं होता है। रज्जब माया से मुक्ति को बहुत कठिन मानते हैं। वे कहते हैं कि जैसे जल के बिना मछली नहीं रह सकती, वैसे ही माया के बिना मन नहीं रह सकता है–

रिद्धि बाहिली रमत ही, जीव माँहिला जाय।
तो मन माया मीन जल, नर देखो निरताय।।

रज्जब माया और मन की आशा को एक समान मानते हैं। ये दोनों कभी मरती नहीं हैं। माया जड़ और चेतन दोनों गुणों से युक्त होती है। माया से बँधा हुआ मन कभी स्थिर नहीं रहता है। वह कुम्हार के चाक पर रखी हुई मिट्टी की भाँति निरन्तर नाचता रहता है–

मन माया सो बंधिकरि, निश्चल कदे न होय।
रज्जब पिंडा चाक पर अस्थिर सुन्या न कोय।।

रामभक्ति ही माया से मुक्ति दिला सकती है, यह विश्वास रज्जब को है। रज्जब ने शैवों, वैष्णवों,

सिद्धों आदि साधकों के पीछे मुक्ति के लिए भागने वालों को सचेत किया है। वे शुद्ध अन्त:करण से राम की भक्ति की बात कहते हैं। वे कहते हैं कि माया से नहीं मुक्त हो सकता है जिन्हें स्वयं राम पकड़कर मुक्त कराते हैं–

इन माया षट्दर्शन खाये, बातनि जग बौराया।
छल बल सहित चतुर जन चक्रित, तिनका कछु न बसाया।।
मारे बहुत नाम सौं न्यारे, जिन यासौं मन लाया।
रज्जब मुक्त भये माया सौं, जो गहि राम छुड़ाया।।

रज्जब भी सहज साधना की बात करते हैं। इनकी साधना अन्त:मुंखी है। रज्जब ने उपासना में भी बाह्या साधनों का विरोध किया है। वे पिंड में भी ब्रह्म का निवास मानते हैं। रज्जब पूछते हैं कि मुहम्मद किस मक्का में गये थे। महादेव ने कौन सी तीर्थयात्रा की थी? अर्थात् अन्त: साधना द्वारा ही प्रभु को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए–

किस मक्के महमुद गकया, महादेव किस यान।
रज्जब चलिये पंथ उस, पंथी प्राण सु जान।।

रज्जब शून्य मंडल में परमात्मा से मिलने को कहते हैं। यह यौगिक क्रियाओं द्वारा ही संभव है। वे कहते हैं कि साधक मन रूपी अश्व पर चढ़े अर्थात् मन को वश में करे, फिर वह पवन पंथ में प्रविष्ट होकर शून्य मंडल में जाए। वहाँ उसे ब्रह्मा के दर्शन होंगे–

मन तुरंग चेतन चढ़ै, पवन पंथ सो जाय।
रज्जब बैठे शून्य में, माँहिं मिले खुदाय।।

रज्जब कहते हैं कि संतों को लौ में ही लाभ है। इसलिए संत को अनवरत अविच्छिन्न रूप से अपने को ईश्वर के साथ लीन रखना चाहिए। ईश्वर के साथ चित्तवृत्तियाँ जुड़ी रहने से दुर्विकार नहीं आते और खता मिट जाती है–

रज्जब लौ में लाभ है, लीन हुआ रह माँहि।
लौ में लत लागा नहीं, और खता मिट जाँहि।।

रज्जब अजपा जाप पर बहुत बल देते हैं। इस जप में साधक का ध्यान शब्दों की आवृत्ति पर न होकर अनुभूति पर होता है। संतों ने इसे सहज जाप, अखंड जाप तथा प्राण गायत्री कहा है। अजपा जाप मुख और वायु से रहित होता है। इसमें मन उन्मनी हो जाता है। इस प्रकार आत्म स्वरूप का साक्षात्कार होता है–

वक्र बैन वायु रहित, होय खु अजपा जाप।
रज्जब मन उनमनि लगे, प्रकटे आपे आप।।

रज्जब ने अनेक साखियों में अजपा जाप के महत्त्व को बतलाया है। यह जप संतों की विचारधारा के अनुकूल था, इसलिए सभी संतों के यहाँ यह अत्यन्त लोकप्रिय हुआ।

रज्जब संतों को राम नाम का स्मरण करने के लिए प्रेरित करते हैं। वे कहते हैं कि राम के नाम को अपने हृदय में धारण कर अपना उद्धार करो। प्रभु का विनम्रता पूर्वक स्मरण कीजिए। समय रहते सुमिरन

कर लीजिए, क्योंकि ऐसा अवसर बार-बार नहीं प्राप्त होगा।

सेवक राम का रे, सद्गुरु की सुन धारि।
राम नाम उर राखिये भाई, आतम तत्त्व उबारि।।
दीन लीन है लीजिए, जीव की जीवन सोय।
समय सु सुमिरण कीजिए, यह अवसर नहिं होय।।

रज्जब प्रेम को सूर्य कहते हैं। नौ लाख तारे रात्रि में दिखाई पड़ते हैं, लेकिन सूर्योदय होने पर वे नहीं दीखते। उसी प्रकार हृदय में प्रेम का उदय होते ही नवधा भक्ति का विधान भी अगोचर हो जाता है। रज्जब एक साखी में कहते हैं कि प्रेम आग है। आत्मा और बह्मा सोना हैं। आग सोने के दो टुकड़े को गलाकर एक कर देती है इसी तरह प्रेम आत्मा और राम को मिलाकर एकाकार कर देता है-

रज्जब पावक प्रेम है, कंचन आतम राम।
गल मिलावै दुहिन को, प्रेम करे यह काम।।

रज्जब की भक्ति पद्धति में ब्रह्माचारों का कोई स्थान नहीं है। उनके अनुसार शुद्ध मन से राम भजन करते हुए अपना काम करते रहने से भी ब्रह्मज्ञान होता है। रज्जब कहते हैं कि हिमालय में जाकर तपस्या करने और गलने से तथा अग्नि में प्रवेश करने से मन का अभिमान क्षीण नहीं होता। सिर पर करवत चलाने से बुद्धि का गर्व नहीं करता है। समुद्र में छलाँग मारने से देह के भीतर का अभिमान नहीं गलता है। शरीर को जितना और जितनी प्रकार से कष्ट दिया जाये, राम भजन के बिना ब्रह्म ज्ञान नहीं हो सकता तथा ब्रह्मा ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती। भक्त के लिए माला और तिलक आवश्यक नहीं है। यदि बिना सुन्नत की तुरकनी हो सकती है, बिना यज्ञोपवीत के ब्रह्मणी हो सकती है तो भक्त भी बिना बाह्य उपकरणों के हो सकता है-

बिन सुन्नत है तुरकनी, ब्रह्मणी ताले नाश।
ऐसे माला तिलक बिन, रज्जब भक्त उदास।।

वस्तुतः रज्जब ने अपनी रचनाओं में दर्शन संबंधी मान्यताओं पर सूक्ष्मता से विचार किया है। उनके साहित्य में तात्कालीन विविध प्रकार की साधना पद्धतियों की झलक दिखलाई पड़ती है। निर्गुण संतों के यहाँ प्रचलित साधना पद्धतियों का गहरा प्रभाव रज्जब के साहित्य पर है। सूफियों का प्रभाव भी उनके यहाँ यत्किचित दिखाई पड़ता है। समग्रतः भक्ति के क्षेत्र में वे निर्गुण निराकार ब्रह्म के उपासक थे।

सम्पर्क : सावित्री सदन-खदरान, पो. हंडिया 221503 जनपद-प्रयागराज (उ.प्र.)
मो. 8400642566, 9415634610

डॉ. प्रीति प्रवीण खरे

कुंडलियाँ छंद

वादा रक्षा का करें, सदा बढ़ाते आन।
सैनिक लोहा ले रहे, देते जीवन दान॥
देते जीवन दान, हिंद परचम लहराते।
हम करते सम्मान, विश्व में शान बढ़ाते॥
रहे सोचती प्रीति, करेंगे भोजन सादा।
मान भरत की नीति, करें खुद से यह वादा॥

माता की अवहेलना, करते क्यों इंसान।
भरती जीवन साँस है, दिला रही सम्मान॥
दिला रही सम्मान, प्रेरणा हिम्मत भरती।
झोली भरे उजास, सदा ही रक्षा करती।
करे प्रीति आगाह, कष्ट, विपदा ही पाता॥
मिले न सीधी राह, ईश भी चाहे माता॥

भाता अपना देश है, बहे गंग की धार।
उत्सव मना रहे, जुड़े स्नेह के तार॥
जुड़े स्नेह के तार, दीन की रक्षा करते।
भाँति-भाँति रस धार, प्रीत से गगरी भरते॥
प्रीति चढ़ा दो रंग, सभी पर ऐसा दाता।
पड़े न कोई भंग, सहज मन सबको भाता॥

चंचल चपला चल पड़ी, ढूँढ़े जीवन राह।
पथ में काँटे मिल रहे, निकले मुँह से आह॥
निकले मुँह से आह, सोचती रही अकेली।
जंगल है खुशहाल, बूझती रही पहेली॥
देख प्रीति दे ताल, मने हर उत्सव अंचल।
गड़ा रखा है नाल, जिया है कितना चंचल॥

साधक जुड़ते जा रहे, पालें कभी न बैर।
रहे साधना लीन हैं, धरती रखते पैर॥
धरती रखते पैर, दास का भाव जगाए।
माँगे सबकी खैर, चाकरी अंब सुहाए॥
जुड़े प्रीति के हाथ, मिटे इस जग से बाधक।
राह दिखाओ नाथ, संत सा बनना साधक॥

साधक करते साधना, जंगल उनका वास।
पेड़ छाँव में बैठते, नदियों का उल्लास॥
नदियों का उल्लास, कंद का भोजन खाते।
सूरज को आभास, किरण जग में फैलाते॥
गंध प्रीति ज्यों पास, हुई महुए की मादक।
मोहन करते रास, पुण्य फल पाता साधक।।

माया साधक छोड़ता, बहता सुर अवरोह।
कैलाशा की कामना, रहा न कोई मोह॥
रहा न कोई मोह, शरण में शिव के जाना।
नाद बीच आरोह, दिगंबर नर्तन भाना॥
प्रीति कुण्डली साध, मिटे यह नश्वर काया।
चले पूजने पाद, दिव्य नारीश्वर माया॥

राही प्यासा घूमता, सूखीं नदियाँ ताल।
बादल मुँह को फेरता, हुआ हाल बेहाल॥
हुआ हाल बेहाल, मिला कोई न सहारा।
फँसे स्वयं के जाल, चढ़ा सूरज का पारा॥
प्रीति विनत हो आज, इंद्र से माफी चाही।
गिरे न जीवन गाज, प्रभो सुध ले लो राही॥

रानी बहना चाहती, बचपन भरा उजास।
देख चाँद को पूछती, क्या है इसमें खास॥
क्या है इसमें खास, देखते सभी निहारे।
रहे चाँदनी पास, चमक बिखराएँ तारे॥
प्रीति जगा दो आस, धरा हो जाए धानी।
करते क्यों उपहास, प्रश्न करती है रानी॥

सहते हरदम यातना, बना रखते गुलाम।
प्रभो सहारा माँगते, चलें मोहना धाम॥
चलें मोहना धाम, श्याम का रूप निराला।
सरस छलकता जाम, मिटे कष्टों का जाला।
प्रीति मूक सी आज, भक्ति में हर दिल बहते।
कृष्ण बताओ राज, घाव तुम कैसे सहते॥

क्रूर शिकारी ढूँढ़ता, बैठ लगाए घात।
इधर-उधर वह देखता, बहुत हो गई रात॥
बहुत हो गई रात, सहारा मिला न कोई।
डरी अकेली जात, देख भय से वह रोई॥
प्रीति कहे कवि राय, नाथ विपदा है भारी।
नष्ट करो सब खार, सबक ले क्रूर शिकारी॥

सम्पर्क : डॉ.प्रीति प्रवीण खरे
भोपाल म.प्र
मो. 9425014719

पद्मा सिंह

तुम्हारे बिना

सूरज
धूप
और हवा
यूँ तो अब भी गुजरते हैं
मुझे छू-छू कर
ओस भीगी पत्तियों का
सिहरना
और रात के रीते पहर में
महुए का टपकना
उसी तरह चौंका जाता है
फिर
तुम्हारा ख्याल आते ही
धँसने लगता है वजूद मेरा
रेत के समंदर में
तुम्हें धुँआ-धुँआ होकर
आसमान में घुलते
देखती रहती हूँ निरुपाय

फिर पहाड़ सा दिन होगा
और हर पल नया होगा
किसी बेसुरे साज सा बजता
कहने को तो हम
अब भी जीते हैं।

हम सोचते ही रह गए और वक्त गुजर गया

क्या पता कब
दिल में आ जाए ख्याल किसी का
और नजरों के सामने चेहरा
बात जरूर कर लेना
क्या भरोसा कल का
फिर समय मिले ना मिले
भरोसा मत करना वक्त का
यह वक्त कमबख्त
कभी भी धोखा दे देता है

कल कर लेंगे बातें
पूछ लेंगे हाल-चाल
ऐसा न हो कि यही सोचते-सोचते
उम्र गुजर जाए और जब
फुर्सत निकालकर हम सोचें कि
आज फोन कर ही लेते हैं
पता चले अचानक जवाब देने वाला तो
कब से खामोश हो चुका है

हम सोचते बहुत हैं
और वक्त गुजर जाता है

यूँ तो अक्सर ऐसा हो ही जाता है
मगर बधाई देने का
दर्द बाँटने का समय कहाँ ठहरता है

हम ठहरे रहते हैं
मगर वक्त नहीं ठहरता
यही फिर पछतावा बन कर
रातों को सोने नहीं देता
कल-कल करते हमने
कितना कुछ खो दिया

हमारे साथ नहीं चलता वक्त
पीछे-पीछे भागना पड़ता है
जानते हुए भी कि
साँसों का हिसाब कौन लगा पाया है
हम ख्यालों में ही डूबे रहते हैं
और नन्हीं-नन्हीं खुशियाँ

ओझल हो जाती हैं
ओस की बूँदों सी

यूँ ही बेवजह तो नहीं आती
याद किसी की
कोई याद तो जरूर करता होगा
हमें भी
आजकल हिचकियाँ नहीं आतीं
मगर भूले-बिसरे चेहरे
नजर के सामने
बेवजह ही तो नहीं आ जाते

दिल में आ जाए अगर
ख्याल किसी का
और नजरों के सामने आ जाए चेहरा
बात जरूर कर लेना

कल का क्या भरोसा
क्या पता?
फिर वक्त मिले ना मिले!

प्रेम करती लड़कियाँ

किसी से नहीं कहतीं
जब प्यार करती हैं
लड़कियाँ
खामोश रहती हैं लड़कियाँ
अजनबियों पर भरोसा करती हैं
अँधेरों में इंतजार करती हैं
आँसुओं से तकिया भिगोती हैं
मौत से सरगोशियाँ करती हैं
लड़कियाँ

बेवजह मुस्कुराती हैं लड़कियाँ
अब नहीं भेजतीं पैगाम
कहीं किसी कबूतर
या हवाओं के साथ
जीने की उम्मीद में
सर उठाती हैं
बेरहमी से मार दी जाती हैं
लड़कियाँ
प्रेम में छली जाती हैं
फिर भी प्रेम करती हैं लड़कियाँ

जमाना बदल गया है

सभी कहते हैं
फिर भी सागर का सीना
चीर देती हैं लड़कियाँ
गूँज बनकर
आसमान में समा जाती हैं
लड़कियाँ

चंडी बनकर
जब जताती हैं
अपना होना
बर्छी सी कसकती हैं
लड़कियाँ
पहाड़ों से बेरहम
धकेल दी जाती हैं लड़कियाँ

शूल बन कर चुभती हैं छाती में
दिलों में धँसी रहती हैं
तीर बन कर
खामोशियों से गुफ्तगू करती
समंदर बन जाती हैं
लड़कियाँ
फिर भी
प्रेम करती हैं लड़कियाँ

सम्पर्क : इंदौर

राजकुमार जैन राजन

प्रेम

कुछ अज़ीब सा
रिश्ता बँधने लगा है
मेरे और तुम्हारे बीच
जब से तुम
'पूनम' का चाँद बन
आई हो जीवन में मेरे
शून्य-से इस जीवन में
दिखाई देने लगी शीतल रोशनी
आत्मबंधन के साथ

देह नहीं हो तुम
मेरे लिए,
अंजुरी भर चाँदनी
ओढ़ा दूँ जिसे
प्रेम की जड़ों में
स्नेह, समर्पण, विश्वास का
पानी दूँ

तुम्हारा मिलना
गहन रहस्य से भरा है
जिसे ढूँढ़ने की इच्छा
बलवती होने लगी है
प्रेम जताना नहीं आता मुझे
बस, जीना जानता हूँ
मौन चाहता है
गहरी संवेदनाओं पर
अपना अधिकार
सुरक्षित रखना
मेरा प्रेम रेत के कण नहीं
जो यों ही बिखर जाएँगे
हमने आशाएँ पाली हैं
आँखों में सपने लिए
हमारा प्रेम पूर्णता तक
पहुँच ही जायेगा
पूनम का चाँद
शक्ति पुंज बन कर देगा
हमें लावण्य
जहाँ आनन्द होगा
सत्य होगा, मुक्ति होगी
और होगा
आत्मा से आत्मा का मिलन!

अनुष्ठान

जब से लौट गई हो तुम
मेरे पास से
मेरी संवेदनाएँ बौनी ही नहीं
अस्तित्वहीन हो गई हैं
बहुत कठिन है
सत्य की तलाश
जुड़ गए हैं तार कहीं से
अपनी संवेदनाओं के
शायद इसी लिये
महसूस करता हूँ
तुम्हारे प्यार की खुशबू
जो मेरी आत्मा तक फैल गई है

जब-जब बैठी थीं तुम
पास मेरे
अहसास हुआ मुझे
एक स्फुरण
अपनी सुप्त चेतना में
कुछ नये सृजन के लिए
जीवन के यथार्थ से
सहमत होकर

बहती रही
अपनी लय में नदी-सी तुम
सुनाई देता था जीवन-राग
इसीलिए ही
महसूस होता है मुझे
मिल गई थीं तुम मेरी साँसों में
खुशबू की तरह
गहरे और गम्भीर

जब से लौट गई हो तुम
मेरे पास से
बहुत उद्विग्न है मेरा मन
कचोटने लगी हैं अनेक पीड़ाएँ
समय की दहलीज़ पर
मैं लौट आऊँगा तुम तक
तुम और मैं मिलेंगे वहाँ
जहाँ मैं और तुम नहीं होंगे
सिर्फ हम होंगे
आत्म शांति का अनुष्ठान
संपन्न होगा फिर से!

चलो, फिर से जी लें?

तुमने दिए थे जो
गुलाब
आज भी सहेज रखे हैं मैंने
अपने दिल की किताब में
जिसकी खुशबू
यादें बन महकती रहती है
हर पल

अच्छा लगता था
तुम्हारे इंतजार में
भावपूर्ण प्रेम-पत्र लिखना
पढ़कर उन्हें
कई-कई बार
खुद ही
मन्द-मन्द मुस्कुरा देना

जब दर्द का
कोई अहसास
उतरता था दिल में
एक मासूम-सी ख्वाहिश बन
हर खुशी को समेटे
तुम चले आते थे
मेरे मन के द्वार पर

खोई मोहब्बत
दबे पाँव आ धमकती है
दिल के सूने कोनों में
जज्बात के ताने-बाने
समेटकर
पुराने पढ़ चुके प्रेम पत्रों को
फिर से सहेज लें

समय की उधेड़बुन में
हम खो न जाएँ
चलो, फिर से जी लें
प्यार के उन पलों को
जो दिल में सजे सपनों को
सावन-सा महका दें
इस जीवन में
चमक भर दें सितारों-सी
फिर से
चलो एक बार जी लें।

सम्पर्क : प्रधान संपादक : 'सृजन महोत्सव'
चित्रा प्रकाशन
आकोला-312205 (चित्तौड़गढ़) राजस्थान
मो. 9828219919

डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'

जीवन है सचमुच रत्नाकर

जीवन है सचमुच रत्नाकर,
गहरे उतरो, मोती लाओ!

प्रीत का मोती बड़ा अनूठा,
सारे जग को अपना कर दे!
जीवन के सूनेपन में ये,
राग-रंग की आभा भर दे!

जीवन सचमुच करुणा-आगर,
गहरे उतरो, करुणा पाओ!

मीरा ने पाया कान्हा को,
तुलसी ने पा लिए राम थे!
जीवन उनका हुआ था अमृत,
सचमुच ही वे पूर्ण काम थे!

जीवन सचमुच, प्रेम की गागर,
गहरे उतरो, प्रीत जगाओ!

अहं छोड़ बस चुनो प्रीत को,
अमृत पा जाओगे जग में!
सबके पथ के शूल चुनो तुम,
सुमन मिलेंगे हर पल मग में!

जीवन सचमुच, कर्म का आकर,
गहरे उतरो, अमृत हो जाओ!

अमृत ऐसा जीवन होता है

जब जीवन का आधार हो चिंतन,
तब सार्थक जीवन होता है।

हाड़-माँस का पुतला मानव,
खाता-पीता, रोता-मुस्काता।
खुद को भूल जगत हित जीता,
तब वह खुद अमृत हो जाता।

ऋषि दधीचि को मन अपना ले,
जग में तभी सृजन होता है।

देव-दनुज हर मन में रहते,
नियति का यह धर्म रहा।
जिसने दिया, देव कहलाया,
लेना दनुज का कर्म रहा।

व्यष्टि तो बहुत सीमित होती है,
व्यापक समष्टि-गगन होता है।

यश के रथ पर जो भी चढ़ता,
गीत उसी के यह जग गाता।
तन मिटता है ऐसे जन का,
आत्म-दीप नित राह दिखाता।

मौत हार जाती है उस से,
जग में अमृत वह जन होता है।

सम्पर्क : डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'
पूर्व प्राचार्य, 74/3, न्यू नेहरू नगर

सविता दास 'सवि'

अभिव्यक्ति

मन का कोलाहल
चाहता है
शब्दों की अभिव्यक्ति
तलाशता है
एक कोरा मन जिसपर
लिख सके सारा संशय
हृदय का।
हर समय एक सा रहना
मुश्किल है
मुस्कुराहट, उदासी, कड़वाहट, क्षोभ
क्षणों के गागर में नहीं सँभलते
छलक जाते हैं पलकों के
किनारे से, क्यों न इन आवेगों की
मोतियों से कोई माला पिरोयी जाए
क्यों न शब्दों में सजाकर
कोई कविता या कहानी लिखी जाए
और न मिले कुछ भी तो
किसी का हाथ थामकर
सबकुछ कह डाला जाए,
क्यों उलझी रहे
भीतर की दुनिया,
भावनाओं की नदी
क्यों ज्वालामुखी बन जाए
चलो इनसे कोई गीत लिखें
जिसे गहन उदासियों में
मुस्कुराकर गुनगुनाया जाए।

निर्वाण

मैं नहीं मानती की
जिंदगी में सिर्फ
दो रास्ते होते हैं
सही और गलत क्योंकि
हर चीज सही-गलत के
दायरे में नहीं आती
एक मन की हजार
भावनाएँ और
एक जीवन के
हजार पहलू
अनगिनत रिश्ते
और इन सबमें उलझे
हम
अपने घर में
अपने कर्म में
और कभी-कभी
किसी के मन में
एक ठोस जगह
बनाने के लिए
कोमल सी इच्छाओं पर
यथार्थ के हथोड़े से
जोर का प्रहार करते हैं
बिदक जाती हैं सारी
खुशियाँ पर चिपका देती हैं
चेहरे पर एक कृत्रिम मुस्कान
फिर यह चेहरा एक मुखौटा
बन जाता है
और अपनी वर्जित
आकांक्षाओं को
किसी मजबूत
सन्दूक में रखकर

चुनता है जीवन को
सार्थक बनाने के लिए
हजारों अंजान रास्तों में से
एक असमंजस वाला रास्ता
निर्वाण का मार्ग समझकर।

कठिन हो राह संघर्ष की

कुछ कोशिशें बेकार हों
जरूरी नहीं सब असरदार हो
कठिन हो राह संघर्ष की
और सफलता शानदार हो...

जीवन का लक्ष्य पाने को
क्यों खँगालें इतिहास को
बन सकता है आदर्श तू भी
बस खुद से वफादार हो

आवेग जब शस्त्र बन जाए
निराशा भी दिशा बन जाए
दम तोड़ देती है हर मुश्किल
जब हौसलों का पलटवार हो।

न कोस अब हालातों को
देख क्या है निभाने को
कर्तव्य हो या रिश्ते हों
बस खुद ही जिम्मेदार हो

कठिन हो राह संघर्ष की
और सफलता शानदार हो....

फर्क

नींद की चौखट पर
सपने इंतजार कर रहे हैं
पर किसी के न सोने से
रात को फर्क पड़ता है क्या?
सपनों में रूठ कर तुमसे
खुद को मना लूँगी मैं
मेरे न मानने से भी
तुम्हें फर्क पड़ता है क्या?
शर्त तो नहीं थी रिश्ते में
रूठने मनाने की
पर कोई भी उसूल बनाने से
रिश्तों को फर्क पड़ता है क्या?
माना उसूल भी जरूरी नहीं
और तुम्हारा हाथ पकड़
रोकने की भी मेरी हिम्मत नहीं
पर किसी एक के चले जाने से
दूसरे को फर्क पड़ता है क्या?
चले जाएँगे एक दिन सभी यहाँ
जीने की वजह भी बदलती जाएगी
किसी लम्हे साँस थम जाएगी
ये जानकर भी...
जिंदगी को फर्क पड़ता है क्या?

सशक्त जो होती है स्त्री

तोड़ देती है
क्षमताओं
की सारी सीमाएँ
अपने पर जब
आती है
वक्ष में जीवन

कंधों पर जिम्मेदारी
फिर स्त्री, स्त्री नहीं
वसुधा बन जाती है।

नकारती है
जब दुनिया उसको
सँवारती है तब
शिक्षा उसको
अबला, सबला
कुछ भी कहलो
अपने मन की जब
करती है
ठान ले जो आसमान
को छूना सच मानो
ये दुनिया हर उस
नारी से डरती है

जननी जो खुद है
कभी-कभी
कोख में ही मार
दी जाती है
कभी बोझ तो,
कभी दहेज भी
समझी जाती है

पीड़ा व्यथा
भुलाकर अपनी
वह सबकी सगी
बन जाती है
समय पड़े तो
लक्ष्मी, सरस्वती
तो रौद्र में
दुर्गा, काली
भी बन जाती है
है समाज की धुरी वह
समर्पण की प्रतिमा है
समझ न पाए
संकीर्ण दृष्टि के लोग
ऐसी उसकी महिमा है
नारी है तो सृष्टि है
नारी है तो राग, रंग है
सशक्त जो होती है स्त्री
सबल सभी को बनाती है
शिक्षा, संस्कार से
नए प्रजन्म को
राह वही तो
दिखलाती है।

सम्पर्क : लाचित चौक, सेंट्रल जेल के निकट
डाक : तेजपुर, जिला : शोणितपुर, 784001 असम
मो. 8638544116, 9435631938

रमेश मनोहरा

इस माया की आस

नैतिकता से हो गया, देखो इन्सां दूर
स्वारथ की आँधी चले, रिश्ते नाते चूर।

रिश्तों से रखता नहीं, धन से राखे प्रीत
जग के मानव की हुई, देख यही अब रीत।

माया नगरी में सभी, भटके यहाँ रमेश
फिर भी बरसे न कभी, इनके आँगन ऐश।

सच को खोजन मैं चला, हुआ न कोई साथ
सम्मुख सबने झूठ के, झुका दिये हैं माथ।

खुद के भीतर है छिपा, जब मालिक का रूप
बाहर फिर जो खोजता, मिलती केवल धूप।

जीवन भर बुझती नहीं, लालच रूपी प्यास
मरते दम तक ही रहे, इस माया की आस।

सच के मारग डालते, जो भी हैं अवरोध
उन पर एक दिन देखना, काल करेगा क्रोध।

मानव के भीतर जला, सदा ज्ञान के दीप
भर दे मन में रिक्तियाँ, मन की रीति सीप।

कब बदले इंसान का, देख यहाँ किरदार
पड़ लालच के फेर में, अपनों से व्यवहार।

जिनके अधरों पर रहे, हरदम मीठे गान
पूरे होते हैं सदा, उनके सब अरमान।

तेरे चारों धाम

हरदम पैसों में रहे, जिनका सारा ध्यान
चैन उसे मिलता नहीं, जीवन भर श्रीमान।

औरों के हित में सदा, सेवा कर निष्काम
घर बैठे हो जाएँगे, तेरे चारों धाम।

अपने मन के बैर को, पहले कर दे दूर
मुख पर तेरे आएगा, दिन दूना फिर नूर।

कर्म अगर अच्छे हुये, मिल जायेगा यार
वरना इस संसार में, जनम हुआ बेकार।

होता है उस दौर में, फिर मानव लाचार
अपने वालों का उसे, मिले नहीं जब प्यार।

इस युग में है आदमी, पैसों का ही दास
पैसा जिसके पास है, वो ही खासमखास।

प्यार मिले संसार में, बोले मीठे बोल
तू कितना मीठा यहाँ, मन को जरा टटोल।

पैसों के खातिर यहाँ, मानव हुआ कठोर
पैसा जिसके पास है, उसे सुहानी भोर।

हाँ में हाँ जिसने करी, पूरे हुए अरमान
चापलूसी बने यहाँ, चमचों को वरदान।

नेकी का जग में नहीं, देख जमाना यार
नेकी जिसके साथ की, लड़ने को तैयार।

पारिवारिक दोहे

रिश्तों में आए नहीं, कोई भी अब आँच
ऐसे सभी बने रहे, जैसे बनते काँच।

मौत के आगे न चले, किसी का यहाँ जोर
न जाने कब खींच ले, साँसों की ये डोर।

रिश्तों में आए नहीं, कोई यहाँ दरार
पहले जैसा हो सदा, आपस में ही प्यार।

होंठों पर जो भी रखें, जहरीली मुस्कान
उससे आप करें नहीं, मित्रता ही श्रीमान।

उस बेटे में न रही, जरा सी भी तमीज
अपमान करके उतार दी, पिता की ही कमीज।

अब तो घर लगने लगे, लाक्षाग्रह श्रीमान
फिर पांडव सहते यहाँ, कौरव के अपमान।

बँट गया घर आँगन भी, और बँटा परिवार
घर पूरा ही हो गया, छोटा सा संसार।

लगाते जो नफ़रत की, दूजों के घर आग
एक दिन स्वयं का घर ही, होगा जलकर ख़ाक।

माता-पिता और गुरुजी, ये हैं पालनहार
इनसे ही मिले हमको, सारे ही संस्कार।

खस्ता होकर गिर गई, रिश्तों की दीवार
रहा नहीं इसमें वही, पहले जैसा प्यार।

कट गई है पतंग सी, रिश्तों की सब डोर
भाईचारे का रहा, माझा ही कमज़ोर।

पुत्र-पिता से आज यहाँ, रखता भिन्न विचार
इसलिए दोनों में चले, रमेश जी तकरार।

इसी पीढ़ी को किसी तरह, आती है न लाज
बुर्जुर्गों का रखती नहीं, जरा सा भी लिहाज।

दौलत जिनके वास्ते, पूजा अरु अरदास
रमेश उनकी नजर में, बाकी है बकवास।

महँगाई ने छीन लिए, रिश्तों के सब ताज
नागफनी के उग गये, घर-घर जंगल आज।

चढ़ा आदमी पर यहाँ, ऐसा यार जुनून
पीता है बेपीर बन, रिश्तों का वह खून।

दर्पण हो ऐसा यहाँ, दिखे ऐब सब खास
चरित्रहीन जो भी दिखे, जाएँ कभी न पास।

महका प्रेम की खुशबू, हरेक आँगन द्वार
फिर खनकती रहे, खुशियाँ खूब अपार।

भीतर जिनके विष भरा, ऊपर है मुस्कान
मिलेंगे पग-पग पर ही, ऐसे अब इंसान।

इस पीढ़ी ने कर दिया, रमेश देख विनास
वेद, पुराण रामायण, लगते सब बकवास।

सम्पर्क : शीतला माता गली जावरा
जिला रतलाम 457226, (म.प्र.)
मो. 9479662215

आचार्य डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

आकाश गुँजा कर गीत लिखे

माँ! मेरी तंत्री के तार
दे जग को स्वर-उपहार।
वरदे! झंकृत हों मधु ध्वनि में
गुंजित मुखरित हों घर-घर में
चिर लय से आलोकित कर दे,
सपनों को साकार।
माँ, मेरी तंत्री के तार।
मेरे गीतों के सागर में
आए जीवन की नई लहर।
आकाश गुँजाकर गीत लिखे,
जो बरसें बन मधु-धार।
माँ! मेरी तंत्री के तार।
सपने विस्मृति के कितने सुख।
अपने संस्कृति के कितने दुख?
निशि-दिन के तारों से दोनों,
गीतों के संसार!
माँ मेरी तंत्री के तार
दे जग को दे नव स्वर उपहार।

थक कर निराश क्यों बैठा है?

मुस्कान चुरा मत जीवन की,
कलियाँ उदास हो जाएँगी।
यदि बाँट दिया तूने पतझर
तो नहीं बहारें आएँगी।
तू है भारत-संतान, धरा से,
तूने गगन मिलाया है।
थक कर निराश क्यों बैठा है?
मंजिल ने तुझे बुलाया है।
तेरी वाणी में अमृत है
क्यों व्यर्थ मृत्यु से डरता है?
तू मरघट पर भी विष पीकर
कल्याण विश्व का करता है।
तू मानव है, इस धरती पर
अमरत्व स्वर्ग से लाया है।
थक कर निराश क्यों बैठा है?
मंजिल ने तुझे बुलाया है।
तेरे तन में वह यौवन जो
पाषाणों को कोमल करता।
तेरे मन का विश्वास अटल
सूने नभ में बादल भरता
धरती पर जीवन बरसा कर,
तूने हर चमन खिलाया है।
थककर निराश क्यों बैठा है?
मंजिल ने तुझे बुलाया है।
अंगारों से जलती भू पर
तू राह बनाने वाला है।
सीना ताने तूफानों में,
लहरों सा गाने वाला है।
सागर की सीमा में तूने
ज्वारों को सदा फुलाया है।
थककर निराश क्यों बैठा है।
मंजिल ने तुझे बुलाया है।
यदि बरस गए तेरे आँसू
जीवन खारा हो जाएगा,
रुक गए अगर तेरे दो पग
सूरज न निकलकर आएगा
इसलिए हँसाता चल उनको
शूलों ने जिन्हें रुलाया है।
थककर निराश क्यों बैठा है।
मंजिल ने तुझे बुलाया है।

सम्पर्क : सी-712, गरिमा विहार, सेक्टर-35, नोएडा 201307 (उ.प्र.)

वाणी जोशी

पति पिता-सा

लिख रही हूँ एक कविता, हूँ मैं एक अविरल सरिता
हाथ में है कोरा कागज लिखूँ पति या फिर पिता

गर्भ से ही गर्व में, बढ़ती चली आई हूँ मैं
लगती हूँ पापा के जैसी, सुनती चली आई हूँ मैं
अँगुलियाँ है लंबी-लंबी, पतली बिल्कुल उनके जैसी
उनके जैसा रूप पाया, शब्दों में है उनकी ही छाया
वाणी को विद्या का दामन, अपने पापा से मिला
हाथ में है कोरा कागज, लिखूँ पति या फिर पिता

सारा दिन घर में फुदकती, चिड़िया बनकर मैं चहकती
तितली बन के उड़ती-फिरती, फूलों से खुशबू चुरा कर
अपने घर में फिर महकती, और जाने कब वो दौर आया
उसके हाथों में पिता ने हाथ मेरा, जो थमाया
ब्याह कर फिर एक नया घर, और नया-सा जहाँ मिला
जाने कब वह ढूँढ़ने, लगती पति में ही पिता

लोग दूजे, घर पराया, कौन यह जीवन में आया
याद जब घर की सताए, आँखों ने आँसू बहाए
आँखें मूँदे बैठी थी मैं, हाथ एक मेरे सिर पर आया
बोलती कुछ उससे पहले उसने मुझसे कह दिया
चूमकर माथे को मेरे, मन को मेरे पढ़ लिया
थामकर इन अँगुलियों को, शब्द कुछ ऐसे कहे
सोने के जैसे ये मोती आँखों से तो न बहा
मैं तुम्हारा आधा अब से तुम मेरी अर्द्धांगिनी
सुख-दुख अब से एक अपने सुन लो जीवनसंगिनी

मैं तुम्हारी साँस हूँ, मैं ही तुम्हारी हर दवा
भूल से कोई भूल कर दूँ, मुझको तुम देना सजा
मैं तुम्हारा प्रिय वर, मैं ही तुम्हारा हूँ सखा
गर सताए बात कोई, मुझको तुम देना बता

हो कहाँ तुम ही अकेली, मैं तुम्हारे साथ हूँ
जिंदगी के हर पहर में, मैं तुम्हारे पास हूँ
शून्य से अनंत तक सफर का उल्लास हूँ
मंजिलों का क्या पता, रास्तों का अनुराग हूँ
सघन वन में धूप से ढँक दूँ तुम्हें वो छाँव हूँ
जो तुम्हारे दिल से निकले मैं वही आवाज हूँ
शब्द जो तुम गढ़ रही हो मैं उन्हीं का साज हूँ
मैं तुम्हारी जिंदगी का खूबसूरत आज हूँ

हाथ में है कोरा कागज लिख दो उस पर तुम पिता
तुम समझ लेना, नहीं तुम थी, वो था मैंने लिखा
हाथ में है कोरा कागज लिख दो उस पर तुम पिता

काल्पनिक प्रश्नों के अविस्मरणीय उत्तर

सज रही क्यों वसुंधरा
छाई है क्यूँ काली घटा
धुन ये कैसी बज रही है
अमरबेल क्यूँ सज रही है
रात की इस चाँदनी में
क्यों अजब-सा है नशा
जाने क्यों पर लग रहा है
कोई तो आने को है
ऐ धरा, ऐ रागिनी
मैं पूछता हूँ तुमसे ये
तुम्हीं मुझको यह बता दो
कौन हो तुम?

रोशनी आदित्य की मैं
धरा का सौंदर्य हूँ
सौम्यता से हूँ भरी
और सोम का मैं नूर हूँ
जो न समझो, हूँ मैं पत्थर
समझो तो कोहिनूर हूँ।

सर के ऊपर बिजली गाजे
पैरों में पायलिया बाजे
रूप की ओ मोहिनी
शृंगार सारे तुझ पर भावे
रागिनी बन अविरल बहती हो
क्या गंगा हो तुम?
कौन हो तुम?

मैं तो हूँ चलती कलम एक
शब्द सब लिख जाऊँगी
मौन रहकर भी जहाँ में
मौन ना रह पाऊँगी
अंधकार में सदा
आशा के दीप जलाऊँगी
दर्द सारे ही मिटा कर
गीत खुशियों के गाऊँगी
आसमान में देखोगे तो
एक परी बन जाऊँगी
मैं तो बस एक कल्पना हूँ
सोचो जो बन जाऊँगी।

सम्पर्क : इंदौर (म.प्र.)

कृष्णमुरारी त्रिपाठी 'अटल'

मुकदमा..!

एक वकील साहब थे। उनकी पत्नी सुरभि व उनके बीच अक्सर किसी न किसी बात को लेकर लड़ाई चलती ही रहती थी। छोटे-मोटे झगड़ों से शुरू हुआ मामला धीरे-धीरे बेहद गम्भीर हो चुका था। सुरभि उनके साथ किसी भी हाल में नहीं रहना चाहती थी। उसे अपने पति शेष में अपना सबसे बड़ा शत्रु दिखाई देने लगा था। और उनका दाम्पत्य जीवन दिन प्रतिदिन की लड़ाइयों से कलह का शिकार होता चला जा रहा था। इन सबके चलते ही उनके दो नन्हें-नन्हें नौनिहालों-ज्ञान और भक्ति का भविष्य भी दाँव में लग चुका था।

एक दिन की बात थी शाम के तकरीबन साढ़े छः बजे रहे थे। उस दिन उनके बीच अक्सर चलने वाली तीखी बहसें-बढ़ती ही चली जा रही थीं। पहले-पहल तो वकील साहब भी उसी तेवर के साथ सुरभि के साथ लड़ने लगे। किन्तु धीरे-धीरे बात बिगड़ती देखकर उनके तेवर नरम होने लगे।

मगर, उस दिन की शाम सुरभि-निर्णायक भूमिका में आ! खड़ी थी। वकील साहब के कचहरी से घर आते ही उस दिन शुरू हुई लड़ाई समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रही थी।

अपने माता-पिता की लड़ाइयों को देखते सुनते ज्ञान, भक्ति घर के दूसरे कमरे में, पर्दे के पीछे, डरे-सहमे से खड़े थे। उन नौनिहालों को कुछ भी नहीं पता था आखिर उनके माता-पिता हमेशा क्यों लड़ते-झगड़ते रहते हैं? उन बच्चों की आँखों से बहती अश्रु धार किसी त्रासदी से कम नहीं लग रही थी...!

मैं, अब तुम्हारे रिश्ते से तंग आ चुकी हूँ। मुझे अब किसी भी हाल में तुम्हारे साथ नहीं रहना। तुम्हारे बारे में पहले से पता होता तो मैं तुमसे शादी ही नहीं करती। तुमसे शादी करना मेरी सबसे बड़ी भूल थी। मुझे क्या पता था कि तुम गिरगिट जैसे रंग बदलोगे। शेष पर चीखती हुई सुरभि का गुस्सा शान्त होने का नाम ही नहीं ले रहा था। वह अब अपने रिश्ते को तोड़ने के लिए तैयार थी।

वकील साहब बोल पड़े- अरे! यार ये क्या बेवकूफी वाली बात करती हो। रिश्तों को ऐसे-कैसे तोड़ दें। सोचो हमारे बच्चों का क्या होगा? आखिर! तुम यह सब किसके बहकावे पर कर रही हो? थोड़ा तो सही ठण्डे दिमाग से सोच लो। घर-परिवार, समाज और बच्चों के बीच हमारी क्या इज्ज़त रह जाएगी? हाँ, इतना ही नहीं जरा! सोचो- बच्चों की जिन्दगी का क्या होगा?

खाक! सोचना। यदि बच्चों और परिवार की तुम इतनी ही फिक्र करते तो ये नौबत ही कहाँ आती। हाँ, और अब बच्चों की दुहाई देना बिल्कुल ही बन्द कर दो। मैंने जैसे उन्हें अपनी कोख से जन्म देकर अब तक पाला है-वैसे ही आगे भी उन्हें पाल लूँगी। मगर, शेष बच्चों पर तुम्हारी कभी छाया नहीं पड़ने दूँगी।

प्लीज़! बस भी करो, सुरभि।

क्या बस करूँ?

कुछ नहीं? प्लीज़ चुप हो जाओ- भगवान के लिए ऐसा कुछ भी न कहो?

भगवान तो मैं तुम्हें मानती थी, मगर तुमने कभी सोचा ..?

सुरभि, मैं भी इंसान ही हूँ। लेकिन छोटी-छोटी बातों को लेकर ऐसे कौन झगड़ता है?

नहीं-नहीं...जैसे तुम तो सत्यवादी हरिश्चंद्र ही हो-है न?

प्लीज़ सुरभि..। अभी मेरी बात मान जाओ। मैं थक चुका हूँ?-इन लड़ाई झगड़ों से। मुझमें अब बिल्कुल भी हिम्मत नहीं बची है।

हाँ, हाँ वकील साहब? अब तुममें हिम्मत कहाँ बचेगी! और जैसे मेरे सींग उग आई हैं-जो मैं हमेशा लड़ने के लिए तैयार ही रहती हूँ।

नहीं, सुरभि। सुनो न! फिलहाल चुप हो जाओ।

प्लीज़, सुनो न!

चलो, बको?

तीन महीने पहले जो केस मिला था, उसकी कल सुनवाई है।

तो, मुझे उससे क्या है?

वो निबट जाए। उसके बाद हम मिल बैठकर बातें करते हैं। इन लड़ाई-झगड़ों से मैं भी तंग आ चुका हूँ। वादा करता हूँ सबकुछ पहले जैसा हो जाएगा।

ऐसे-कैसे हो जाएगा? तुम्हें परवाह ही कहाँ है। तुम्हारे वादे और तुम-बहुत देख और सह लिए। लेकिन अब सबकुछ बर्दाश्त के बाहर है। हर बार की तरह ही तुम फिर से वैसे ही हो जाओगे।

जब इतने वर्षों में नहीं सँभाल पाए। तो प्लीज़ भगवान के लिए अब मुझ पे तरस खाना बन्द कर दो। मुझे अब सिर्फ और सिर्फ तुमसे तलाक चाहिए। और कुछ नहीं।

बातों को मत बिगाड़ो। बातें बढ़ाने से बढ़ जाती हैं। रिश्तों को ऐसे नहीं तोड़ते, कहते हुए शेष की रुआँसी आँखों का तटबन्ध टूट गया। और उनकी आँखों से अश्रुधार बह चली।

अगर, तुम्हें बातें ही बनानी होती-तो तुम यह सब बहुत पहले सोच लेते। अच्छी तरह से सुन लो मेरा फाईनल डिसीजन-'तलाक' है।

सुरभि, तुम नहीं समझ रहीं। तलाक जिन्दगी का हल नहीं है। हर दिन तलाक के मामलों से कोर्ट में दो-चार होता हूँ। लोग फिल्मों और सीरियल को देखकर तलाक तो ले लेते हैं, लेकिन फिर उनकी जिन्दगी भी तलाक के साथ ही बर्बाद हो जाती है।

हाँ, हो जाने दो मेरी भी जिन्दगी बर्बाद। अभी ही कौन सी आबाद है। सब कुछ तो तुमने बर्बाद ही कर दिया है।

तुम आखिर! समझने का नाम ही क्यों नहीं लेती? मेरे साथ तुम किसी दिन कचहरी चलो और देखो तलाक के मामलों की बहसों को। तब तुम्हें समझ आ! जाएगा कि तलाक! शब्द कह देना कितना आसान है। और उसकी त्रासदी कितनी ज्यादा भयावह है।

तुम तो जानते हो न!-क्या इतना काफी नहीं है?

सुरभि, अभी तुमने नहीं देखा है कि- कोर्ट में किस प्रकार से घर-परिवार, रिश्ते-नातों को तलाक के मामले तबाह कर रहे हैं। कोर्ट में जब रिश्ते-नाते, शत्रु के समान वकीलों की बहसों में उलझते हैं न! तब, उन्हें देखकर कोई भी पानी-पानी हो जाए।

वकील साहब की बातों से सुरभि को कोई फर्क ही नहीं पड़ रहा था। उनकी आँखों से लगातार आँसू बह रहे थे। पुरुष की आँखों से एक तो इतनी आसानी से आँसू बहते नहीं हैं, लेकिन जब आँसू बहते हैं, तब उसकी पीड़ा को मापने का कोई पैमाना नहीं हो सकता।

लगभग समर्पण की मुद्रा में आते हुए उन्होंने कहा-

सुरभि तुम्हीं बताओ न! तुम्हें मैं समझाऊँ तो समझाऊँ कैसे? प्लीज़, इस तरह रिश्ते को खत्म करने की जिद पर-मत अड़ो।

तभी, अचानक शेष का फोन बजता है। पहले शेष ने कॉल रिसीव नहीं की। फिर देखा कि उनकी मुवक्किल प्रज्ञा का फोन था, जिनके मुकदमे की कल सुनवाई थी। शेष ने फोन को साइलेंट मोड में डाल दिया। लेकिन उधर से प्रज्ञा का फोन लगातार ही आ रहा था।

इधर शेष की आँखें आँसुओं से सराबोर हो चली थीं। पति के रोने से सुरभि थोड़ा असहज होने लगी। उस समय किसी तरह शेष ने-मिन्नतें करते हुए सुरभि को शान्त करवाया। फिर मुँह धोकर सोफे पर आकर बैठ गए। लगातार बज रहे फोन को उन्होंने रिसीव करते हुए स्पीकर मोड पर डाल दिया।

उधर से प्रज्ञा भावुक होकर बोल रही थी-सर, यहाँ तक आ जाने के बाद मुझे अब बेहद बेचैनी हो रही है। मुझे यह मुकदमा नहीं लड़ना है।

वकील साहब प्रज्ञा की बातों को सुनकर अवाक से रह गए। उनकी भाव-भंगिमाएँ एकदम से बदल गईं। अपने हाथों से मुकदमे को जाते हुए सोचकर- उन्होंने प्रज्ञा से कहा -अरे! आप कैसी बहकी -बहकी बातें कर रही हैं?

कल तो आपके मुकदमे की अन्तिम सुनवाई है-और आप मुकदमा वापस लेने की बातें कर रही हैं। आप चिन्तित मत होइए। आपको -आपके जल्लाद पति से कानून अवश्य ही न्याय देगा। मैं, गारण्टी लेता हूँ। वैसे भी सारे डाक्यूमेंट्स आपके पक्ष में ही हैं। आपको पूरा भत्ता, उसकी आधी पेमेंट व सम्पत्ति में आधा हिस्सा मिलेगा।

नहीं सर, मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। बस इस मुकदमे को खत्म करना है।

प्रज्ञा जी मुझे तो ऐसा लगता है कि-आप इस मुकदमे को वापस लेकर बड़ी भारी गलती कर रही हैं।

सर, बिल्कुल भी ऐसा नहीं है। मैंने वैसे भी दूसरों के बहकावे व छोटी-मोटी बातों के चलते इसे यहाँ तक खींच दिया है। लेकिन मेरी अंतर आत्मा अब यह गवाही नहीं देती कि-विवाह की जिस पवित्र परम्परा में-शेष को मैंने पति के रूप में स्वीकार किया। उसके परिवार के साथ जीवन जिया, असीमित खुशियाँ पाईं। उससे कचहरी के इस मुकदमे में जीत जाऊँ। मैं, मुकदमे में तो जीत सकती हूँ लेकिन इसके बाद जीतकर भी हार जाऊँगी।

प्रज्ञा, आप कैसी बातें कर रही हैं? अच्छे से सोच समझकर बताइए। मैं आपके मुकदमे की ही तैयारी में जुटा हुआ था। विचार करके बताइए। यह केस पूरा आपके ही पक्ष में है।

सर, मैंने अच्छे तरीके से सोच और समझ कर ही यह निर्णय लिया है। इसीलिए आपसे यह गुजारिश कर रही हूँ।

फिर भी प्रज्ञा जी, यह निर्णय अचानक! कुछ समझ नहीं आ रहा है?

आप ठीक कहते हैं–मुझे भी एक साल से कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। मगर, इन तीन दिनों में लगभग सबकुछ समझ में आ गया है।

प्रज्ञा जी, आप परेशान मत होइए। निर्णय पूरा का पूरा आपके पक्ष में है।

नहीं सर, अब मेरा कोई पक्ष नहीं बचा है।

तो फिर..?

सर, आप वकील हैं, आपको यह सिर्फ केस दिख रहा है। लेकिन मुझे पता है कि यह मेरी जिन्दगी का अन्तिम निर्णय होगा। यहाँ से अगर मैं हार गई तो जीवन पर्यन्त अपने बच्चे व खुद को कभी भी नहीं जिता पाऊँगी। मेरे और मेरे पति के बीच लाख अनबन व लड़ाइयाँ रही हैं। लेकिन जब आज वर्षों से कोर्ट–कचहरी व समाज के बीच खुद को देखती हूँ तो लगता है मेरा जीवन नर्क बन गया है।

प्रज्ञा के भरे हुए गले से उनके कमरे में फोन के स्पीकर से आवाज गूँज रही थी–सच बतलाऊँ वकील साहब तो उन लड़ाइयों में भी प्यार था। परिवार की खुशियाँ थीं। मगर धीरे–धीरे सबकुछ चकनाचूर होता चला गया। आहिस्ते–आहिस्ते इन लड़ाइयों ने मेरा सबकुछ छीन लिया।

वकील साहब को लगा कि यह केस उनके हाथों से अब तो पक्का ही चला गया। अतएव उनके खुराफाती दिमाग को इमोशनल कार्ड खेलने की सूझी। और उनके दिमाग में अब भी केस और उसको जीतने के बाद मिलने वाली धनराशि ही चल रही थी। इसलिए वे बड़ी ही मासूमियत के साथ बोले– हमें समझ ही नहीं आ रहा–प्रज्ञा जी आप यह निर्णय क्यों ले रही हैं? लेकिन इसके बाद फिर आपकी कहीं कोई सुनवाई नहीं होगी। फिर भी सोच समझकर बताइएगा। क्या करना है?

वकील साहब। कुछ नहीं करना है। बस, इस केस को वापस ही लेना है। सच बताइए! कहीं आप पर कोई दबाव तो नहीं है? यदि कोई ऐसा दबाव हो तो बतलाइए पुलिस में इसका भी आवेदन दे देते हैं।

नहीं, सर। मुझ पर कोई दबाव नहीं है। मैं अपना यह मुकदमा वापस लेना चाहती हूँ।

वकील साहब अपनी पत्नी के झगड़े से वैसे भी तनाव में थे। लेकिन पैसे के चक्कर में किसी तरह नियन्त्रण करते हुए उन्होंने अब तक संयम बनाए रखा। लेकिन प्रज्ञा की बातें सुनकर वे झुँझलाहट में थोड़ा तल्ख होते हुए बोल ही पढ़े– ऐसा कैसे हो सकता है प्रज्ञा जी, आप हमारी वर्षों की मेहनत पर पानी फेरने पर लगी हुई हैं। यदि आपको मुकदमा वापस ही लेना था तो पहले ही बताना चाहिए। इतने दिनों की मेहनत करने के बाद भी जब हमारे हिस्से में–भाग न पहुँचे, शून्य ही आना था तो इस केस का मतलब ही क्या निकला...?

सर, आप समझना क्यों नहीं चाहते? मैंने आपसे कह दिया न कि–अब मुझे केस नहीं लड़ना और न ही किसी सुनवाई में जाना है। मैं, समझ रही हूँ आप अपनी फीस को लेकर परेशान हैं। आप चिन्ता न करिए। मैं आपकी पूरी फीस चुका दूँगी। मुझे अब आप केस वापस लेने दीजिए।

वकील साहब के सिर में प्रज्ञा के केस को लेकर जो पैसे का भूत सवार था। वह धीरे–धीरे उतरने लगा। उन्हें जब लगा कि क्लाइंट से पैसा मिल जाएगा तो उनका रुख नरम तो हुआ। लेकिन अपनी

वकालत के इस ढंग से वे थोड़े शर्मिंदा भी हुए।

वकील साहब ने प्रज्ञा से कहा–कल की सुनवाई में इस आशय में आपके लिखित व मौखिक बयान चाहिए होंगे। कल सुबह साढ़े दस बजे कार्यालय में आइए।

प्रज्ञा ने वकील को थैंक्स कहते हुए कहा–सर हो सकता है कि केस वापस लेने के बावजूद भी मेरे और मेरे पति के बीच अनबन बनी रहे। याकि मिल बैठकर अपनी सारी बातें कहने से बात बन जाए। और हमारे रिश्ते में धीरे–धीरे ही सही शायद कभी खिलखिलाहट आ ही जाए।

हम्म। कहते हुए वकील साहब हामी भर रहे थे।

सर, आप तो एक साल से मेरी स्थिति देख ही रहे हैं। बस, इसीलिए अपने बीच के लड़ाई–झगड़ों पे कोर्ट की दहलीज से कोई मुहर नहीं लगवाना चाहती। अब तक की गल्तियों ने बहुत जख्म दिए हैं। मैं तो कैसे भी गुजारा कर लूँगी लेकिन बच्चों का भविष्य व उसके चेहरे की खुशियाँ नहीं छीन सकती।

प्रज्ञा की ये बातें सुनते ही शेष व उनकी पत्नी का कलेजा धक्क रह गया। और उनकी निगाहें अपने बच्चों की ओर दौड़ गईं।

सर, आज का पीछे हट जाना मुझे स्वीकार है। अन्यथा मेरी सारी जिन्दगी घुटन में बीतती चली जाएगी। अपने बच्चे को मैं–उसके पिता और उसके भरे पूरे परिवार से दूर करने का पाप सिर में लेकर नहीं जी पाऊँगी।

वकील साहब बिना कुछ कहे ही हाँ–हूँ में सम्वाद की औपचारिकता निभाते हुए प्रज्ञा बातों को सुन रहे थे।

सर, आप ही बताइए न यदि मैं केस जीत भी गई और कल को जब मेरा बच्चा अपने पिता, अपने दादा–दादी, परिवार के बारे में पूछेगा तब मैं उसे क्या जवाब दूँगी? इतना सब कहते हुए प्रज्ञा रोने लगी। उसके प्रश्न और बातों से वकील साहब निरुत्तर ही हुए जा रहे थे। प्रज्ञा अपने अंतर्द्वन्दों के उत्तरों की तलाश करके ही इस निर्णय पर पहुँची थी कि रिश्तों के बीच मुकदमे–रिश्तों के साथ ही बहुत कुछ बर्बाद कर देते हैं।

वकील साहब ने फोन पर ही समझाते हुए कहा प्रज्ञा जी अभी आप खुद को सँभालिए। अच्छा फोन रखता हूँ। कल कार्यालय में मुलाकात होती है।

वकील साहब फोन रखते ही कि बात ही बात में–प्रज्ञा ने उनसे ऐसे ऐसे प्रश्न पूछ लिए कि शेष व सुरभि के पाँवों तले की जमीं ही खिसक गई।

प्रज्ञा ने अपने भर्राए स्वर में कहा–बताइए न सर, यदि आप मेरी जगह पर होते तो क्या करते? क्या आप अपने बच्चों के भविष्य को–जीवन को मामूली लड़ाई–झगड़ों के चलते मुकदमे की भेंट चढ़ा देते?

वकील साहब फिर से निरुत्तर हो गए। फोन कट चुका था। प्रज्ञा की बातें सुनकर वकील साहब और उनकी पत्नी की आँखों से आँसू निकल आए। दोनों फफक–फफक कर रोने लगे। ज्ञान और भक्ति अपने माता–पिता से आकर लिपट गए। माँ का ममत्व और पिता का स्नेहबोध–दाम्पत्य जीवन की एकसूत्रता के सागर में हिलोरें ले उठा। शेष और सुरभि अपने बच्चों को खिलाने–पुचकारने लगे। प्रज्ञा की वेदना को सुनकर–उन दोनों को ऐसा लग रहा था जैसे यह प्रज्ञा का मुकदमा नहीं था–बल्कि उनके बीच के मुकदमें की आगामी दास्तान होने वाली थी!

सम्पर्क : सतना, म.प्र., मो. 9617585228

गौरीशंकर रैणा

मध्यांतर

उसे यकीन हो गया था कि वह, इस संसार में, बस अब कुछ दिनों का मेहमान है। वह सोफे पर बैठकर अपने बेटे की प्रतीक्षा कर रहा था जो लैब-रिपोर्ट लाने के लिए गया हुआ था। सामने मेज पर एक कैरी-बैग था जिसमें अब तक की सभी रिपोर्ट तथा डॉक्टरों के प्रिस्क्रिप्शन सँभाल कर रखे हुए थे। उसने अपना हाथ बैग की तरफ बढ़ाया मगर फिर वापिस ले आया। शायद यह सोच कर कि अब इन प्रिस्क्रिप्शनों को देखकर क्या फायदा, जो होना है वह तो होकर ही रहेगा।

मृत्यु का भय उसे विक्षिप्त कर रहा था। कौन मरना चाहता है? फिर सोचा अगर मर भी जाएगा तो क्या फर्क पड़ेगा। न इस दुनिया को, न परिवारों और न यार-दोस्तों को। कुछ दिनों का रोना-धोना और फिर सब सामान्य रूप से चलेगा। यह दुनिया वैसे ही चलेगी जैसे चल रही है। उसी रफ्तार से। इसकी गति थम नहीं जाएगी। वह धीरे से उठ खड़ा हुआ और ड्राइंगरूम का दरवाजा खोल दिया, जो आँगन की तरफ खुलता था। अपने घर के आँगन को देखा। सोचा, क्यों न नंगे पैर इस पर चले। न जाने फिर इस पर चलना नसीब हो या नहीं। फिर ख्याल आया कि अगर बदकिस्मती से गिर पड़ा तो एक और मुसीबत खड़ी हो जाएगी। इसलिए वापिस ड्राइंगरूम में आ गया और सोफे पर निरुत्साहित बैठ गया।

रसोई से बरतनों की खनक सुनाई दी। समझ गया कि उसकी पटनी, रानी, अब सूप तैयार करने लगी है। उसी के बारे में सोचने लगा कि क्या होगा इसके न रहने के बाद? कौन उसका पूरा इलाज करवायेगा? यह हमारा बेटा, पप्पू जी मेरा ध्यान रखेगा या रानी का? खैर, कोई बात नहीं मेरे न रहने के बाद वह इसका ठीक से इलाज करा पायेगा।

''आपको सूप दे दूँ क्या?रसोई से रानी ने आकर पूछा।''

''सूप के बजाय अगर थोड़ी सी चाय दे देतीं तो अच्छा रहता। तंग आ चुका हूँ यह सूप पी-पी कर। मुँह का जायका ही खत्म हो गया है। कुछ भी अच्छा नहीं लगता। ''

''डॉक्टर गुप्ता ने चाय देने से मना किया है। ''

''आधा कप पी लूँगा तो कौन सी आफत आयेगी। ''

''ठीक है देती हूँ चाय। न जाने यह पप्पू जी क्यों नहीं लौटा। अब तक तो आ जाना चाहिए था। शास्त्री नगर से गाँधी नगर है ही कितना दूर। ''

''स्कूटर तो ले गया है ना?''

''हाँ, हो सकता है डॉक्टर के घर गया हो।''

''तब तो देर लगेगी ही। छावनी, यहाँ से दूर है। आँगन के दरवाजे पर कुछ आवाज सी हुई तो रानी बोली, लगता है आ गया। ''

वह ड्राइंगरूम के दरवाजे तक गई और बाहर ड्योढ़ी की तरफ देखा। कोई दरवाजा खोल रहा था मगर वह पप्पू नहीं, रानी के पति का मित्र हीरालाल था।

''नमस्कार, भाभी जी! कैसा है मेरा शिबना?''

''आइये-आइये, अन्दर आइये। ठीक हैं आज।''

हीरालाल, सोफे पर अपने मित्र की दाईं ओर बैठ गया। रानी रसोई की तरफ जाने लगी, चाय बना लाती हूँ।

जैसे ही रानी कमरे से बाहर गई वैसे ही हीरालाल ने अपने बचपन के दोस्त शिबन से पूछा, ''अब बता। कैसा है तू?''

''वैसा ही जैसा था।''

''कल डॉक्टर के पास गए थे?''

''हाँ।''

''क्या कहा उसने?''

''वही जो एक महीना पहले कहा था।''

''अच्छा तू यह बता, तुम्हें क्या लग रहा है?''

''मौत!''

डोंट बी सिली!

''मौत आँगन के दरवाजे तक पहुँच चुकी है। अब ड्राइंगरूम तक आने में कितनी देर लगेगी। बस कुछ दिन, कुछ घंटे या फिर कुछ मिनट।''

''बकवास बन्द कर। थिंक पॉजिटिव!''

इस का शिबन ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह एक ऐसी स्थिति में था जो समझाई नहीं जा सकती थी। एक ऐसा अहसास जो बयान नहीं किया जा सकता था। तुम कुछ ज्यादा ही सोचते हो। तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगे। हीरालाल ने दिलासा देते हुए कहा।

''एक काम था, क्या तुम करोगे?''

''हाँ, हाँ! बोलो ना।''

''कच्ची छावनी की ब्रांच में मेरा बैंक-अकाउन्ट है। जी.पी.एफ. का सारा पैसा उसी अकाउन्ट में है, मगर उसका नामिनेशन नहीं है। कल अगर तुम अपनी मारुती लेकर आ जाओ तो मैं तुम्हारे साथ बैंक जा कर सारे काम निपटा आते। पप्पू-जी के स्कूटर पर बैठ कर नहीं जा सकता।''

''हाँ, मगर...?''

''मैं नहीं चाहता कि मेरे बाद रानी और पप्पू इधर-उधर धक्के खाते फिरें, इसलिए यह काम अपने रहते ही करना चाहता हूँ।''

''कैसी बातें करते हो, तुम्हें कुछ नहीं होगा।''

''अब ज्यादा समय नहीं है। मैं अपनी जिम्मेदारियाँ पूरी करके जाना चाहता हूँ। अपना कर्म पूरा करके जाना चाहता हूँ, क्योंकि मेरी सहज बुद्धि मुझे चेता रही है। मुझे कुछ अहसास करा रही है।''

''कैसा अहसास?''

''यह अहसास आत्मा जगा देती है। इस अहसास से वे दरवाजे खुल जाते हैं जो बन्द होते हैं। उन दरवाजों से झाँको तो सब दिखने लगता है। हम इस संसार में रह कर समय गुजारते हैं और उस समय से परे कुछ नहीं देख पाते हैं। परन्तु जब समय के सपनों का यह मायाजाल टूटने लगता है तो मायारूप ध्वस्त होता है। फिर जब तार कट जाती है तो साज बन्द होता है।''

''शिबन, यह तुम कैसी बातें करने लगे हो?''

इससे पहले कि शिबन कोई उत्तर देता, रानी चाय लेकर आ गई, आप लोग अब अपनी बहस, कुछ देर के लिए, बन्द कीजिए और चाय पीजिए।

दोनों मित्र चाय पीने में मशगूल हो गए और रानी अपनी रसोई में व्यस्त हो गई।

सात महीने गुजर गए। पप्पू जी ने अपना स्कूटर, कच्ची छावनी के बैंक के बाहर रोक दिया। जैसे ही वह बैंक की तरफ जाने लगा वैसे ही उसने सामने से हीरालाल को आते हुए देखा। हीरालाल ने भी पप्पू को देख लिया। दोनों एक-दूसरे के पास आ गए।

''पप्पू जी!''

''कैसे हैं अंकल! अमेरिका से कब आये?''

''बस तीन दिन पहले आया हूँ। अरुण आस्ट्रेलिया चला गया इसलिए मुझे वापिस आना पड़ा। मुझे माफ करना बेटे, मैं वहाँ से फोन नहीं कर पाया। हालाँकि मेरे पास तुम्हारा नम्बर लिखा था मगर वह कागज का पुर्जा अफरा-तफरी में न जाने कहाँ खो गया। मुझे अफसोस है कि....।''

''मैं आपकी मजबूरी समझ सकता हूँ।''

''हाँ, तुम तो सब कुछ जानते ही हो।''

''हम फिर चंडीगढ़ गये थे। वहाँ पूरा एक महीना रहे। कोई उम्मीद नजर नहीं आ रही थी। मम्मी बहुत परेशान थीं। सारा दिन रोती रहती थीं। समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें।''

''ऐसे हालत में तो कोई भी परेशान हो जायेगा। मैं तो सोच ही रहा था कि कल शास्त्री नगर आकर तुमसे और रानी से मिलूँ। ''

''आइये मैं आपकी मुलाकात करा दूँ।''

''क्या रानी, अन्दर बैंक में है!''

''नहीं मम्मी तो घर पर हैं। मैं यह आधार कार्ड और डाक्यूमेंटस फोटोस्टेट कराने गया था।''

''तो फिर किस से मिलवाओगे?''

''अन्दर पापा हैं।''

''क्या ...!''

''हाँ, मैं उनको इसी स्कूटर पर घर से ले आया।''

हीरालाल को विश्वास ही नहीं हुआ। वह जैसे आसमान से गिरा हो। ताज्जुब में पड़ा हीरालाल, पप्पू जी के पीछे-पीछे बैंक के अन्दर चला गया। शिबन काउंटरों के सामने दीवार के साथ सटी कुर्सियों में से एक कुर्सी पर बैठा हुआ था। वह पहले से कमजोर था मगर उसके चेहरे पर चिंता का कोई भाव नहीं था।

संतोषजनक, आश्वस्त चेहरा। हीरालाल अपने मित्र की ओर फुर्ती के साथ गया और उसे गले लगाया।

''मेरे शिबन!''

''अरे हीरालाल, तुम!''

''शिबन, मैं तो मान बैठा था कि तुम....'' हीरालाल ने बैठते हुए कहा।

''अरे नहीं दोस्त, अभी नहीं!''

''मैं उन दिनों तुम्हें तसल्ली देता रहता था। यह सोच कर कि तुम्हारा ढाढस बँधा रहे। तुम्हें उदासी से निकालने की कोशिश करता था लेकिन जानता था कि तुम ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहोगे।''

''मौत के अहसास ने मुझे जीवन की अल्पकालिकता का बोध कराया। मैं मृत्यु को देख पाता था। घर में, अस्पताल में, ऑपरेशन थिएटर में और अपने मन में। फिर मैंने अपना शरीर डॉक्टरों के हवाले किया और मन के अन्दर बैठी उस अतंर्व्यापी मृत्यु से निरंतर लड़ता रहा। उसकी आकृति धुँधली होती गई।''

''और तुम ठीक हो गए।''

''पूरी तरह से तो नहीं, मगर कुछ दिन और जिन्दा रहूँगा। कुछ मोहलत मिली है।''

''लंबी मोहलत!''

''कौन कह सकता है। मगर हाँ, इस मध्यांतर में, मैं अपनी जिम्मेदारियाँ निभाने की कोशिश करूँगा। अपना कर्म पूरा करूँगा।''

तभी, काउंटर से, पप्पू जी कुछ काग़ज़ लेकर आया। ''पापा, इन पर आपके साइन रह गए हैं।''

कागजों पर हस्ताक्षर करा के बेटा वापिस काउंटर पर चला गया तो हीरालाल ने अपने मित्र से कहा, ''यहाँ तो मुझे आना था तुम्हारे साथ, मगर देखो मैं कैसा हूँ कि...''

''मैं जानता हूँ तुम्हारी मजबूरियाँ। उन दिनों तुम अमेरिका जाने की तैयारियों में लगे थे...''

''नहीं, नहीं वह बात नहीं है। मेरे मन में भी एक डर सा बैठ गया था। मुझे लगा कि अगर कार में बैठे-बैठे तुम्हें कुछ हो गया या फिर... मैं तुम्हें अपने सामने...। ''

''अरे हीरालाल, छोड़ो यह सब पुरानी बातें। चलो आज, तुम्हारी मारुति में वापिस शास्त्री नगर जाएँगे। तुम्हारा कौल भी रहेगा और वहाँ रानी के हाथ से बनी चाय, फिर से, एक साथ पियेंगे।''

पप्पू जी काउंटर से वापिस आया और इन दोनों मित्रों को चलने के लिए कहा।

''सारा काम हो गया ना?''

''जी, पापा।''

शिबन ने मैनेजर तथा काउंटर पर बैठी लड़की को धन्यवाद दिया।

'बेटे तू चल, मैं हीरालाल के साथ घर आऊँगा।'

पप्पू जी ने दोनों की तरफ देखा और मुस्कुराया। वह उनकी भावना समझ रहा था। स्वीकृति में सिर हिलाया और वह स्कूटर स्टेण्ड की तरफ चला गया।

हीरालाल अपने मित्र शिबन का हाथ पकड़कर उसे धीरे-धीरे अपनी कार की तरफ ले गया, जैसे बरसों पहले बिछड़ा कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को ले जा रहा हो।

सम्पर्क : .....

अमर चड्ढा

इंडोनेशिया चलोगी

संजय ने ऑफिस से आकर मुझसे पूछा। संजय तो अपने रूम में चले गए लेकिन मैं कॉफी बनाती सुदूर बाली की ख़ूबसूरती में खो गयी। नुसा दुआ की ख़ूबसूरत क्रिस्टल क्लियर अथाह जलराशि, लोविना में डॉल्फिन वॉच, उबुद का मंकी फ़ॉरेस्ट, साइक्लिंग, मार्किट सब आँखों के सामने छा गया। समुद्री किनारे चट्टान पर बना तान्हलूत मंदिर जहाँ मानो समुद्र चरण पखारने हर बार दोगुने उछाह से आता हो। भव्य बिसाकिह मंदिर जिसे बाली का मदर टेंपल कहा जाता है। कूटा का सनसेट जहाँ शाम की सुनहरी किरणें एक रुहानी और रूमानी सफ़र का आग़ाज़ करती हैं। एक से बढ़कर विहंगम दृश्य मानो वहाँ की प्रकृति सुंदरी की अँगूठियों में पन्ने के बड़े नगीने जुड़े हों और सिर पर लहरों का लहराता ताज रखा हो। हम हनीमून पर इंडोनेशिया जो गए थे।

अनगिनत ऐसी जगहें जिनकी ख़ूबसूरती ही बयाँ नहीं हो सकती। बाहर की दुनिया के मुक़ाबले प्रकृति के आँचल में शांति और सुकून भरी जिंदगी का एहसास करने वाला, एक धड़कता हुआ दिल 'आइलैंड ऑफ़ पीस'।

कहाँ खो गयीं?

'उन ख्यालों से बाहर आओ। ये यादें सिर्फ़ तुम्हारी अकेली की नहीं हैं।'

संजय ने किचन में आकर मेरी पीठ पर हल्के से हौल मारते हुए कहा–इस बार हम जा रहे हैं साउथसूलेवासी के ताना तोराजा।

संजय एक न्यूज़ चैनल में काम करते हैं। देश–विदेश के प्रसिद्ध टूरिस्ट स्थानों कस्बों जनजातीय जीवन प्रथा, रीति–रिवाज़ों के संबंध में रिसर्च और शूटिंग के सिलसिले में कई दफ़ा महीनों बाहर रहा करते हैं।

अच्छा जी, वर्ल्ड फ़ेमस साइट्स पर तो लेकर नहीं गये?

अब इस जगह ऐसा क्या ख़ास है कि जनाब को एक महीने पहले का नोटिस मिल गया। वैसे भी आपका तो एक सूटकेस पहले ही पैक रहता है।

हाँ, क्योंकि यह जगह अपनी अनोखी प्रथा के लिए विश्वविख्यात है और जुलाई से सितंबर माह में इस परम्परा को देखने के लिए पूरी दुनिया से लोग यहाँ आते हैं। सदियों पुरानी प्रथा को यूनेस्को हेरिटेज में शामिल किया गया है। जल्द इसलिए बता दिया ताकि तुम अपने डिपार्टमेंट स्टोर से छुट्टी ले सको।

अब यह भी बता दो ऐसा क्या शूट करने जा रहे हो?

जैसे प्रकृति की छटाएँ हर जगह अलग नज़ारे रचती हैं वैसे कुछ रीति-रिवाज़, परम्पराएँ भी अभी वैज्ञानिक कारणों से देश काल, वातावरण, ज़रूरत या फिर किसी पूर्ववर्ती कारण माइथोलॉजी या विश्वास के चलते अनोखी रोचक और यूनिक हो जाती हैं। यहाँ हर तीसरे साल में अपने पूर्वजों को जोममीफ़ाइड किए होते हैं। कॉफ्रिन से निकालकर साफ़ कर नए कपड़े पहनाते हैं। शहर की सैर करवाते हैं और वापस रखते समय उनकी पसंद का या ज़रूरत का सामान सिगरेट पैसे गिफ़्ट रखते हैं। इसे मानेने कहते हैं। क्लीनिंग कॉरपस कह लो या वॉकिंग डेड मैन।

संजय ने विस्तार से बताया।

'ओह माय गॉड' मुझसे तो बीमार जानवर भी नहीं देखे जाते। ना बाबा मुझे तो सोचकर घबराहट हो रही है। ये कैसा टूरिज़्म अट्रैक्शन है? मैंने जवाब दिया।

सिम्मी चलो ना। मैंने तो तुम्हारे लिए स्पेशल परमीशन ली है। एक काम करते हैं तुम्हारी ओपन टिकट करवाता हूँ तुम्हें वह जगह पसंद न आए तो आसपास घूम लेना और नहीं तो इंडिया चले जाना। हाँ तुम्हें फ़्लाइट्स चेंज करनी पड़ेंगी।

कर पाओगी?

मेरी आँखें चमक उठीं। शादी के दो साल बाद अपने वतन जाने का मौक़ा मिल रहा है।

संजय ने आगे कहा मैं वहाँ से काम ख़त्म कर तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा।

ओह ये सरप्राइज़ है। मैं मुस्कुरा उठी।

देख लो कर पाओगी का साफ़ मतलब था ट्रैवल लाइट। कम से कम सामान जितना कंधे उठा सकें। पर मैंने तो अपने भाई-बहन कज़िन रिश्तेदारों के लिए पिछले वर्ष फ़रवरी व क्रिसमस के समय से ही ढेर सारा सामान उनके द्वारा भेजी लिस्ट से जमा कर रखा था।

ज़्यादा मत सोचो अपना सारा सामान मेरे सूटकेस में रख देना।

मैं मुस्कुरा पड़ी। हम एक-दूसरे की कितनी ही अनकही बातें यूँ ही इशारों से समझ जाते थे। कुछ बातें छोटी होती हैं लेकिन रिश्तों पर गहरा असर कर रंग चढ़ा जाती हैं।

सेन फ्रांसिस्को से बाली लंबी उड़ान और स्टॉप ओवर फ्लाइट्स लेकर मकसर पहुँचे। संजय को नथकान थी न जेटलेग। संजय व साथ आए टीम के लोग कुछ ज़रूरी काम करने चले गए लेकिन मैं होटल रूम पहुँचकर बाहर जाने की हिम्मत न कर पाई।

सुबह संजय ने देर से जगाया। पैकिंग पहले ही कर रखी थी। ब्रेकफास्ट कर टोना टोराजा के लिए रवाना हो गए। रास्ते में प्रकृति की छटा सफ़र की थकान मिटाते चल रही थी। आधा सफ़र नज़ारा देखते कटगया और बाक़ी थकान के कारण झपकियाँ लेते हुए। देर शाम तक होटल पहुँचे। सुबह तैयार होकरबाहर लॉबी में देखा तो विदेशी सैलानी थे जो अपना कैमरा वीडियो आदि साज़ों-सामान लेकर तैयार थे। ज़्यादातर टूरिस्ट यूरोपीय व ऑस्ट्रेलियन थे।

संजय ने आँखों से इशारा किया 'टूरिस्ट अट्रैक्शन'

मैं आज वहाँ नहीं जाऊँगी। यहीं आस पास घूम...?

सम्पर्क : .....

यामिनी नयन गुप्ता

उठाईगीर

अरे भैया! तुम भी लो ना लड्डू!

ये कहते हुए शेफाली ने मिठाई का डिब्बा सुखदेव के आगे बढ़ा दिया।

सुखदेव जरा हिचकिचाया और दो लड्डू उठा लिए।

शेफाली खिलखिला उठी...

'कितना शर्माते हो भैया! और दो लड्डू उसके हाथों में थमा दिए।

सुखदेव मिस्त्री है गत एक वर्ष से सुखदेव, रामसरन, कुँवरपाल, प्रेमपाल और बवंडर की मेहनत के कारण ही आज शेफाली का डुप्लेक्स... सपनों का घर बनकर तैयार हो गया है।

'ओफ्फफफफाइनली!

एक साल में दो मंजिला घर का स्ट्रक्चर ही तैयार हो पाया है। मिस्त्री मजदूरों का काम आज खत्म हो गया है।' कहते हुए शेफाली ने लंबी गहरी साँस ली और फूँक मार कर अपने गोल चेहरे पर आती हुई बालों की एक लट पीछे हटा दी।

पर इतने भर से बदमाश लट कहाँ मानने वाली थी। वो शरारती लट फिर से उसके होंठों और गालों को चूमने लगी। शेफाली ने झट से अपने बालों को समेटा और उन पर क्लचर लगाकर गुस्ताख बालों की अठखेलियों पर ब्रेक लगा दिया।

थोड़ी सी साँवली पर तीखे नैन नक्श वाली 28 वर्षीया शेफाली की खुशी का आज ठिकाना न था। आज सारे मिस्त्री मजदूरों का इस घर में आखिरी दिन है। कल से ठेकेदार के दूसरे प्रोजेक्ट पर काम करेंगे ये सभी।

शेफाली! शेफाली!

समन्वय ने आवाज लगाई। देखो सब लोग जा रहे हैं। तुम इन सबके लिए कुछ गिफ्ट भी लाईं थीं ना। वह सबको देने हैं या नहीं।

शेफाली अपनी खयाली दुनिया से बाहर आ गई। बड़े चाव से वह बाजार से दस शर्टें लेकर आई थी। सफेद, हरी, लाल और नीली भी। उसने अक्सर नोटिस किया था कि लेबर क्लास के लोग चटख गुलाबी या नीले रंग की शर्ट पहनते हैं और सुखदेव तो हमेशा ही नीली शर्ट पहनकर आता है।

शायद इन लोगों को नीला आसमान बहुत भाता है या फिर चौथी-छठी क्लास तक पढ़े गाँव के इन लड़कों के जीवन में स्कूल के यूनीफॉर्म का नीला रंग ही रच-बस गया है।

समन्वय ने उसे रोका भी था। क्या जरूरत है सबके लिए कपड़े लाने की। घर बनाना तो उनका काम है। इसमें नया क्या है और उनके साइज की शर्टें कैसे लाओगी?

पर शेफाली भला कहाँ मानने वाली थी।

'कोई बात नहीं मैं मैनेज कर लूँगी सब, मिस्त्री लगभग एक ही जैसे डील-डौल के हैं। मेहनतकश मजदूर आज तक कभी तंदुरुस्त हुए हैं भला। औसत कद-काठी के सभी लोग एक जैसे ही हैं।

शेफाली के सपनों का घर बनाने की जिम्मेदारी तो समन्वय ने मौके पर प्लाट लेकर बखूबी निभाई। पर रजिस्ट्री कराने के बाद जान-पहचान का आर्किटेक्ट और ठेकेदार नियुक्त कर उसने हाथ खड़े कर दिए।

'अपनी जॉब के बिजी शेड्यूल के चलते मैं कंस्ट्रक्शन का काम ज्यादा देख नहीं पाऊँगा। तुम तो जानती ही हो मेरी टूरिंग जॉब है। कभी यहाँ तो कभी वहाँ। मेरे लिए यही समय है कुछ कर दिखाने का।'

पर! पर शेफाली ने कुछ कहना चाहा।

तुम्हारी इच्छा थी कि ड्यूप्लैक्स घर हो, अपने अनुसार बनवाओ अपनी देख-रेख में और शौक से अपना घर सजाओ। फाइनेंस की कमी नहीं आने दूँगा मैं।

मुझे असिस्टेंट मैनेजर की पोस्ट तक पहुँचना है। मार्केटिंग और टारगेट की टेंशन में घर का काम देखना मुझसे ना हो पाएगा।

समन्वय से सहमत होने के अलावा शेफाली के पास कोई और विकल्प नहीं था।

जिस प्लॉट पर डुप्लेक्स बन रहा था उस घर से लगा हुआ ही शेफाली समन्वय का वह घर था जिसमें वह दोनों रह रहे थे। पर यह घर पुराने तरीके का बना हुआ है तो शेफाली का ड्यूपलैक्स घर का सपना पूरा करने के लिए मौका मिलते ही समन्वय ने अपने घर के पास का ही प्लॉट ले लिया और कागजी कारवाही पूरी कर निर्माण कार्य शुरू करा दिया। डुप्लेक्स के पूरा हो जाने पर दोनों घरों के बीच की दीवार निकाल के शीशे का बड़ा दरवाजा लगा कर दोनों घर एक कर देने का विचार था उनका।

फिलहाल दोनों घरों की छतें एक हो गयी थीं और इधर से उधर आना-जाना आसान हो गया था। और आज फाइनली मिस्त्री मजदूरों का काम पूरा हो गया।

बस टाइल्स और पत्थर लगाने का काम बचा है। वायरिंग और मॉड्यूलर किचन का काम तो ठेके पर दे दिया है। बस सुपरविजन का ही काम बचा है।

'शेफाली! शेफाली! मेरा बैग पैक कर दिया तुमने?' 'कल मुझे ग्वालियर जाना है। मेरी जरूरी मीटिंग है वहाँ क्लाइंट के साथ। सुबह ही फ्लाइट है मेरी' समन्वय ने उसे आवाज लगाई।

हाँ! हाँ! सब सामान रख दिया है हमेशा की तरह और तुम्हारा ट्रिमर भी रख दिया है। पिछली बार तुम छः दिनों के लिए गए थे और अपना ट्रिमर यहीं भूल गए थे, कितनी परेशानी हुई थी तुम्हें याद है ना!

'हाँ जाना सब याद है', कहते हुए समन्वय ने उसका हाथ थामकर अपनी ओर खींच लिया।

अरे! अरे! आज बहुत थक गई हूँ मैं। सुबह 8:30 बजे ही लेबर आ जाती है। मुझे भी पूरा दिन हो जाता है उनका काम का देखते हुए। कभी महेश पाल आवाज लगाता है- 'भाभीजी! देख लो, मैं फर्श का लेबल निकाल रहा हूँ और कभी रामसरन। शेफाली ने उसे टालना चाहा।

अगली सुबह ही समन्वय चले गए अपने ट्रिप पर।

शेफाली आज देर तक सो लेना चाहती थी। रात का खुमार उसके जिस्म पर अभी तक बाकी था।

टाइल और पत्थर लगाने वाली टीम में महेशपाल, सोनू और बंटी हैं और कुछ मजदूर भी। सभी की उम्र 25-28 की है। दो मजदूरों की उम्र कुछ ज्यादा है। एक मजदूर तो साठ साल का है। इस उमर में उसे इतना शारीरिक श्रम करते देख शेफाली का मन भर-भर आता है। दिन में तो दो बार चाय बनाकर देने के अलावा, वह कभी-कभी उन्हें पैसे भी दे देती है समोसे लाने के लिए। सूखी रोटी सब्जी खाने वाले मेहनतकश लोग खुश हो जाते और मन लगाकर काम करते थे।

शेफाली सबसे बातें भी कर लेती थी। ज्यादातर सभी के पास छोटे-छोटे खेत थे। परंतु खेती से पूरा ना पड़ने के कारण मिस्त्रीगिरी और पत्थर लगाने, पत्थर घिसाई आदि का काम करने लगे थे। पर बरसात के दिन में धान लगाने और फसल की कटाई के समय पर यह लोग शहर नहीं आते, गाँव में रहकर खेती-बाड़ी करते हैं।

सरल मन के महेशपाल और सोनू को तो वो अपनेपन से डाँट भी देती थी। दोनों ही बहुत गुटखा और सुरती चूना खाते थे।

एक बार उसने टोक दिया था दोनों को 'तुम दोनों तो कुछ पलों के मजे के लिए तम्बाकू खा लेते हो। पर कभी सोचा है कि तुम्हें कुछ हो गया तो तुम्हारा परिवार कौन पालेगा?'

अरे भाभी हम शौकिया कभी-कभी खा लेते हैं। हमें भी लत नहीं है इसकी। मुँह में कुछ स्वाद आता रहता है तो काम में मन लगा रहता है। घर जाकर नहीं खाते हम लोग।

आपको पता नहीं है पहले गाँवों में अक्सर लोग सुरती खाते थे। तम्बाकू की सूखी पत्ती लेकर काटकर रख लेते थे। जो लोग लबड़े हत्था होते थे उनकी अलग बात है, नहीं तो आमतौर पर लोग बाएँ हाथ की हथेली पर तंबाकू रखते थे और दाहिने हाथ के अँगूठे से रगड़ते थे। तंबाकू पर ही थोड़ा सा चूना भी रख लेते थे और रगड़ जाने के बाद में हथेली से पीटकर अतिरिक्त चूना और गर्द उड़ा देते थे। चुटकी में लेकर दाँत और होंठ के बीच में रख लेते थे तंबाकू।

भले ही उन्हें पता नहीं था लेकिन इस सारे प्रोसेस में हाथ के वह प्रेशर प्वाइंट दबते थे जो कब्ज़ को खत्म करते और पेट साफ रखते थे। उसके बाद लोटा लेकर दो-तीन किलोमीटर खेतों में जाकर फारिग होकर आते थे। इसमें मॉर्निंग वॉक भी हो जाती थी। अब तो आदमी चाय पीता है या फिर गुटखा खाता है और बेड से चार-छः-फीट की बाथरूम की दूरी तय करता है। ऐसे में पेट साफ नहीं होगा तो वह भी शिकायत है।

देखा तो यह गया है कि पचास प्रतिशत जनता पेट की परेशानियों से जूझ रही है। तो तंबाकू भले ही ना खाएँ लोग लेकिन बाएँ हाथ की हथेली दाएँ हाथ के अँगूठे से जरूर रगड़िये, पेट की तमाम परेशानियों से मुक्ति मिलेगी। पान में अथवा कत्थे या तम्बाकू के साथ अल्प मात्रा में चूना खाने से कैल्शियम की कमी भी दूर होती थी।

भाभी अब हम गरीब लोगों के लिए तो कैल्शियम की महँगी गोलियाँ बजट से बाहर हैं।

कहकर वो हँस दिया था।

जीवन के संघर्षों में भी हर बात को हवा में उड़ा देने की यही आदत शेफाली को बहुत पसंद है। तनाव से मुक्त जीवनशैली और विपरीत परिस्थितियों में भी उत्कट जिजीविषा आज के मध्यवर्गीय लोगों

को कहाँ हासिल है।

फिर भी शेफाली की बात का लिहाज रखते हुए सोनू और महेशपाल भरसक कोशिश करते थे कि शेफाली के सामने गुटखा वगैरह ना खायें।

'भाभी! आज तो जलेबी खानी का मन कर रहा है जरा 50 रु. तो दो' महेश बोल उठा।

नीली जींस पर सफेद शार्ट कुर्ती पहने शेफाली आज ज्यादा ही खूबसूरत दिख रही है। उसने झट से जींस की जेब से सौ का नोट निकालकर महेशपाल को पकड़ा दिया।

'जलेबी ही क्यों समोसे भी मँगा लो, आज मैं भी खाऊँगी। आप सबने आज बहुत मेहनत की है। लाल इटालियन रोज़ मार्बल के बड़े-बड़े दो पीस इन लोगों ने दूसरे फ्लोर तक पहुँचाए हैं। ले जाते समय एक मजदूर का पाँव सीढ़ियों पर पड़े तार में फँस गया था। पर उसने पत्थर नहीं गिरने दिया, अन्यथा काफी नुकसान हो जाता।

कोमल मन की शेफाली से मजदूरों का रोजी-रोटी का संघर्ष और दुख देखा नहीं जाता था। अक्सर वह समन्वय के पुराने जूते और कपड़े भी मजदूरों को दे देती थी।

'शेफाली, शेफाली! मेरा वह ब्लू ट्राउजर नहीं मिल रहा है, कहाँ रख दिया है।'

रात के 10:00 बजे भी शेफाली के काम अभी नहीं सिमटे हैं। किचन समेटते हुए वो बोली-

'वहीं कबर्ड में रखा है, ठीक से देख लो ना समन्वय!'

नहीं है यार! मेरा नया ग्रे ट्राउजर भी बहुत दिनों से नहीं दिख रहा है, क्या कुछ कपड़े ड्रायक्लीन को गए हैं?

तौलिए से हाथ पोंछते हुए शेफाली ही बेडरूम में कदम रखा। ट्राउजर तो मैंने भी नहीं देखा है, कई दिनों से। कहते हुए शेफाली भी कबर्ड में समन्वय के कपड़े ढूँढ़ने लगी। कुछ देर बाद वह बोली...

'कल दिन में ढूँढ़ दूँगी, अभी यह नाईट सूट पहन लो। कब से नहीं पहना यह तुमने' कह वह बेड पर लेट गई।

'तुमसे मैंने कितनी बार कहा है कपड़े ऊपर छत पर मत डाला करो। घर में इतनी लेबर काम कर रही है। क्या पता किसकी नीयत कैसी है पर तुम तो मेरी सुनती ही नहीं हो।'

शेफाली को समन्वय की यही बातें पसंद नहीं हैं। उन्हें तो हर गरीब चोर ही नजर आता है। अपनी जीविका के लिए वह मेहनत मजदूरी करते हैं, हाड़-तोड़ मेहनत करते हैं। तपतपाती गर्मी, सर्द दिनों में भी काम करते हैं। हमारे सपनों का घर बनाते हैं और ताउम्र रहते हैं कच्चे और छोटे-छोटे घरों में। अपनी मेहनत की रोटी खाते हैं, कम से कम कुछ तो इज्जत किया करो उनकी।

'हमेशा की तरह तुम जानो तुम्हारा काम जाने' कहकर समन्वय दूसरी ओर मुँह करके सो गए।

सावन का सोमवार होने के कारण आज सारी लेबर छुट्टी पर थी। शेफाली का भी व्रत है तो पूजा पाठ करके फलाहार कर लिया उसने। समन्वय भी शहर से बाहर गए हैं। आज अपना पसंदीदा उपन्यास पढ़ूँगी मैं।

डोर बेल बज उठी।

'उफ्फ! आज यह कौन आ गया।' शेफाली अलकसाई।

फिर भी देखने तो जाना ही था। उसने बालकनी से झाँक कर देखा। नीली शर्ट और ग्रे ट्राउजर पहने महेशपाल आया था, अपनी बाइक से। महेश पाल की शादी हुए भी चार-पाँच साल हो गए हैं। गाँव में शादी

में दहेज में लड़के को बाइक देने का रिवाज आम है। कम उम्र में ही लड़के-लड़कियों की शादी हो जाती है और लड़के शान से अपनी कमसिन, घूँघट डाली बीबी को बाइक की पिछली सीट पर बैठा कर अपने घर से ससुराल तक का फेरा लगाते हैं और बड़े चाव से उसे राखी और भाई दूज पर उसके मायके ले जाते हैं।

अरे महेश आज कैसे शहर आना हुआ तुम्हारा?

भाभी जी किसी काम से शहर आया था मैं तो मेरी घरवाली ने 8-10 बेल एक थैले में करके मुझे पकड़ा दिए कि बीबी जी को बहुत पसंद हैं। ले जाओ... वो मन से खा लेंगी।

'अच्छा!' शेफाली खुश हो गई।

छत से उतरकर नीचे आई और मेन गेट खोल दिया।

घुँघराले बाल वाले नाटे से कद के साँवले महेश ने उसे थैला पकड़ा दिया।

शेफाली की नजर उसकी नीली शर्ट पर होते हुई ट्राउजर तक गयी।

'अरे! यह तो बिल्कुल समन्वय का ही ट्राउज़र है।' उसके मन में शक और अविश्वास का फन फनफनाया।

महेशपाल थैला देकर जा चुका है पर शेफाली का मन उचाट हो गया। इतना फरेब, इतना धोखा! मैं तो गाँव के इन लोगों को कितना सरल और निश्छल समझती रही और ये लोग अपनी आदतों से बाज नहीं आते। छत पर सुखाने के लिए डाले गए कपड़ों में से ना जाने अब तक कितने कपड़े चोरी हो गए होंगे और मुझे पता ही नहीं चला। समन्वय सही कहते हैं, गरीब मजदूरों की नियत का कोई भरोसा नहीं है। सबके सब चोर और उठाईगिरे होते हैं। शेफाली का मन कसैला हो गया।

अगले ही दिन से फर्श पर मार्बल का काम फिर से शुरू हो गया। काम समाप्ति पर ही था अब।

शेफाली कुरसी पर बैठकर उन सबको काम करते हुए देख रही है। मिस्त्री मजदूर आपस में बातें कर रहे हैं। क्यों रे महेश पाल! कैसी तबीयत है अब तेरी घरवाली की? उसके बच्चा होने को है ना! बूढ़े मजदूर ने सीमेंट से भरी परात उसके करीब रखते हुए पूछा।

हाँ चाचा! उसकी तबियत ठीक ना है। शहर की ही डॉक्टरनी को दिखाया है। उसे खून की कमी बताई है डॉक्टर ने। उस पर भी वह उस खाती-पीती नहीं है।

अब बताओ! अपना काम धंधा छोड़ कर क्या मैं घर पर बैठ के उसे अपने हाथों से खाना खिलाऊँ?

यह तो है लल्ला!

उसे अपना ख्याल खुद ही रखना चाहिए।

'मैं भी इधर बगैर नागा किए काम कर रहा हूँ कि कुछ पैसे जुड़ जाएँ तो जच्चगी के समय काम आएँगे। कहीं ऐन बखत पर अगर ऑपरेशन कराना पड़ा तो कहाँ से लाऊँगा मैं पैसे।' महेश पाल ने दूरदर्शिता दिखाई।

'हम्म!'

कहते हुए दोनों अपने काम में लग गए।

शेफाली का फोन बजा तो उसकी तंद्रा भंग हुई। समन्वय का फोन है 'हेलो शेफाली!'

अपना ही नाम किसी खास आवाज़ में कैसा आकर्षक लगता है न, कितना मोहक, कितना मधुर! मन करता है, वह कोई पुकारता ही रहे, हम सुनते ही रहे।

लगता है खुद का नाम नहीं कोई चुम्बक हो, कोई अकुशा हो जिससे पकड़ मन खींच लिया जाता है। 'तो मानो यह उसकी कामना भर न हो। सुनते-सुनते हम भी उनके सुर में अपना सुर मिला, किसी से यूँ अनुनय कर बैठे हों कि हमको हमारे नाम से पुकारो, अच्छा लगता है।

फिर ये भी तो जाने क्यूँ हुआ करता है कि किसी की आवाज़ में अपना नाम लगता है।

शेफाली! शेफाली!

हैलो! हैलो!

हाँ बोलो ना समन्वय!

मैं कब से हैलो, हैलो कर रहा हूँ। तुम भी जाने कहाँ गुम हो जाती हो।

अच्छा सुनो! रात को डिनर पर मेरे बॉस अपनी पत्नी के साथ आ रहे हैं। तुम चिली पनीर और मटर मशरूम बना लेना। बॉस खुश हो जाएँगे।

पर! पर! मैं घर बंद करके कैसे जाऊँ यहाँ तो लेबर काम कर रही है।

'ऐसा करो। एक बजे वो सब लोग खाना खाने बैठ जाते हैं। तुम घर बंद करके स्कूटी से चली जाना। एक घंटे में वापस भी आ जाओगी और सुनो घर का गेट और छत का दरवाजा भी बंद करके जाना। इन लेबर के लोगों को कोई भरोसा नहीं है।'

'ठीक है' शेफाली को यह बात जँच गई।

समन्वय के पास हर मुश्किल का समाधान रहता है। ग्रे पाजामे के गुम होने वाली बात उसने समन्वय को नहीं बताई थी। खामखाँ वो शेफाली पर तंज कसता देखो मैं ना कहता था, इन पर दयालु होने की कतई जरूरत नहीं है। उधर समन्वय भी अचरज में था कि आज लेबर के बारे में मेरे कुछ कहने पर शेफाली बिगड़ी नहीं पर कुछ सोच कर ही चुप रह गया वो।

एक बजे शेफाली ने अपना पर्स लिया, घर ठीक से लॉक किया। उसने स्कूटी घर से बाहर निकाली। नए घर में आकर देखा सब मिस्त्री मजदूर खाना खाने बैठ गए हैं तो निश्चिंत होकर स्कूटी स्टार्ट कर जल्दी पास के डिपार्टमेंटल स्टोर पर चली गयी। आधे घंटे में ही उसकी खरीदारी पूरी हो गई। वहाँ से उसने दाल के पापड़ भी ले लिए और कुछ फ्रूट्स भी। बाजार की आइसक्रीम मँगाने की जगह फ्रूट कस्टर्ड बना लूँगी। समन्वय को भी बेहद पसंद है उसने मन में सोचा।

यही नाप तोल करती हुई वह अपने घर को लौट रही है। अचानक मोड़ पर बिना हार्न दिये तेज रफ्तार बाइक उसके सामने आ गई।

चर्र! चर्र! लगाते-लगाते भी बाइक उससे टकराती हुए आगे निकल गई। लेकिन शेफाली का बैलेंस बिगड़ गया। स्कूटी सड़क पर पलट गई थी और शेफाली भी जमीन पर गिर पड़ी। सड़क की रगड़ से उसकी कोहनी और पैर छिल गए। माथे से भी खून बहने लगा। स्कूटी पर आगे टँगा सब समान सड़क पर फैल गया। थैला गिर जाने से उसका पर्स और फल भी सड़क पर तितर-बितर हो गए।

एक संभ्रात महिला के गिर जाने से आसपास कुछ लोग एकत्रित हो गए पर उनमें से अधिकांश

तमाशबीन ही निकले। कोई भी मदद करने का उपक्रम करता हुआ नहीं दिखा उसे।

शेफाली ने मुँदती हुई आँखों से किसी परिचित को आते देखा।

अरे भाभी जी! आप!

मूर्छित होने से पहले यह शब्द उसके कानों में पड़े। कोई उसे बाँहों का सहारा देकर उठा रहा था।

आओ भाई! आओ जरा हाथ लगाकर इन्हें ऑटो में बैठा दो।

ऐ भाई! एक ऑटो रोको तो जरा, पास ही के हॉस्पिटल में ले जाना है इन्हें।

शेफाली की आँखें खोलीं तो खुद को हॉस्पिटल के बेड पर पाया।

ओफ्फफफ दर्द की लहर सी उठी।

उसने अपना माथा छूकर देखा, वहाँ अब पट्टी बँधी है। हाथ और कलाई की चोटें भी टीस दे रही हैं।

'तुम्हें होश आ गया शेफाली! भगवान का शुक्र है मैं तो घबरा ही गया था तुम्हारे एक्सीडेंट की खबर सुनकर' कहते हुए समन्वय उसका हाथ थाम कर पास ही बैठ गए।

'तुम्हें! तुम्हें किसने बताया?' कमजोर सी आवाज में शेफाली ने पूछा।

महेश पाल लंच के बाद अपनी बीवी के लिए दवाई लेने गया था। रास्ते में उसने सड़क पर भीड़ लगी देखी तो रुक गया। तो सड़क पर तुम्हारी स्कूटी पड़ी देखकर चौंक गया और तुमको घायल देख कर तो वो डर ही गया। पर उसने हिम्मत और समझदारी से काम लिया।

पहले तुम्हें सँभाला, फिर तुम्हारा सामान समेटा।

'मेरा! मेरा पर्स और मोबाइल!'

चिंता मत करो!

एक उठाईगीरा तुम्हारा पर्स उठाकर ले जाने की कोशिश कर रहा था। महेश पाल की नजर ना पड़ती तो वह तुम्हारा पर्स लेकर चंपत ही हो जाता।

उठाईगीरा!

शब्द पर शेफाली ठिठक गई।

महेश पाल भी तो ...या नहीं!!

यदि ऐसा होता तो वो उसका मोबाइल और पर्स वापस ही क्यों लाता। खुद ही नहीं रख लेता। सबसे बड़ा प्रश्न तो यह है कि वह उसकी मदद क्यों करता। उसे घायल पड़ा देखकर भी आगे बढ़ जाता तो किसी को क्या पता चलता और मैं बेसहारा ही वहाँ सड़क पर जाने कब तक पड़ी रहती। फोन भी उठाईगीरा उठा कर ले जाता तो कोई और भी कैसे मदद कर पाता। कुछ भी हो उसे याद हो आया महेश पाल के प्रति अपना असंवेदनशील रवैया।

उसकी बीबी के अस्पताल में एडमिट होने पर जब महेश पाल ने अपने मेहनताने के पैसे माँगे थे तो शेफाली ने कितनी बेरूखी से कह दिया था 'आज घर में इतने पैसे नहीं हैं'।

बेचारे ने अपनी बीबी की डिलीवरी के समय खर्च के लिए अपनी मजदूरी के पैसे शेफाली के पास ही जमा कर रखे थे। इस विश्वास के साथ कि आड़े बखत में जब भी जरूरत होगी तो वो दे देंगी।

'ना जाने कहाँ से पैसे माँग-माँग कर उसने अस्पताल में जमा किए होंगे' शेफाली को खुद पर

ग्लानि सी हुई।

गरीब होना क्या इतना बड़ा पाप है कि उसके सामने व्यक्ति की ईमानदारी, मेहनत और निश्छलता ...सब ढोंग नजर आती है।

'पर! पर ...समन्वय के वो गुम हुए कपड़े!'

उसके अंतर्मन ने उसे फिर से भटकाने की कोशिश की। पर कृतज्ञता के बोझ से दबी शेफाली ने झट से अंतर्मन पर उपेक्षा का एक भारी पत्थर धर दिया और आँखें बंद करके लेट गई।

उस रात घर पर बॉस का डिनर स्थगित कर दिया गया। क्षमा याचना सहित बॉस को पूरी स्थिति से अवगत करा दिया। सुहृदयी बॉस ने फोन करके दो बार शेफाली की कुशलक्षेम भी पूछ ली।

शेफाली अगले ही दिन हॉस्पिटल से डिस्चार्ज हो कर घर आ गई थी पर चलने में अभी भी उसे कष्ट था। गनीमत थी कि कहीं फेक्चर नहीं हुआ था। डॉक्टर ने उसे कुछ दिन बेड रेस्ट की सलाह दी थी।

समन्वय ने फुल टाइम कामवाली रख दी। जो सुबह से लेकर शाम समन्वय के घर आने तक उसके साथ ही रहती थी। घर का निर्माण कार्य कुछ दिनों के लिए बंद करा दिया। शेफाली ही जब बिस्तर पर पड़ी है तो काम कौन देखता भला। समन्वय को ऑफिस से छुट्टी तो नहीं मिली पर शाम को जल्दी घर आ जाते हैं। विशेष अनुकंपा दिखाते हुए बॉस ने उसे किसी और ट्रिप पर भी नहीं भेजा।

'बीवी जी! यह देखिए!

'आपके बेड के पीछे से कितना सामान निकला है' ममता ने आवाज लगाई।

बेड पर लेटी शेफाली ने नजर उठा के देखा।

दो पजामे एक बेल्ट और एक जोड़ी मोजे भी। इतना सामान बेड के पीछे गिरा पड़ा था।

शेफाली जैसे यथार्थ के कटु धरातल पर आ पड़ी। समन्वय का नया ग्रे और लाल रंग का पाजामा और अन्य छोटी-छोटी चीजें उसको मुँह चिढ़ा रही थीं।

और! और वह अब तक महेश पाल को ही चोर समझ रही थी। हालाँकि मजदूरों के प्रति नकारात्मक भाव रखना उसके स्वभाव में नहीं था लेकिन अपना आँखों-देखा वह कैसे भूल जाती। पर! पर ...महेश पाल उस दिन जो ग्रे कलर का पाजामा पहनकर आया था। तो क्या हुआ? बाजार में एक जैसे कितनी कपड़े मिलते हैं।

'क्या मेहनतकश गरीब को अच्छे कपड़े पहने का भी हक नहीं हैं' उसके अंतर्मन ने ही उसको लताड़ा।

ममता ने बेड के पीछे निकले सारे कपड़े बाहर ले जाकर झाड़े और धुलने के लिए वॉशिंग मशीन में डाल दिए। कपड़ों के साथ-साथ शेफाली के मन का मैल भी धुल रहा था।

अबकी दशहरे पर महेशपाल और उसकी बीवी बच्चे को प्रेम से बुलाऊँगी मैं और यथायोग्य उपहार भी दूँगी। और मन ही मन उसने महेशपाल से क्षमा माँगी। उसे गलत समझने के लिए।

'कभी-कभी आँखों-देखा भी सच नहीं होता।'

अब वह भी कलुषित मन वाली शेफाली नहीं रही। पहले जैसी सीधी, सरल शेफाली बनकर अच्छा महसूस कर रही है।

सम्पर्क : यामिनी 'नयन' गुप्ता, मनु मोटर्स हम कांम्प्लेक्स, सिविल लाइंस, रामपुर 244901(उ.प्र.)
मो. 9219698120

सुरेश बाबू मिश्रा

आखिरी प्रणाम

रमनदीप उस झाड़ी की तलाश कर रहा था, जहाँ उसने बैग में अपना लैपटाप छुपा कर रखा था। रमनदीप को अच्छी तरह याद है कि उसने उस झाड़ी के पास बी का चिह्न बनाया था। बी का मतलब भारत। वह उस चिह्न को ढूँढ़ रहा था।

काफी देर तक तलाश करने के बाद आखिर उसे वह झाड़ी मिल ही गई। झाड़ी में छिपाए गए बैग में अपने लैपटाप को सुरक्षित देखकर उसके चेहरे पर एक अनोखी चमक आ गई थी। उत्सुकतावश उसने लैपटाप आन करके देखा। उसके द्वारा इकट्ठी की गई सारी गोपनीय सूचनाएँ एवं डाटाज पूरी तरह से सुरक्षित थे। यह देखकर उसकी सारी थकान उड़न छू हो गई और उसका पूरा शरीर एक अनोखे रोमांच से भर गया था। उसने अपना लैपटाप जिस बैग में रखा था उसे उठाकर पीठ पर टाँग लिया।

रमनदीप कुछ देर सुस्ताने के लिए वहीं जमीन पर बैठ गया। बीते दिनों की घटनाएँ चलचित्र की भाँति उसकी आँखों के सामने घूमने लगीं। रमनदीप सिंह भारतीय सेना के इंटेलीजेंस कोर का जांबाज जासूस था। उसे एक गोपनीय मिशन पर पाकिस्तान भेजा गया था। वह कई दिनों से भेष बदलकर पाकिस्तान में रह रहा था और बड़े गोपनीय तरीके से अपने मिशन पर काम कर रहा था। उसे पाकिस्तान आए दो सप्ताह से अधिक हो गए थे। उसे पाकिस्तान में चल रहे आतंकवादी शिविर के बारे में सूचनाएँ एकत्र करने के लिए भेजा गया था।

वह अपने मिशन में काफी हद तक कामयाब रहा। आतंकवादी कैम्पों की काफी सूचनाएँ एकत्र कर उसने अपने लैपटॉप में अपलोड कर ली थीं। वह एक सूफी फकीर की वेशभूषा में घूमा करता था, इसलिए किसी को उस पर कोई सन्देह नहीं हुआ था। परन्तु कल एक आतंकवादी शिविर का फोटो लेते हुए पाकिस्तानी पुलिस के एक जवान ने उसे देख लिया। उसे रमनदीप पर शक हो गया। तब से पाकिस्तानी पुलिस उसका पीछा कर रही थी।

किसी तरह से वह पुलिस के जवानों को चकमा देकर पी.ओ.के. के इस पहाड़ी इलाके में आकर छुप गया था। यह तो अच्छा हुआ कि उसने कुछ दिन पहले अपना लैपटाप वाला बैग पहाड़ी पर एक झाड़ी में छुपाकर रख दिया था जो आज उसे सही सलामत मिल गया। पाकिस्तानी पुलिस

अब भी उसे ढूँढ़ रही थी, इसलिए खतरा अभी टला नहीं था।

रमनदीप पंजाब प्रान्त के होशियारपुर जिले के एक गाँव का रहने वाला था। उसके पिता सेना के रिटायर्ड कर्नल थे। उन्होंने 1965 और 1971 के युद्ध में भाग लिया था और असाधारण शौर्य का प्रदर्शन किया था। रमनदीप ने देशभक्ति का ककहरा उन्हीं से सीखा था। उसकी माँ रमनदीप से बेहद प्रेम करती थी क्योंकि वह उनका इकलौता बेटा था। उसके पिता के पास काफी खेती भी थी और उनके परिवार की गिनती सम्पन्न परिवारों में होती थी।

रमनदीप के तीन बहिनें थीं, दो बड़ी और एक उससे छोटी। रमनदीप को ध्यान आया कि आज से लगभग एक महीने बाद उसकी छोटी बहिन रजवन्त कौर की शादी है। शादी में घर जाने के लिए उसने छुट्टी की एप्लीकेशन अपने आफीसर को इस मिशन पर आने से पहले ही दे दी थी।

तीन साल पहले रमनदीप की शादी हो चुकी थी। उसकी पत्नी सुरजीत कौर बेहद सुन्दर और शालीन थी। अपनी शादी के बाद इन तीन सालों में वह कुल मिलाकर बमुश्किल एक महीने ही घर पर अपनी पत्नी के साथ बिता पाया था, मगर सुरजीत कौर ने कभी कोई शिकायत नहीं की। उसने घर के कामकाज को बहुत अच्छी तरह से सँभाल रखा था और वह सबका बहुत ख्याल रखती।

रमनदीप सोचने लगा कि सेना के जासूस का काम कितना कठिन और चुनौतीपूर्ण है। उसे हर समय प्राण हथेली पर रखकर काम करना पड़ता है। दुश्मन की कब उस पर नजर पड़ जाए कुछ पता नहीं। उसका हर मिशन खतरों से भरा होता है। विडम्बना तो देखो उसके घर वालों या देश के लोगों को उसके जोखिमपूर्ण कार्यों की कोई जानकारी नहीं हो पाती है। मिशन अत्यन्त गोपनीय होने के कारण उसके कामों और उपलब्धियों के बारे में मीडिया में भी न तो कुछ छपता है और न चैनलों पर कुछ दिखाया जाता है। एक जासूस तो यही सोचकर हर समय खुश रहता है कि उसका पूरा जीवन भारत माता की सेवा में समर्पित है। रमनदीप ने सोचा कि इस मिशन को पूरा करने के बाद वह अपनी छोटी बहिन की शादी में गाँव जाएगा और कम से कम एक माह गाँव में ही अपनी पत्नी और परिवार के साथ बिताएगा।

वह इन्हीं ख्यालों में खोया हुआ था कि उसे एक फर्लांग दूर की झाड़ियों में कुछ हलचल सी दिखाई दी। वह चौकन्ना हो गया। उसने अपने मोबाइल में उस स्थान की लोकेशन देखी। भारतीय सीमा यहाँ से केवल बीस किलोमीटर दूर रह गई थी। उसने सूफी फकीर की वेशभूषा उतार दी और बैग में से निकालकर इण्डियन मिलिट्री इंटेलीजेन्स कोर की ड्रेस पहन ली। उसने अपने बैग को ठीक तरह से पीठ पर टाँगा और वहाँ से निकलने के बारे में सोचने लगा। जिधर झाड़ियों में हलचल दिखाई दी थी उसके विपरीत दिशा में वह कोहनियों के बल रेंगता हुआ आगे बढ़ने लगा। उसे ऐसा करने में बहुत कठिनाई हो रही थी मगर वह खड़े होने का खतरा मोल लेना नहीं चाहता था। उसके लिए वह लैपटाप और उसमें एकत्र डाटा सुरक्षित अपने हेड क्वार्टर पहुँचाना था। वह करीब एक घन्टे तक इसी प्रकार रेंगता रहा। अब वह उस स्थान से लगभग एक किलोमीटर दूर निकल आया था। उसकी श्वाँस फूल रही थी इसलिए वह कुछ देर तक वहीं बैठा रहा फिर उसने

खड़े होकर चारों तरफ देखा। चारों तरफ दूर-दूर तक सन्नाटा था। वह धीरे-धीरे भारतीय सीमा की ओर बढ़ने लगा। वह पूरी तरह से सतर्क था और सावधानी पूर्वक आगे की ओर बढ़ रहा था।

अभी वह तीन-चार किलोमीटर ही दूर पहुँचा होगा कि उसे तीन-चार पाकिस्तानी सैनिक टहलते हुए दिखाई दिए। शायद वहाँ कहीं आस-पास पाकिस्तानी चेक पोस्ट रही होगी। किसी तरह से उन सैनिकों की नजर से छुपता-छिपाता रमनदीप वहाँ से निकलने में सफल रहा। अब वह तेज कदमों से चलने लगा था। वह किसी तरह पाकिस्तानी सीमा को पार कर भारत की सीमा में प्रवेश कर जाना चाहता था। उसका मिशन पूरा हो चुका था और अब उसे अपने हेड क्वार्टर पहुँचकर यह लैपटॉप अधिकारियों को सौंपना था।

शाम का धुँधलका छाने लगा था। रमनदीप ने मोबाइल में एक बार फिर लोकेशन देखी। भारतीय सीमा अब केवल चार-पाँच किमी दूर रह गयी थी। रमनदीप तेजी से भारतीय सीमा की ओर बढ़ने लगा, तभी उसे चार-पाँच पाकिस्तानी सैनिक बिल्कुल सामने से आते दिखाई दिये। उनकी नजर शायद रमनदीप पर पड़ चुकी थी, वे सीधे उसी की ओर आ रहे थे। अब बचने का कोई रास्ता नहीं था। रमनदीप ने कुछ क्षण सोचा फिर उसने बैग से एक छोटा हैण्ड ग्रेनेड निकाल कर उन सैनिकों को टारगेट बनाकर उनकी ओर फेंका। बहुत तेज धमाका हुआ और क्षण भर में ही पाकिस्तानी सैनिक जमीन पर गिरकर छटपटाने लगे।

रमनदीप पूरी ताकत से भारतीय सेना की ओर भागा। वह काफी दूर तक दौड़ता चला गया। अब उसे भारतीय सीमा साफ दिखाई देने लगी, इसलिए उसका मन उत्साह से भर गया। तभी अचानक पाकिस्तानी सीमावर्ती पोस्ट से रमनदीप को टारगेट करके फायरिंग शुरू हो गई।

रमनदीप भारतीय सेना का एक प्रशिक्षित कमांडो था। वह मार्शल आर्ट में काफी दक्ष था। गोलियों की बौछार में से बचकर कैसे निकलना है, इस कला को वह बखूबी जानता था। इसलिए शत्रु की गोलियों से बचता हुआ वह लगातार भारतीय सीमा की ओर बढ़ रहा था। आखिरकार वह भारतीय सीमा पर पहुँचने में सफल हो गया था। काफी सावधानी बरतने के बावजूद शत्रु पक्ष की कई गोलियों ने उसके शरीर को छलनी कर दिया जिनमें से लगातार रक्त बह रहा था। असहनीय पीड़ा के बावजूद वह भारतीय सीमा में घुसने के लिए पहाड़ियों पर घुटने एवं कुहनियों के बल रेंगकर आगे बढ़ने का प्रयास कर रहा था। पाकिस्तानी पोस्ट से अब फायरिंग बन्द हो गई थी।

उधर भारतीय सीमा में स्थित सेना की द्रास सेक्टर पोस्ट के जांबाज सैनिक सीमा पर गश्त कर रहे थे। रात का अँधेरा चारों ओर फैल गया था। हड्डियों तक को तपा देने वाली सर्द हवाएँ चल रही थीं मगर इससे सैनिकों के जोश में कोई कमी नहीं आई थी। वे पूरी मुस्तैदी के साथ अपनी ड्यूटी को अंजाम दे रहे थे।

अचानक उनकी नजर रमनदीप पर पड़ी जो घुटनों और कोहनी के बल रेंगकर भारतीय सीमा में घुसने का प्रयास कर रहा था। किसी आने वाले खतरे को भाँपकर सेना के जवान सतर्क हो गए थे। उन्होंने अपनी राइफलें लोड कर लीं और पूरी सावधानी से उस दिशा की ओर बढ़ने लगे जिधर से वह आदमी हमारे देश की सीमा में घुसने का प्रयास कर रहा था। सैनिकों ने उसे

चारों ओर से घेर लिया। मगर वे यह देखकर हैरान रह गए कि उसके पूरे शरीर में गोलियों के घाव थे और उनसे खून बह रहा था। उसकी पीठ पर एक बैग टँगा हुआ था। वह अब भी आगे बढ़ने का प्रयास कर रहा था।

अपने चारों ओर भारतीय सेना के जवानों को देखकर रमनदीप के चेहरे पर खुशी की एक अनोखी चमक आ गई थी। उसके शरीर से बहुत अधिक खून बह चुका था और उसकी श्वाँस रुक-रुक कर चल रही थी। उसने भारत की मिट्टी को हाथ में लेकर अपने माथे से लगाया। फिर उसने सिर झुकाकर धरती को चूमा और भारत माता की जय के उद्घोष के साथ अपने जीवन की अन्तिम श्वाँस ली।

भारतीय सेना के जवान उसे ऐसा करते देख हैरान से खड़े थे। उन्होंने उसकी तलाशी ली। उसकी जेब से उसका आईडेन्टिटी कार्ड मिला जिससे पता चला कि वह इण्डियन मिलिट्री इन्टेलीजेन्स कोर का जासूस रमनदीप सिंह था। जिसे एक गोपनीय मिशन पर पाकिस्तान भेजा गया था।

उसके बाएँ हाथ की मुट्ठी में एक मुड़ा-तुड़ा कागज का टुकड़ा था। एक जवान ने उसकी मुट्ठी खोलकर वह कागज का टुकड़ा निकाला। उसमें लिखा था-मैंने अपना मिशन सफलतापूर्वक पूरा किया। मेरे बैग में जो लैपटाप है उसमें पाकिस्तान में चल रहे आतंकवादी ट्रेनिंग कैम्पों के फोटो हैं। प्लीज इसे हेडक्वार्टर पहुँचा देना। लौटते समय पाकिस्तानी सैनिकों ने अंधाधुंध फायरिंग कर मुझे बुरी तरह घायल कर दिया। मगर मुझे इस बात की बेहद खुशी है कि मैंने भारत माता की गोद में अपने जीवन की अन्तिम श्वाँस ली। भारत माता को उसके पुत्र का आखिरी प्रणाम। तेरा वैभव अमर रहे माँ, हम दिन चार रहे ना रहें। जय हिन्द। भारत माता की जय।

रमनदीप का पत्र पढ़कर सेना के जवानों की आँखों की कोरें गीली हो गईं थीं। उन्होंने सैल्यूट देकर भारत माता के इस सच्चे सपूत को अपनी श्रद्धांजलि दी थी।

सम्पर्क : ए-979, राजेन्द्र नगर, बरेली-243122 (उ.प्र.)
मो.9411422735

ओमप्रकाश चौधरी

रेखा और लक्ष्मण रेखा

आजकल चारों ओर लक्ष्मण रेखा का बड़ा शोर है। हर कोई इसी रेखा का और इसे लाँघने का जिक्र करता घूम रहा है, छोटे से शहर से लेकर देश की राजधानी तक। लक्ष्मण रेखा के जनक लक्ष्मण जी ने भी कभी सोचा नहीं होगा कि घोर कलियुग में इतना प्रचार उनकी रेखा का हो जायेगा। लक्ष्मण रेखा राम कथा की उपज है। स्वर्ण मृग के पीछे गए राम जी की मदद के लिए जाने का सीता जी द्वारा दबाव डाले जाने पर लक्ष्मण जी ने यह रेखा सीता जी की सुरक्षा हेतु खींची थी। लेकिन अतिथि देवो भव की परम्परा के निर्वहन में सीता जी ने इसका उल्लंघन कर दिया नतीजा उनका हरण हो गया। राम कथा में एक-दो बार इसका जिक्र और आता है। सबसे पहले अपने हरण के बाद पश्चाताप करते हुए सीता जी कहती हैं 'लक्ष्मण तुम्हारा कोई दोष नहीं है, तुम्हारी बात न मानने का फल मुझे मिला है। दूसरी बार जब रावण अपनी वीरता की डींग हाँकता है तो मंदोदरी उसे ताना मारते हुए कहती है कि राम के छोटे भाई द्वारा खींची गई रेखा तो लाँघ नहीं पाए, राम से कैसे पार पाओगे। यानी रेखा पार करो तो दु:ख न कर सको तो अपयश। पर यह सब समय और व्यक्ति पर निर्भर है।

अब बात कुछ वर्तमान की। आजकल नेताओं से लेकर कोर्ट तक हर कोई अपना वक्त आने पर लक्ष्मण रेखा पार न करने की नसीहत देने लगता है, लेकिन विडम्बना यह कि दूसरों को नसीहत देने वाले ये पर उपदेशक अपनी बारी आते ही सारी नसीहतें भूलकर इसे लांघने में जरा देर नहीं करते। तब ये जिन्हें शिक्षा दे रहे थे वे इनकी खबर लेने में देर नहीं करते और इनकी खिंचाई करने लग जाते हैं। अब यदि लक्ष्मण रेखा पार करने पर खिंचाई किसी बड़े पद वाले की हो रही हो तो वह थोड़े दिन तो चुप्पी साधे बैठता है लेकिन जैसे ही उसके पद की लाट साहबी ने जोर मारा वह हद में रहने की चेतावनी देने लगता है अर्थात् उनका कहना होता है कि हम तो लक्ष्मण रेखा पार कर सकते हैं क्योंकि हम हाकिम हैं लेकिन तुम चुप रहो, तुम हम पर अँगुली नहीं उठा सकते वरना ....। लेकिन आज के सोशल मीडिया के युग में भाई लोग कहाँ किसी की सुनते हैं।

लक्ष्मण रेखा से पहले कुछ बात रेखा की भी कर लेते हैं। बचपन में जब रेखा गणित पढ़ना शुरू किया तो परिचय हुआ रेखा और उसके प्रकारों से जैसे सरल रेखा, समानान्तर रेखा, वक्र रेखा, लम्ब इत्यादि। लेकिन जब भूगोल पढ़ना शुरू किया तो फिर रेखा के नये रूप सामने आये कर्क रेखा, मकर रेखा, भूमध्य रेखा। इनमें कौन-सी कहाँ से, किस देश और राज्य से गुजरती है, इन रेखाओं के कारण

मौसम कैसे बदलता है, दिन रात कैसे होते हैं। यानी रेखा लक्ष्मण हो या कोई और इनके कारण समस्या हर जगह विद्यमान। राजनीति शास्त्र पढ़ने लगे तो पता लगा इस रेखा ने नया ही बवाल खड़ा कर रखा है। इसके कारण देश बन गए, सीमाएँ बदल गईं। यही नहीं इसी रेखा के कारण कई देश युद्ध के मुहाने पर आ खड़े हुए, कुछ तो लड़ भी लिए कई बार। रेखा बदल गई पर झगड़े बरकरार हैं। तो कुछ इनके भी नाम मुलाहिजा फरमाइए। ये है मैकमोहन रेखा, रेडक्लिफ रेखा, डूरंड रेखा, वास्तविक नियन्त्रण रेखा, नियंत्रण रेखा आदि आदि। ये रेखाएँ देश और दुनिया की किस्मत बदल रही हैं, उनमें विवाद खड़े कर रही हैं, पर फिर भी ये हैं अपनी जगह पर बरकरार।

देश दुनिया, गणित, भूगोल की चर्चा में एक रेखा की चर्चा तो रह ही गई जो आपके-हमारे जीवन का अटूट हिस्सा है, वह है हस्त रेखा। कोई इसे मानता है कोई नहीं मानता। आप मानो या न मानो पर ये हाथ में हैं जरूर, यहाँ तक कि आपके मस्तक पर भी गाहे-बगाहे दिख ही जाती हैं। जब कहा जाता है इतना सुनते ही उसके माथे पर बल पड़ गये या उसके माथे पर शिकन तक नहीं आई, यानी बात रेखा की ही हो रही है। रेखा की बात करें और फिल्मी रेखा यानी अभिनेत्री रेखा की बात न करें यह कैसे हो सकता है। अपने जमाने की यह खूबसूरत अभिनेत्री फिल्म से लेकर संसद तक अपने जलवे बिखेर चुकी है और आज भी कभी-कभार चर्चा में आ ही जाती है।

यही नहीं जब बात प्रगति की हो तो भी रेखा का जिक्र, हमें उसकी रेखा से लंबी रेखा खींचनी है या दूसरों की रेखा छोटी कर देने से अपनी रेखा बड़ी नहीं हो जाती।

खैर हम बात कर रहे हैं लक्ष्मण रेखा की और पहुँच गये सरल रेखा से लेकर हस्त रेखा तक। बात का क्या है चली तो दूर तक जाएगी ही। तो लौटते हैं फिर वहीं जहाँ से चले थे। लक्षमण रेखा खींची तो त्रेता युग में लक्ष्मण जी ने थी अपनी भाभी की सुरक्षा के लिए। पर इसका महत्त्व तो हर युग में है और रहेगा। लक्ष्मण रेखा यानी मर्यादा। आप छोटे हों या बड़े, साधारण आदमी हों या ऊँचे पदों पर बैठे लोग, जब भी आपने अपनी मर्यादा का उल्लंघन किया आपके लिए परेशानी हाजिर है। मर्यादा का उल्लंघन व्यक्ति करे या देश उसकी सजा तो उसको भुगतनी ही पड़ती है, देर सबेर। तो अपनी लक्ष्मण रेखा को पहचान कर उसकी मर्यादा में ही रहिये इसी में भलाई है वरना ...

सम्पर्क : नीमच म.प्र.
मो. 9754872251

गोविन्द भारद्वाज

चरण स्पर्श

ताऊजी बीस साल बाद शहर में अपने निकट संबंधी के घर शादी समारोह में शामिल होने के लिए आए। उनके आँगन में कदम रखते ही पाँच-छः लड़कों ने उनके पैर छुए। 'शायद तुम राधेश्याम के लड़के हो!' ताऊजी ने पूछा। 'जी ताऊजी...।' लड़के ने जवाब दिया। यह देखकर एक लड़के ने उत्सुकतावश पूछ लिया, 'ताऊजी आपने इसे कैसे पहचान लिया कि ये राधेश्याम चाचा का लड़का है...और हमें नहीं पहचान पाए?' 'बेटा..इसके संस्कारों से.. पहचान लिया।' ताऊजी ने जवाब दिया। 'लेकिन ताऊजी आपके चरण स्पर्श तो हमने भी किए थे..फिर..।' ताऊजी मुस्कुराते हुए बोले, 'हाँ बेटा, चरण स्पर्श तो तुम सभी ने किए, लेकिन राधेश्याम के लड़के ने बिल्कुल अपने पिताजी की तरह पैर छुए..।' 'पिताजी की तरह! हम कुछ समझे नहीं..।' उस लड़के ने हैरानी से पूछा। इस पर ताऊजी कुर्सी पर बैठते हुए बोले- 'इसका पिता राधेश्याम हमेशा जब मेरे पैर छूता था, तो अपने दोनों हाथ से पैरों को स्पर्श करता था, बिल्कुल उसी तरह इस बच्चे ने भी चरण स्पर्श किये, और तुम सब केवल चरणों की ओर झुके जरूर, किंतु चरण स्पर्श नहीं किए।' 'माफ करना ताऊजी..।' उस लड़के ने शर्मिंदा होते हुए कहा।

घर वापसी

गरीब किसान सतिया की बिटिया नेहा का दिल्ली में एमबीबीएस का अंतिम वर्ष था। गाँव की बेटी का एम्स में चयन होना बड़े गर्व की बात थी। लेकिन गाँव के लोगों के मन में एक संशय था। संशय का कारण यह था कि, तीन-चार साल पहले गाँव के सरपंच साहब की बेटी बैंक मैनेजर बनीं थी। बैंक की ट्रैनिंग के दौरान उसे कोई मेनेजर लड़का पसंद आ गया। उसने वहीं शादी कर ली। वो तो लौट कर वापस घर नहीं आई, हाँ.. शादी की खबर जरूर आई थी। बस ऐसी घटनाओं के खौफ से गाँव वालों ने अपनी बेटियों को ज्यादा पढ़ाना-लिखाना लगभग छोड़ दिया था। नेहा होशियार बच्ची थी, वह अपने दम पर इस मुकाम तक पहुँची थी। सतिया को लोग अक्सर यही कहकर ताना मारते थे कि, 'सतिया की सारी चिंता दूर हो गयी। डॉक्टर बिटिया की घर वापसी दूल्हे के साथ ही होगी।' बेचारा सतिया उनके ताने सुन चुप रहता।

आज सतिया की खुशियों का ठिकाना नहीं था। बेटी नेहा ने अपने छोटे भाई के मोबाइल पर एक फोटो पोस्ट की। जिसे देखकर सतिया का परिवार बहुत खुश नजर आ रहा था। उस फ़ोटो से ताने मारने वालों के गाल पर जोरदार तमाचा था। दरअसल, फोटो में नेहा अपना सामान लिए दिल्ली रेलवे स्टेशन पर घर वापसी के लिए तैयार खड़ी थी, वो भी मुस्कुराते हुए अंदाज में। फोटो के नीचे मैसेज लिखा था, 'बाबूजी मैं आ रही हूँ।'

सम्पर्क : पितृकृपा, 4/254,
बी-ब्लॉक, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी,
पंचशील नगर, अजमेर राजस्थान मो. 9461020491

गिरीश पंकज

शुद्ध-सात्विक कहानियों से गुजरते हुए

इधर के कुछ महत्त्वपूर्ण कथाकारों में सुश्री संतोष श्रीवास्तव की अपनी खास पहचान है। स्त्री-विमर्श के इस दौर में भी जिस शालीन भाषा के साथ अपनी कथा-यात्रा को जारी रखे हुए हैं, वह उनको भीड़ से अलग करता है। उनका नया कहानी संग्रह 'अमलतास तुम फूले क्यों' इस बात की तस्दीक करता है कि एक अच्छी कहानी बिना किसी सनसनी के भी संभव हो सकती है। इन दिनों मैंने देखा है कि बहुत-सी कहानियाँ बिना सेक्स-विमर्श के पूरी ही नहीं होतीं। सेक्स का इतना खुला विस्तार अनेक कथाकारों को चर्चित तो बना देता है लेकिन कहानी के चरित्र को नीचे गिरा देता है। हम पूर्वज कथाकारों को देखते हैं, तो उनकी कहानियों में सशक्त कथ्य और उसकी शालीन प्रस्तुति कहानी को घर के हर सदस्य के पढ़ने योग्य बना देती थी। इधर की कुछ कहानियाँ घर का हर सदस्य पढ़ सके, यह संभव नहीं होता। कहानी का अश्लील-विन्यास चकित करता है कि क्या कहानी को बिना यौनिकता के नहीं लिखा जा सकता? इसका ज़वाब संतोष श्रीवास्तव की कहानियों को पढ़ते हुए मिल जाता है कि कहानियाँ बिना यौनिक घालमेल के भी लिखी जा सकती हैं।

समीक्ष्य कहानी संग्रह में संतोष की चौदह कहानियाँ हैं, जो मानवीय मूल्यों को स्थापित करती हैं, और प्रेम जैसे शाश्वत विषय को भी बहुत कोमल संस्पर्श के साथ रचती हैं। पहली ही कहानी 'उस पार प्रिये तुम हो' सच्चे प्रेम की अद्‌भुत कहानी है। यह मुस्लिम लड़की सबा और हिंदू लड़के गौरव चौहान की एक प्रेम कथा है। दोनों की शादी नहीं हो पाती। गौरव सेना में कर्नल बन जाता है और बटुए में हमेशा सबा की तस्वीर सँभाल कर रखता है। उधर सबा की कैंसर से मौत हो जाती है। गौरव भी सबा को याद करते हुए अंत में दम तोड़ देता है। सबा और गौरव मिलकर सैनिक नगर बसाना चाहते थे। यह कहानी प्रेमानुभूति के साथ-साथ सैन्य-जीवन को भी सुंदर ढंग से रूपायित करती है। समाज में यह संदेश भी देती है कि अब समय लद गया है, जब हम धर्म या जाति देखकर प्रेम करें या विवाह-

---

कथा संग्रह : अमलतास तुम फूले क्यों

लेखिका : संतोष श्रीवास्तव

प्रकाशक : सर्वप्रिय प्रकाशन, 1569, प्रथम मंजिल, चर्च रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

मूल्य: 200 रुपये

बंधन में बँधें।

मर्सी किलिंग यानी दया मृत्यु को लेकर देश में जबरदस्त बहस होती रहती है। हताश, निराश अस्वस्थ व्यक्ति को इच्छा मृत्यु के वरण का अधिकार मिलना चाहिए। इस कहानी में यही विमर्श होता है लेकिन अंततः एक दूसरी सोच की तरफ कहानी मुड़ जाती है। करन नामक एक युवक मीरा के साथ बलात्कार करता है और उसकी जान लेने की कोशिश करता है। मीरा बुरी तरह घायल होकर बिस्तर पकड़ लेती है। लेकिन इन सबके बावजूद उसका प्रेमी चित्रकार कपिल उसका अंत तक साथ निभाता है। अक्सर यही मानसिकता देखने में आती है कि अगर किसी युवती के साथ बलात्कार हो गया और वह मरणासन्न हो गई है, तो उसका प्रेमी भी उसे छोड़ देता है। इस कहानी में ऐसा नहीं हुआ। माता-पिता तो अपाहिज हो चुकी बेटी के लिए दया मृत्यु की कोर्ट से अपील करते हैं लेकिन कोर्ट याचिका खारिज कर देती है क्योंकि उसका प्रेमी कपिल हर हाल में मीरा के साथ रहना चाहता है। आज के स्वार्थी युग में ऐसी कहानी न केवल पाठक को मानवता सिखाती है वरन यह भी बताती है कि निश्छल, निःस्वार्थ प्रेम करने वाले अभी भी जिंदा हैं। कोई भी कहानी अगर उद्देश्यहीन है, तो निरर्थक है। इन दिनों ऐसी अनेक कहानियाँ लिखी जा रही हैं, जिनका कोई उद्देश्य नहीं होता। वे शुरू से अंत तक विवरणात्मक शैली में लिखी जाती हैं और समाप्त हो जाती हैं। उनमें कलात्मकता दिखाने की विफल कोशिश होती है। मगर वह कहानी के विन्यास पर खरी नहीं उतर पातीं। कहानी के निकष पर वही कहानी सफल होगी, जिसमें सुव्यवस्थित कथानक और उसका निश्चित उद्देश्य भी होगा। जैसे 'तुम हो तो' जैसी कहानी। मर्सी किलिंग पर एक और कहानी है 'अपना-अपना नरक'।

'धुंध' कहानी बुजुर्गों की उपेक्षा को दर्शाने वाली कहानी है। कैसे कुछ बहुएँ अपने ससुर से दुर्व्यवहार करती हैं। इस कटु सच्चाई को बहुत मर्मस्पर्शी तरीके से कथाकार ने उकेरा है। समकालीन बाजारवादी व्यवस्था ने भारतीय समाज में भी ऐसी विषम स्थिति उत्पन्न कर दी है कि अनेक घरों के बुजुर्ग अब यही सोचते हैं कि 'हरिद्वार जाकर किसी आश्रम में रहना ही ठीक होगा'।

'बाढ़' कहानी मनुष्य की मरती हुई करुणा को तो दर्शाती ही है, मगर यह संदेश भी देती है कि संकट के समय उदारमना व्यक्ति धर्म और जाति से ऊपर उठकर मदद के लिए आगे आ जाते हैं। कई बार समाज में ऐसे उदाहरण देखने को मिलते रहते हैं कि परिवार के सगे लोग अपनों का साथ छोड़ कर चले जाते हैं, तब जिन्हें हम पराया समझते हैं, वे लोग आगे बढ़कर मदद करते हैं। कहानी में बाढ़ में फँसे बूढ़े-लाचार पिता जसवीर को उसका बेटा काके छोड़ कर भाग जाता है। अपनी पत्नी को भी साथ ले जाता है। लेकिन जसवीर को बचाने के लिए रहीम नामक उनका मित्र सामने आता है। बचाव दल भी आ जाता है। तब जसवीर फूट-फूट कर रोने लगता है। सब यही सोचते हैं कि जसवीर का बेटा-बहू बाढ़ में मर गए हैं इसलिए उनके गम में जसवीर रो रहा है, लेकिन पिता किसी को असलियत नहीं बताता कि उसके अपने बेटे और बहू उसे छोड़कर भाग गए हैं। कहानी की अंतिम पंक्ति हृदयस्पर्शी है कि 'पानी की बाढ़ से तूने बचा लिया रहीम, पर रिश्तों की बाढ़ से मैं बच नहीं पाया।'

'अमलतास तुम फूले क्यों' कहानी इस अर्थ में अद्‌भुत है कि एक स्त्री कथाकार ने स्त्री जाति

की ही बेवफाई की कहानी कही है। अमूमन ऐसा होता नहीं है। अनेक कहानियों में बेवफाई को भी ग्लैमरस किया जाने लगा है। देश की एक तथाकथित बड़ी पत्रिका ने तो बेवफाई पर दो-दो अंक तक निकाले थे। ऐसे समय में जबकि बेवफाई को भी एक तरह से स्वीकृति सी मिल रही है, तब संतोष ने अपनी इस कहानी में स्त्री की बेवफाई को ही केंद्र में रखकर कथा का ताना-बाना बुना है। पत्नी की बेवफाई से दुखी होकर उनके पति गोविंद शराब में डूब जाते हैं। शकुन एक बड़े व्यापारी से अपना संबंध स्थापित कर लेती है। कहानी की अंतिम पंक्तियाँ पूरी कहानी के मर्म को जैसे खोल कर रख देती है। देखें, 'कार सर्र से सड़क पर बिखरे अमलतास के फूलों को कुचल कर आगे बढ़ गई।' दरअसल यह कार नहीं थी, शकुन की बेवफाई थी जो पवित्र रिश्ते के फूल को कुचल रही थी। कुछ प्रेम विवाह सफल भी होते हैं तो कुछ की दुखद परिणति भी होती है। इसी सत्य को इस कहानी में उद्घाटित किया गया है। गुमराह नायिका शकुन समाजसेवी भी है। वह प्रश्न करती है, 'क्या इंसान एक ही वक्त में एक साथ दो को प्यार नहीं कर सकता?' उसका अंतर्द्वंद उसके चरित्र को दर्शाने के लिए पर्याप्त है।

'निगरानी' कहानी इस समय की एक जरूरी कहानी लगती है। इस समय हमारा पूरा परिवेश एक-दूसरे को शक की निगाहों से देखने का आदी हो गया है। और यह एक ऐसी विवशता है जिसका शिकार होना ही पड़ता है। लोगों में जिस तरह से एक-दूसरे के प्रति नफरत की भावना भर गई है, लोग आपस में खून के प्यासे हो रहे हैं, और एक धर्म विशेष के लोगों के प्रति समाज के दूसरे धर्मों में जो भावना विकसित हुई है, उसे खत्म करना तो मुश्किल ही प्रतीत होता है। ऐसे समय में जब संतोष श्रीवास्तव 'निगरानी' जैसी कहानी लेकर आती हैं, तो लगता है, नहीं, हम जिनके बारे में गलत धारणाएँ बनाए बैठे रहते हैं, वे दरअसल वैसे होते नहीं हैं। कुछ लोग जरूर गलत हो सकते हैं लेकिन पूरी कौम गलत नहीं हो सकती। सोनल को दिल्ली जाना है। यूपीएससी की परीक्षा देने। लेकिन मजबूरी में उसे अकेले यात्रा करनी है। पिता उसे ट्रेन में बैठा तो देते हैं मगर मन-ही-मन सशंकित रहते हैं। पिता बेटी की पल-पल की खबर लेते रहते हैं। ट्रेन में चार मुस्लिम युवक यात्रा कर रहे हैं जो उसके सामने ही बैठे हैं। सोनल उनकी बातचीत के आधार पर तरह-तरह के गलत अनुमान लगाती रहती है कि हो सकता है ये आतंकवादी हों। इस कारण वह और अधिक घबरा जाती है। लेकिन ऐसा कुछ नहीं होता। उसकी सारी आशंकाएँ निर्मूल साबित होती हैं और वह सुरक्षित दिल्ली पहुँचती है। ट्रेन पूरी तरह से रुकती भी नहीं कि वह उतरने लगती है, तभी एक मुस्लिम युवक बोलता है, 'सँभलकर आपा, ट्रेन रुक जाने दीजिए। 15 मिनट रुकेगी यहाँ ट्रेन। कोई लेने आएगा क्या? रात भर हम भी नहीं सो पाए। चार मनचले झाँसी से चढ़े थे। ताश खेलते रहे। शराब पीते रहे। अब्बू तो उधर ही एक खाली सीट पर रात भर बैठे उनकी निगरानी करते रहे, क्योंकि पूरी बोगी में आप अकेली। फर्ज़ तो अपना भी बनता है न आपा।' कहानी यहीं खत्म होती है और एक पूरे चरित्र को आईने की तरह साफ कर देती है। जिन्हें हम गलत समझते हैं, वे कितने सही निकलते हैं, इस सत्य को यह कहानी बड़ी बारीकी के साथ स्पष्ट कर देती है।

'एक और कारगिल' शहीद विधवा की कहानी है, जो मजबूरी में दूसरे व्यक्ति से संबंध

स्थापित कर लेती है। अमूमन शहीद की विधवा ऐसा करे, समाज स्वीकार नहीं कर पाता। लेकिन यही तो है कहानी का जोखिम, जिसे संतोष श्रीवास्तव ने उठाया है। 'एक मुट्ठी आकाश' भी विधवा को अपनाने की कहानी है। विधवा को भी जीवन जीने का हक है। 'बैराग के खाते में' संत बन गए एक भगोड़े बेटे की कहानी है। कहानी का संदेश यही है कि हमें जीवन से दो-चार होना चाहिए। परिवार से भागना एक तरह से पलायन है, कायरता है। कहानी 'अजुध्या की लपटें' आपस में लड़वाने वालों की खबर लेती है। संग्रह के अंत में रेखाचित्र 'स्त्री की जीत चाहिए' बेहद रोचक है। इस रेखा चित्र के माध्यम से पीढ़ियों के अंतराल को समझा जा सकता है। एक दौर था जब घर के बुजुर्ग स्त्री को दबा कर रखते थे। लेकिन धीरे-धीरे परिवर्तन आता गया। इस कहानी में भी अम्मा अपनी दादी को समझाती हैं कि 'अब नहीं होगा। आवाज तो उठानी होगी माताजी अन्याय के खिलाफ। जानती है अन्याय सहना भी अपराध है। हमें ही समाज की रूढ़ियों, आडंबरों, अनैतिकताओं को खत्म करना होगा।' समय बदलता है। बाबा अगर स्त्री की आजादी के विरोधी थे तो उनके बेटे यानी लेखिका के बाबूजी स्त्री की आजादी के पक्षधर। रेखाचित्र का समापन आस्था के साथ होता है। 'बड़ी दादी ने अम्मा को गले से लगा लिया। तुमने मेरे अंदर का डर सहमापन और झिझक निकाली। तुमने मुझे नया जीवन दिया। मुझे अमृता शेरगिल जैसा बनना है। मैं चित्रों के द्वारा स्त्रियों की पीड़ा, विभिन्न एहसासों को दर्ज करूँगी। मैं ऐसे चित्र भी चाहती हूँ, जो स्त्री की जीत के हों, वेदना, पश्चाताप के नहीं।'

कुल मिलाकर संतोष श्रीवास्तव की सात्विक कहानियाँ सशक्त कथा-परंपरा की अनुगामिनी हैं। इनमें रोचकता है। सहजता-सरलता है। उद्देश्यपरकता है। मानवीय मूल्यों की चिंता है। और बेहतर समाज की बनावट की ललक भी इन कहानियों का लक्ष्य है। मुझे लगता है कि संतोष श्रीवास्तव की कहानियाँ अन्य कहानी लेखिकाओं के लिए भी मार्गदर्शक साबित होंगी कि कहानी केवल सेक्स के इर्द-गिर्द ही नहीं घूमनी चाहिए, वरन् उसे जीवन के दूसरे आयामों को भी पूरी संवेदना के साथ अभिव्यक्त करना चाहिए।

सम्पर्क : सेक्टर -3, एचआईजी -2/2,
दीनदयाल उपाध्याय नगर,
रायपुर 492010 (छ.ग.)
मो. 87709 69574

मधुलिका सक्सेना 'मधुआलोक'

साधना की परावस्था शबरी की विशिष्टता

आदरणीय श्री नरेश मेहता जी की कृति 'शबरी' काव्य विचार की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है। इसमें वे अपनी विचारशीलता से रामचरित मानस की एक दलित स्त्री शबरी को अपने कर्म-श्रम के जरिए ऊपर उठा कर ऋषि मतंग के माध्यम से जिस भूमि पर प्रतिष्ठित करते हैं उसमें पौराणिकता की रक्षा भी होती है और वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध उठती आज की आवाज को भी बल मिलता है। शबरी में कवि आधुनिकता के अधिक पास होते हैं उन्होंने वाल्मीकि के सामाजिक वर्ण-व्यवस्था से ऊपर व्यक्ति के आध्यात्मिक स्वत्व एवं असंग कर्म को प्रतिस्थापित किया और शबरी वही बीज चरित्र है। चरित्र की दृष्टि से शबरी मंत्र चरित्र लगती है-अपनी छोटी सी उपस्थिति में सार भूत।

किसी भी विराट व्यक्तित्व की व्याख्या स्वनिर्मित होती है किंतु समाज के निम्न वर्ग की साधारण स्त्री के आत्मिक एवं आध्यात्मिक संघर्ष की कथा रामायण के शीर्षस्थ पात्रों में भी अपनी पहचान बनाती है। सामान्य साधारण पात्र अपनी प्रयुक्ति के बाद रचना के गतिशील फलक में विलीन हो जाते हैं परन्तु शबरी राम-गाथा में उच्च भाव भूमि प्राप्त किए हुए होती है। साधना की यह परावस्था ही शबरी को रामायण कालीन पात्रों में विशिष्ट बनाती है। उसके व्यक्तित्व और कर्म को कवि नरेश मेहता की कल्पना ने पाँच प्रभागों में विस्तार दिया है- त्रेता, पम्पासर, तपस्या, प्रतीक्षा तथा दर्शन।

प्रथम प्रभाग 'त्रेता' में 'सतयुग' के बाद समाज में आए परिवर्तन की सरल अभिव्यक्ति देखिये-

बदल गया था सतयुग/ का सारा समाज त्रेता में,/ वन-अरण्य की ग्राम सभ्यता/ नागर थी त्रेता में।

अपने सरल काव्य में उन्होंने कर्म के आधार पर जाति व्यवस्था का प्रादुर्भाव स्पष्ट किया है तपस्या करने वाले ब्राह्मण, रक्षा और पालन करने वाले क्षत्रीय, व्यापारी वैश्य और श्रमिक, समाज में शूद्र कहलाए जिन्होंने इस व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया। वे राक्षस माने गए। इसके अलावा वन्य जातियाँ भी थीं। शबर जाति की लड़की श्रमणा इनमें से एक थी जिसे जीवन यापन के लिए माँस- भक्षण बिल्कुल पसंद नहीं था। उसे जंगल, नदी और धरती बहुत अच्छे लगते थे। उसके मनोभावों को कवि ने ये शब्द दिए हैं-

घोर वितृष्णा घिर आई/ श्रमणाशबरी के मन में/ त्यागो यह परिवार- मोह/ यदि करना कुछ जीवन में।

पुस्तक : शबरी, लेखक : श्रीनरेश मेहता, पृष्ठ संख्या : 610, मूल्य : 125/-
प्रकाशक-लोकभारती प्रकाशन, प्रथम प्रकाशन-मई 1977

इसलिए एक रात्रि कृष्ण पक्ष में वह अपने पति और बच्चों को कुटिया में सोता छोड़कर निकल पड़ी। उसने पम्पासर का नाम सुना था, जहाँ बड़े-बड़े ऋषि मुनियों के आश्रम थे। उनमें सबसे तेजस्वी मतंग ऋषि थे।

पवित्रता से परिपूर्ण उनके आश्रम में पहुँच कर वह फाटक पर बैठ गई। ऋषि के परिचय पूछने पर बताती है, मैं शबर जाति की हूँ और प्रभु सेवा ही मेरा इष्ट है। मतंग ऋषि कहते हैं अछूत स्त्री को मैं आश्रम में कैसे रख सकता हूँ। उच्च वर्ण की होती तो मैं रख भी लेता पर अब सब आश्रमवासी मिलकर इस पर निर्णय लेंगे। तब शबरी का प्रश्न उन्हें हिला देता है-

'क्या आत्मा की उन्नति केवल/ है उच्च वर्ग तक ही सीमित?
प्रभु तो हैं सब के पिता, भला/ उनका आराधन क्यों सीमित?'

उसके विचार सुन मतंग समझ गए कि शबरी कीचड़ में कमल समान है और उन्होंने उसे गौशाला का कार्य सौंप दिया। गौशाला में ढोला, कपिला, श्यामा आदि गायों से उसका सहज व्यवहार देखकर वे समझ गए कि शबरी कोई पुण्य आत्मा थी जो कर्मों के कारण भटक गई थी और वे सोचते हैं-

जब प्रभु ने ही है भेजा/ वे पथ भी दिखलाएँगे/ हैं दीन बंधु निश्चय इस/ दीना को अपनाएँगे।

इस प्रकार हम देखते हैं 'पम्पासर' प्रभाग में जाति प्रथा से जुड़े द्वंद और उस पर सुविचारों की विजय की अद्‌भुत प्रस्तुति है। 'तपस्या' प्रभाग में जहाँ आश्रम के पवित्र वातावरण, पंछियों और सुरम्य प्रकृति बीच प्रात:काल से साँझ तक के जीवन का मनोहारी वर्णन है, वहीं शबरी का मानसिक द्वंद भी है। जब वह अपने गृहस्थ जीवन में पशुओं का कटने से पहले कँपकँपाना याद करती है। सखियों को पक्षियों के कच्चे अंडे खाना देखती है। सोचती है एक वह जगत है तो ये कौनसा संसार है, जहाँ फूलों की सुगंध है, नदी-नालों का कोमल मर्मर मंत्र के स्वर हैं। जरूर आसपास या नभ में कोई है जो कण-कण में, हममें, घूम रहा है। वह प्रतिदिन सुबह बह्ममुहूर्त में उठकर स्नान ध्यान कर सूर्योदय के पहले गौशाला जाती। दाना-पानी दूध-दुहना करती। आश्रम को लीपना, धान पीसना-कूटना करते-करते तोता-मैना से भी बतियाती। संध्या समय जब ऋषिवर शिष्यों को कथा सुनाते थे तो कोने में खम्बे से टिककर वह भी सुनती। अपनी कुटिया में लौटकर ठाकुर जी का पूजन करती। कभी-कभी पूरी रात कीर्तन में बीत जाती उसे प्रभु के आसपास होने का आभास होता। वो कहती -

तेरी विशाल रचना में/ मैं घास-पात ही केवल,/ शबरी का तो है तू ही/ आराध्य और बस तप-बल।

उसकी तन्मयता देख ऋषि मतंग मन ही मन मुस्काते थे। एक शिष्या को शनै:-शनै: वे भक्त बनते देख रहे थे और सोचते थे यह प्रभु को अर्पित है, भला इसका गुरु कौन हो सकता है!

शबरी पुस्तक का चतुर्थ प्रभाग 'परीक्षा' समाज की सदियों पुरानी सोच की गाथा है। शबरी अपनी अंत:चेतना की उत्तरोत्तर प्रगति में आश्रम की अभिभावक सी हो गई। उसका प्रवचन में उल्लेख होने लगा वह स्वयं प्रभुमय हो गई किंतु युग-युग से किसी के उन्नत स्वरूप को समाज स्वीकार नहीं कर पाता सबके लिए तो वह भील जाति की कुलटा थी जो पति को छोड़ कर आ गई थी। ऋषि समाज को लगने लगा कि एक शूद्र स्त्री आर्य नहीं हो सकती। शबरी यज्ञ पूजन नहीं कर सकती। मतंग ऋषि अनाचार कर रहे हैं। वे सावित्री, अनुसूया के साथ शबरी का नाम गिना कर समाज को तोड़ने का कार्य कर रहे हैं। मतंग ऋषि यह

सब सुनकर बहुत खिन्न हो गए उन्हें और शबरी को तपोवन त्यागना पड़ा। शबरी की कुटिया को जला दिया गया। युगों-युगों से यही हो रहा है नरेश जी के शब्दों में-

'पर समाज में तो सभी युगों/ में ऐसा ही होता है,/ अच्छे जन के ही मारग में/ यह कण्टक बोता है।'

मतंग ऋषि शबरी के उत्थान को समझ रहे थे। उन्होंने दूसरी कुटिया बना कर यज्ञ आराधना पुनः शुरू कर दी। शबरी अन्नपूर्णा, तुलसी कण्ठी, योग अग्नि सी बन गई।

लेकिन उसकी पवित्रता और प्रगति से अन्य ऋषि मुनियों की छाती पर मानों साँप लोटने लगा। उन्होंने उसे पथ से हटाने के लिए शबरी के पति को ढूँढ़ा, उसे भड़काया कि मुनि ने उसे रख छोड़ा है। अमावस की काली रात में सारे शबर मिलकर शबरी को लेने निकल पड़े। कुटिया की खिड़की से उन्होंने देखा-

'दीप जल रहा था सिंहासन/ की प्रतिमा के आगे,/ आँखें बन्द किये बैठी थी/ शबरी प्रभु के आगे।'

किंतु लगा वह कोई अन्य शबरी थी पवित्रता में डूबी हुई। फिर भी शबर आगे बढ़े लेकिन शबरी के चारों ओर आग का कुण्डल धधक उठा। उसकी लपट से वे झुलसने लगे। तभी त्रिकालदर्शी मतंग ऋषि वहाँ आ गए। पूरी बात सुन उन्हें क्षमा किया। शबरी महाभाव में तल्लीन रही। मतंग लौट गए।

इस पुस्तक का अंतिम प्रभाग 'दर्शन' जीवन का मानो निचोड़ है। कोलाहल को सुनकर मतंग ऋषि बाहर आए और श्वेत-श्याम राम-लक्ष्मण की जोड़ी को कुटिया में ले गए तब रामचंद्र जी, मतंग ऋषि से पम्पासर वापस लौटने का आग्रह करते हैं। तभी शबरी भी वहाँ आ जाती है और बेर का प्रसाद अपने गुरु मतंग ऋषि के सामने रख देती है। ध्यान जाता है की कुटिया में और कोई भी है और कहती है-

मैं समझ गई यह प्रभु हैं/ आए कृतार्थ करने को,/ हैं यही राम-लक्ष्मण जो/ आए दर्शन देने को।

उसने झुककर प्रभु राम को प्रणाम किया लेकिन उन्होंने उसे विशेष सम्मान देकर बैठाया-

प्रभु बोले- क्या ना मिलेगा/ पूजा प्रसाद इस जन को?/ 'हैं बेर जंगली ये तो'/ सुनकर हँस दिए कथन को।

यहाँ पर हम जीवन का एक बहुत बड़ा दर्शन समझते हैं:

संकोच भक्त को था, पर/ भगवान भाव के भूखे,/ उत्सुक प्रभु को जो देखा/ आँसू शबरी के सूखे।

श्री राम कहते हैं कि मैं केवल सती की जयकार करने यहाँ आया था लेकिन सती शबरी का स्वागत-सत्कार पाकर कृतार्थ हूँ। सती भी उनसे मुक्ति की प्रार्थना करती है और योगाग्नि से उसकी मुक्ति हो जाती है। सब जय-जयकार करते हैं।

हर रचना का कोई प्रयोजन होता है 'शबरी' पुस्तक भी निम्न वर्ग की साधारण स्त्री के आत्मिक और आध्यात्मिक संघर्ष की ऐसी कथा है जो रामायण के शीर्षस्थ पात्रों में भी अपनी जगह बनाए रखती है। आदि कवि वाल्मीकि का इस प्रसंग के पीछे सामाजिक प्रयोजन भी लगता है। प्रत्येक व्यवस्था में दोष होना उसकी नियति एवं प्रकृति है। जिस युग की यह कथा है उस समय सामाजिक स्तर भले ही वर्ण व्यवस्था का विधान रहा हो पर व्यक्ति कर्म के द्वारा वर्ण मुक्त होने की चेष्टा कर सकता था। शबरी अपनी जातिगत निम्नवर्गीयता को कर्म की दृष्टि के द्वारा वैचारिक ऊर्ध्वता में परिणत करती है। व्यक्ति के संदर्भ में उसका यह संघर्ष आज भी प्रासंगिक लगता है।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)

यशवंत चौहान

चुनी हुई कविताएँ

अटल बिहारी वाजपेयी का नाम जेहन में आते ही एक बहुआयामी व्यक्तित्व मानस पटल पर अंकित हो जाता है। भारत रत्न एवं भारतीय राजनीति के शिखर पुरुष की गणना देश के नामचीन साहित्यकारों में होती है। सच तो यह है कि उनकी कविताएँ ही नहीं बल्कि उनके भाषणों में भी काव्य का ही लालित्य दृष्टिगोचर होता है। प्रभात प्रकाशन की इस पुस्तक में उनकी ही चुनी हुई 35 कविताओं का संकलन है जिसे श्री राम कस्तूरे के शिल्प ने और भी सुंदर बना दिया है।

पुस्तक की जो भूमिका अटल जी द्वारा लिखी गयी थी वस्तुतः वह लघुकृत आत्मकथा ही है। उन्हें सृजन शक्ति विरासत में ही मिली। उनके पितामह संस्कृत, साहित्य एवं ज्योतिष के विद्वान थे। पिता कृष्ण बिहारी वाजपेयी न केवल श्रेष्ठ कवि थे अपितु बहुभाषाविद भी थे। ग्वालियर विरासत के लिए लिखा गया उनका गीत बहुत ही प्रचलित था। अटल जी ने अपनी पहली कविता ताजमहल पर लिखी थी। 'अपनी बात' शीर्षक से लिखी गयी पुस्तक की भूमिका रोचक एवं पठनीय है।

आओ मन की गाँठें खोलें कविता में उनकी काव्य साधना के लिए ही लिखा है–सरस्वती की देख साधना/लक्ष्मी ने संबंध न जोड़ा। प्रकृति के प्रति अनुराग इस प्रकार व्यक्त किया है–सूर्य तो फिर भी उगेगा/धूप तो फिर भी खिलेगी/लेकिन मेरी बगीची की/हरी–हरी दूब पर, ओस की बूँद/हर मौसम में नहीं मिलेगी।

उनकी हिन्दी काव्य मंचों की प्रसिद्ध कविता गीत नया गाता हूँ, उनके अटल व्यक्तित्व की परिचायक है–हार नहीं मानूँगा/रार नयी ठानूँगा/काल के कपाल पर लिखता–मिटाता हूँ/गीत नया गाता हूँ।

इसी मनोभावों पर लिखा है–दाँव पर सब कुछ लगा है रुक नहीं सकते/टूट सकते हैं मगर हम झुक नहीं सकते। विषम परिस्थितियों के लिए उन्होंने लिखा है–निज हाथों से हँसते–हँसते/आग लगाकर जलना होगा/कदम मिलाकर चलना होगा। जंग न होने देंगे, हिरोशिमा की पीड़ा एवं क्षमा–याचना जैसी कविताएँ उनकी अहिंसक विचारधारा की अभिव्यक्ति है। पुस्तक में राजधर्म के निर्वहन पर भी उन्होंने कलम चलाई है।

पुस्तक में काव्य के विविध रूप के दर्शन है। अनेक कविताएँ नयी कविता के रूप में हैं। संकलन में अनेक गीत भी हैं। यही कारण है कि इस युग पुरुष के गीतों को दुनिया में गजल को मकबूलियत दिलाने वाले जगजीत सिंह ने अपनी मखमली आवाज़ देकर अमर बना दिया है। वैसे तो इस पुस्तक में काव्य के विविध रंग हैं किन्तु अटल जी का मूल स्वर तो ओज का ही है। उनकी ये कविताएँ युगों–युगों तक नयी पीढ़ी के लिए प्रेरणास्रोत रहेंगी।

लेखक : अटल बिहारी वाजपेयी, संस्करण–2020

प्रभात पेपर बैक्स, मूल्य : 150 रुपये

सम्पर्क : 5/242, गुरुराजेंद्र कॉलोनी राजगढ़, जिला–धार, पिन–454116 मध्यप्रदेश

मो. 9752659556

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी

श्रीहरि सरल गीता

श्रीमद्भगवद्गीता धर्म-अध्यात्म को समझाने वाला अद्वितीय काव्यशास्त्र है। यह महाभारत के भीष्मपर्व का ही एक भाग है। जिसमें समस्त वेद-शास्त्रों का सार समाहित है। गीतारूपी ज्ञानगंगोत्री में डुबकी लगाकर अज्ञानी भी पाप-ताप से मुक्त होकर, मोह-विषाद, भ्रम, तनाव से मुक्त होकर सद्ज्ञान को प्राप्त करके कर्तव्य पथ पर अग्रसर होता है एवं अपना अभीष्ट प्राप्त करता है। गीता की महिमा का वर्णन करते हुए इसके रचयिता महर्षि वेद व्यास ने स्वयं लिखा है-

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।/ या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

अर्थात, गीता भली प्रकार मनन करके हृदय में धारण करने योग्य है जो साक्षात पद्मनाभ भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निर्झरित दिव्यवाणी है, उनका गाया हुआ गीत है। इसमें समस्त वेदों का सार समाहित है अतः फिर अन्य शास्त्रों की क्या आवश्यकता है? इससे गीता की महत्ता स्वयंसिद्ध है।

गीता के विषय में आम धारणा यह है कि यह सन्त-महात्माओं एवं संन्यासियों का ग्रन्थ है। संभवतः इसी संकुचित धारणा के कारण समाज के एक बड़े वर्ग विशेषतः युवावर्ग की गीता के अध्ययन, स्वाध्याय में रुचि नहीं है, लेकिन, वास्तव में गीता एक आदर्श कर्मयोग का ग्रन्थ है। यह मानव मात्र को निष्काम कर्तव्य की प्रेरणा देने वाला सर्ववेदमयी श्रेष्ठतम काव्यशास्त्र है। कुरुक्षेत्र में जब अर्जुन युद्ध से विमुख होकर गाण्डीव नीचे रखकर युद्ध से पलायन की बात कर रहा था। तब श्रीकृष्ण ने उसे स्वधर्म (क्षत्रिय धर्म) का पालन करते हुए युद्ध में प्रवृत्त होने की प्रेरणा दी। अर्जुन के सुप्त पुरुषार्थ को जगाया। इस प्रकार पलायन से पुरुषार्थ की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा है गीता। जीवन के प्रत्येक प्रश्न का समाधान गीता में निहित है। अर्जुन मानवमात्र का प्रतिनिधि है, महाप्रश्न है और श्रीकृष्ण श्रेष्ठतम मार्गदर्शक, जगद्गुरु, प्रत्येक प्रश्न का महा समाधान। इस प्रकार गीता कर्तव्य शास्त्र एवं मोक्ष शास्त्र के साथ-साथ लोक व्यवहार की भी सम्पूर्ण शिक्षा प्रदान करती है। यह मनुष्य को आत्मसम्मान के साथ जीने की कला सिखाती है, द्रुत निर्णय लेने की क्षमता का विकास करती है। गीता की उपादेयता एवं प्रासंगिकता हर युग में रही है और सर्वदा रहेगी। किन्तु आज व्यक्ति, समाज, एवं राष्ट्र की वर्तमान स्थिति को देखते हुए इसकी

पुस्तक : श्रीहरि सरल गीता, लेखक : पं. कमल किशोर दुबे

प्रकाशक : भाल्व पब्लिकेशन, बी-24, सिद्धार्थ लेक सिटी, रायसेन रोड, भोपाल

उपयोगिता सर्वाधिक है। गीता के स्वाध्याय से निराश, हताश, उद्विग्न, दुखी, अवसादग्रस्त मनुष्य तुरन्त ही शान्ति और नवचेतना प्राप्त करता है। और.. पुनः पूर्ण पुरुषार्थ, उत्साह एवं कर्मठता से अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होता है। गीता एक संजीवनी बूटी की भाँति मृतप्राय मन को भी नवस्फूर्ति एवं जीवन्तता प्रदान करती है। अतः गीता कालजयी है, सर्वकालिक है, सार्वलौकिक अर्थात् सभी के लिये समानरूप से कल्याणकारी है। कर्तव्यबोध के लिए गीता का ज्ञान कामधेनु है।

गीता के काव्यानुवाद-'श्रीहरि सरल गीता की उपादेयता'-यद्यपि गीता की संस्कृत सरल है किन्तु संस्कृत का ज्ञान नहीं होने से जो गीता पढ़ नहीं पाते, वे कैसे समझें कि गीता में क्या है? इसके पढ़ने से क्या लाभ हैं? क्योंकि संस्कृत में लिखे गए इन श्लोकों का पठन-पाठन प्रत्येक भारतीय के लिये आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। अतः जिन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं है ऐसे श्रद्धावान पाठकों को गीता जानने, समझने का अभिनव प्रयास पं. कमल किशोर दुबे द्वारा किया गया है। 'श्रीहरि सरल गीता' के नाम से श्रीमद्भगवद्गीता के सम्पूर्ण 18 अध्याय में समाहित 700 श्लोकों का दोहे-चौपाई-छन्दों में बोधगम्य हिन्दी पद्यानुवाद किया गया है। सर्वसाधारण की सुविधा के लिए इस काव्यानुवाद की भाषाशैली सहज, सरल एवं गेयता पूर्ण है। जैसे वाल्मीकि रामायण कोई नहीं जानता लेकिन गोस्वामी तुलसीदास जी की रामचरित मानस जन-जन में लोकप्रिय है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर एवं रामचरित मानस से प्रेरित होकर ही इस काव्यानुवाद की भाषा सहज, सरल एवं प्रवाहपूर्ण रखी गयी है। जिसमें आवश्यकतानुसार अवधी भाषा के शब्दों के प्रचुर प्रयोग से यह ग्रन्थ अत्यंत लोकप्रिय बन गया है। जिससे रामचरित मानस की तरह ही कोई भी धुन एवं सम्पुट लगाकर संगीतमय पारायण भी किया जा सके। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गीता के मूल भावों, निहित सिद्धांतों एवं अर्थ को यथारूप करने का प्रयास किया गया है। जिसे परमपूज्य जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती जी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त हुआ है।

प्रमुख श्लोक एवं अनुवाद देखिए-

अनुवाद का प्रारम्भ भी गीता की भावना अनुरूप 'धर्मक्षेत्र...' से ही प्रारम्भ किया गया है :-

श्लोक :- धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।/ मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥1-1॥

श्लोक :- धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में, क्या होता है आज।/ संजय से बोले वचन; धृतराष्ट्र महाराज।।

युद्ध लालसारत सभी; कुरुक्षेत्र एकत्र।/ किसने, क्या, कैसे किया; पांडव अरु मम पुत्र।।

श्लोक :- नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।/न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।23।।

चौपाई :- जनम लेत, नहीं मरहिं आत्मा।/ अजर, अमर यही नित्य आत्मा।।

शस्त्रहि कटे, न आग जलाये।/ जल में गले, न पवन सुखाये।।

श्लोक :- हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।/ तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।2.37।।

चौपाई :- विजयी समर राजसुख पाये।/ मिले वीरगति स्वर्ग सिधाये।।

क्षत्रिय हेतु परम आराधन।/ निश्चय युद्ध करो तुम अर्जुन।।

श्लोक :-कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।/ मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।2.47।।

श्लोक :-योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।/सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग

उच्यते।।2.48।।

हरिगीतिका छन्दः-

अधिकार तेरा कर्म करने का, नहीं फल में कभी।
बस इसलिए तू कर्म कर, फल हेतु मत करना कभी।।47।।
आसक्ति तजकर सिद्धि और असिद्धि को तू सम समझ।
योगस्थ होकर कर्म कर, समता सभी में तू समझ।।48।।

श्लोक :- ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।2.62।।

चौपाईः- अचलप्रज्ञ तब ही मन होगा।/ प्रभू परायण जो नर होगा।।
आसक्ति व विषयों का चिन्तन।/ कामवासना का अवलम्बन।।
विघ्न कामना में जब आता।/ उद्वेलित मानव हो जाता।।

श्लोक :- क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।/ स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।2.63।।

चौपाईः- क्रोधहि मूढ़भाव का कारक।/ मूढ़भाव विस्मृति भ्रम-कारक।।
विस्मृति भ्रम तब ज्ञान घटाता।/बुद्धिहीन मानस हो जाता।।

श्लोक : यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।/ स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।3.21।।

चौपाई :- कर्म श्रेष्ठ जन करते जैसे।/ सकल लोक करता सब वैसे।।

श्लोक :- यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।/अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।4.7।।

चौपाईः- जब-जब होय धरम की हानी।/बाढ़हिं अधम अरु अभिमानी।।7।।

श्लोक :- परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।/ धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।4.8।।
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।/ त्यक्तवा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।4.9।।

छन्दः- उद्धार करने सज्जनों का, दुष्ट जन संहार को।/युग-युग प्रकट होता रहा मैं, धर्म के उद्धार को।।8।।

यह दिव्य मेरा जन्म-कर्म रहस्य जो जन जान ले।/तन त्यागकर मुझसे मिले, मानव नहीं फिर जन्म ले।।9।।

श्लोक : श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।/ ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।4.39।।

चौपाईः- श्रद्धावान, संयमी, तत्पर।/ ज्ञान प्राप्त कर लेता वह नर।।
बिन विलम्ब भगवन मिल जाते।/ परम शान्ति ऐसे नर पाते।।

श्लोक :-उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।/ आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।6.5।।

चौपाईः- मन भवसागर पार निकाले।/ नहीं अधोगति में मन डाले।।
मन दुश्मन, मन मित्र बनाता।/ मन वश में तो मोक्ष दिलाता।।

श्लोक :- बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।/अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।6.6।।

चौपाईः- मंगल करण अमंगल हारी।/ मन पर विजय सदा सुखकारी।।

दोहा:-

जीत सके मनमौज को, तो मन उसका मित्र।/ मन जिस पर हावी हुआ, दुश्मन सदृश चरित्र।।

श्लोक :- जितात्मन: प्रशान्तस्य परमात्मा समाहित:।/ शीतोष्णसुखदु:खेशु तथा मानापमानयो:।।6.7।।

दोहा:-

अपने मन को जीतकर, मिले शान्ति, भगवान।/ सुख-दुख अरु शीतोष्ण सम, जिसे मान-अपमान।।

श्लोक :- पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्तया प्रयच्छति।/तदहं भक्तयुपहृतमश्नामि.प्रयतात्मन:।।9.26।।

श्लोक :- यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।/ यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुश्व मदर्पणम्।।9.27।।

छन्द :- अर्पण करे फल-फूल अरु जल, पत्र मुझको भक्ति से।

करता ग्रहण उस भक्त की वह भेंट मैं अनुरक्ति से।।26।।

अर्जुन करो तप, यज्ञ, आहुति, दान अर्पण तुम मुझे।

नैवेद्य भोजन भी करो प्रतिदिन समर्पण तुम मुझे।।27।।

श्लोक :- त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं/ त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।

त्वमव्यय: शाश्वतधर्मगोप्ता/ सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।।11.18।।

दोहा :-

परमब्रह्म परमात्मा, अविनाशी साकार।/ पालक हो ब्रह्माण्ड के, सनातनी आधार।।

श्लोक :- यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च य:।/ हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो य: स च मे प्रिय:।।12.15।।

चौपाई :-दुखी होय न, न करे दुखारी।/ सुख-दुख सम मानहिं हितकारी।।

श्लोक :- सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।/ अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:॥18.66॥

चौपाई:- सब धर्मों को तजकर प्रिय जन।/ शरण गहो तुम मेरी अर्जुन।।

मुक्ति मिलेगी सब पापों से।/ भव- सागर के संतापों से।।

तजकर सभी शोक अब अर्जुन।/ करो समर्पित मुझको तन-मन।।

इस पुस्तक की मुख्य भूमिका नृसिंहपीठाधीश्वर जगद्गुरु स्वामी (डॉ.) श्यामदेवाचार्य, ग्वारीघाट, जबलपुर द्वारा एवं अटलबिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो.रामदेव भारद्वाज, राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता प्राचार्य प्रकाश पाण्डेय एवं मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा समिति के मंत्री-संचालक आ. कैलाशचंद्र पंत द्वारा शुभाशंसा की गई है।

भाल्व पब्लिकेशन, बी-24, सिद्धार्थ लेक सिटी, रायसेन रोड, भोपाल द्वारा प्रकाशित इस ग्रन्थ की साइज, साज-सज्जा, जिल्द एवं फोन्ट सभी उत्तम एवं मनोहारी हैं। श्रीमद्भगवद्गीता को दोहे-चौपाई - छन्द में प्रस्तुत करती अनुपम कृति।

सम्पर्क : डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी,
प्राध्यापक -शा. सरोजिनी नायडु स्वशासी कन्या महाविद्यालय, भोपाल
एवं पूर्व निदेशक मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

बी. एल. आच्छा

आत्मवृत्त में साहित्य के समकाल का कोलाज : माफ करना यार

'माफ करना यार' पुस्तक के बहाने जितना कथाकार बलराम से रूबरू हुआ जा सकता है, उससे अधिक उनके समकाल के साहित्यिक प्रवाह से। इस पुस्तक में सहयात्री होते हुए ऐसा लगता है, जैसे ब्रह्मपुत्र के महानद में एक बड़े से क्रूज़ पर कई पीढ़ियों के लोग सवार हैं। जैनेंद्र-अज्ञेय से लेकर कामू काफ़्का तक। हिंदी की समवर्ती पीढ़ियों के साथ नये हस्ताक्षरों को भी एकसाथ बिठाए संवादी हुआ जा रहा हो, उनके जीवन और कई-कई किताबों के साथ। कितने व्यक्तित्व, उनके जीवन से साक्षात्कार, कितनी पत्रिकाएँ, कितनी समीक्षाएँ, कितने सहकार-विकार, कितने अंत:संघर्ष, पत्र-पत्रिकाओं के संपादन-कक्ष, कितने अंत:प्रवाह, पाठकों के लिए साहित्यिक पत्रिकाओं का रोमान, पत्रिकाओं के भीतरी दाँवपेंचों का कार्डियोग्राफ। और यह पुस्तक शब्दों में सपने सँजोए उस लेखक की है, जिसमें कथाकार होने का रोमान भी है और पत्रकारिता के संघर्षों में अवसाद के हल्के थक्के भी। मगर गतिशील मुद्रा।

यह महज संस्मरणात्मक और आत्मकथात्मक विधाओं की सृजनात्मक गड्ड-मड्ड नहीं है, न उनका फ़्यूजन। बल्कि वैसा ही जैसे नदी-नालों के संगमन बिंदु पर जल-प्रवाह एकदूजे को थाप देते हैं और देर-सबेर सहप्रवाह की हिस्सेदारी। उसी तरह इसमें अनेक अंतर्कथाएँ एक दूजे के रंगों से लड़ती- भिड़ती अंतत: एक प्रवाह बन जाती हैं। प्रवाह कभी मटमैला, कभी नीलांबर परिधान-सा भी। कभी बोधिवृक्ष की पानी में झाँकती परछाइयों के रंगों-सा भी। हाँ, साहित्यिक पत्रकारिता के रोमानी रंग जब यथार्थ से मुठभेड़ करते हैं, तो क्लेश भी होते हैं और सधते हुए वे पुनर्नवा भी हो जाते हैं।

इस पुस्तक के कई सिरे हैं और कई रंग। कई कई स्वाद हैं। मगर बेस्वाद को भी बलराम यों कह जाते हैं- 'साहित्य और पत्रकारिता के जिस घर में शरण ली, वह उतना पवित्र नहीं निकला।' पर लेखक का वह उत्तुंग शिखर भी ऊर्जस्वित है, जब वह कहता है- 'जन्नत के बजाय दोज़ख में पहुँच गए, लेकिन हमने दोज़ख को जन्नत बनाने का ख्वाब देख डाला।' यही जीवट है, जो इन तमाम

पुस्तक : माफ करना यार, लेखक : बलराम

प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष : 2016

मूल्य : 395/-

स्मृतियों में, कटाकटी के साहित्यिक परिदृश्य में, इनामों-इकरामों में तेजाबी संवाद भी फेंकती है। सुलझनों के रास्ते भी तलाशती है। नए साहित्यिक उभार को भी जगह देती है। व्यक्तित्वों से टकराती-संवाद करती है। जीविका की उठापटक में अपनी साहित्यिक पहचान को कसक नहीं बनने देती। यह भी कि इन संस्मरणों या आत्मकथात्मक वृत्तों में जिन चरित्रों से टकराहट है, उनके अच्छे पक्षों से किनाराकशी नहीं करतीं। सुखद संस्मरण वे ही होते हैं, जो अपने उत्तुंग शिखर के लिए दूसरों के चरित्रों को स्याह नहीं बनाते। बल्कि उजले और स्याह को, श्वेत और श्याम को संपूर्णता से संवेदी बनाते हैं। अलबत्ता इन संघर्षों में बलराम की अप्रतिहत आस्था सृजन-कर्म से लक्षित रहती है।

'माफ करना यार' जीवन की जन्म-गंगोत्री से निकलकर अपने पाट बनाती नदी की तरह सिलसिलेवार नहीं है। कभी-कभी तो लगता है यह सचमुच में कई अंशों में अपने बहाने औरों की कथा बन गयी है। बल्कि अपने सृजन-दशकों के समकाल की कथा बन गई है। इतने साहित्यकारों के सृजन- पार्श्वों की छायाएँ जुड़ती चली गई हैं, जिनसे लेखक का सृजन-कर्म भी जुड़ा है। उसके ताप भी हैं। पर इससे ज्यादा यह कि लेखकीय जीवन के साथ ये परिदृश्य हिंदी के साहित्य सृजन को प्रतिबिंबित करते जाते हैं। इसलिए बड़ी तरतीब से हिंदी के पीढ़ीदार हस्ताक्षरों के साथ संवाद करते ये परिदृश्य अनेक अध्यायों में विभक्त हैं। जैनेंद्र-अज्ञेय-शमशेर से लेकर उदयप्रकाश-विश्वरंजन तक। ये परिदृश्य रचनाओं का केवल परिगणन नहीं करते, बल्कि जीवन के पार्श्वों के साथ समीक्षात्मक संवाद रचाते हैं। हिंदी की श्रेष्ठ कृतियां और कृतिकार, साहित्यिक पत्रकारिता के संघर्ष इस तरह बिखरे-जुड़े संयोजित हुए हैं, इनमें इतिहासबद्धता की झलक दिख जाती है। समकाल के साहित्यिक और वैश्विक साहित्य-दर्शन की शिक्षाएँ भी। इन्हीं में लेखक का जीवन-संघर्ष भी और सृजन के पाठ भी।

बलराम के अंतरंग में बसा है गाँव और गाँव से शहर आकर महानगरों में बसे लोग। महानगरीय परिवेश में भी इसीलिए उनके व्यक्तित्व में ग्राम्य सहृदयता हरी-भरी है। और कथा-साहित्य में यही पूरी तरह फैला हुआ। मगर सपनों में बसी साहित्यिक पत्रकारिता की दुनिया है, जो महानगरीय है। ये दोनों जब-तब एकाकार हो जाते हैं। जब बलराम शुरुआती जीवन में ही धर्मयुग जैसी पत्रिकाओं में कहानियों के प्रकाशन से जगह बनाते हैं। ऐसी ही पत्रिकाएँ उनका जीवन-राग बन जाती है। कानपुर के छोटे से कस्बे शिवराजपुर के रामसहाय इंटर कॉलेज में गणित की कक्षा में जैनेंद्र की कहानियों का पठन-अनुराग हेडमास्टर से चार रूल खाने के बाद भी खिसकता नहीं है। और न ही कॉलेज की पत्रिका के लिए कहानी अस्वीकार करते हुए गोविंद सर की चुनौती से- 'तुम! अरे तुम! कहानीकार बनोगे? तुम लोगों का असली काम है खेती-बाड़ी करना। वही तुम करोगे और कहानीकार कभी न बन सकोगे, समझे!' मगर यह लगन और तपन अज्ञेय जैसे व्यक्तित्व से शब्द-वर्षा पा जाती है, 'कलम हुए हाथ' कहानी संग्रह भेंट करने के दौरान- 'तुम्हारी शिक्षाकाल' और 'पालनहारे' देखी थी धर्मयुग में। अपनी कहानियों की गहराई बनाए रखना। प्रेमचंद और रेणु से तुम्हारी कहानियाँ भिन्न है। यह भिन्नता बनी रहेगी तभी महत्त्वपूर्ण हो सकोगे।' यह नजरिया बलराम को अपनी जमीन देता है और अन्य कथाकारों को भी साहित्यिक पत्रकारिता की उनकी जमीन।

'दैनिक आज' की डेस्क से शुरू हुए बलराम को 'सारिका' में चयन के लिए साक्षात्कार में जो सवाल पूछे गए वे 'माफ करना यार' के व्यापक फैलाव की कुंजी हैं और बेबाक व्यक्तित्व की मुखर आवाज। इंटरव्यू में अज्ञेय ने दुनिया के दो शीर्ष उपन्यासकारों के नाम पूछे और हिंदी उपन्यासों में उनकी समस्तरीयता वाले उपन्यासों के नाम। लेकिन एक सवाल और उसका उत्तर बेहद मौजू। सवाल था- 'लेखक बड़ा होता है या संपादक' और उत्तर था- 'लिखते हुए लेखक और संपादन करते हुए संपादक। ईमानदारी से काम करें तो दोनों ही बड़े हो सकते हैं। लेकिन अंततः तो लेखक ही बड़ा होता है।' साफगोई, कथा-साहित्य का व्यापक पठन-पाठन, देश- विदेश के कथा-साहित्य का क्षितिज कर्मक्षेत्र की स्पष्टता और उत्तरदायिता, निर्णायक उत्तर और बेबाकी। ये ही बातें इस पुस्तक में हर कहीं पसरी पड़ी हैं। मगर ढेर सारी पुस्तकों की सूची में नहीं, उनकी अंतरंग समीक्षा में। दर्शन की किताबों में नहीं, साहित्यिक

अंतःप्रवाहों को रचते वैश्विक-राष्ट्रीय साहित्य में। संपादन क्षेत्र में सहकर्मी की अपने संपादकों से निरंतर लड़ंत-भिड़ंत और स्नेहभरी दुनिया में।

ये बातें बलराम के व्यक्तित्व की दिशाएँ भी बनाती हैं। एक कथाकार अपने केनवास में ग्रामांचल की सहृदय हरीतिमा के साथ महानगरीय बोध को फैलाए हुए है। एक समीक्षक कितने ही साहित्यकारों के जीवन और उनकी कृतियों से हिंदी समीक्षा को उनका अंतर्पाठ दे रहा है। एक सुधी व्यक्तित्व हिंदी के महानतम और युवतम रचनाकारों के जीवन को परसता हुआ उनके व्यक्तित्व को अपने आत्मकथात्मक-संस्मरणात्मक परिदृश्यों में रचा बसा रहा है। इस बहाने इन रचनाकारों का आत्मसंघर्ष ही नहीं, समकालीन रचनाकारों के बारे में अवधारणाओं को भी समीक्षा-पटल पर ला रहा है। समकालीन लेखकों के बारे में समकालीन लेखकों की टिप्पणियाँ एक दिशा देती हैं और बलराम की समीक्षा दृष्टि भी अपनी राह बनाती है। शमशेर के बारे में अज्ञेय कहते हैं- 'शमशेर क्रांति के कवि नहीं, प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। वे खुद को कबीर और जायसी की परंपरा में पाते थे।' निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य को लेकर बलराम की यह टिप्पणी- 'निर्मल वर्मा की दुनिया बहुत मायावी है। वह मोहन राकेश और कमलेश्वर के गद्य से भिन्न एक जादुई संगीतमय भाषा में हिंदी के लिए नितांत नया सिंटेक्स विकसित कर रहे थे।' ऐसे ही इसी काल में यह नजरिया भी- 'मोहन राकेश और कमलेश्वर को लेखकों की एकांत दुनिया से सख्त एतराज था। उनका मानना था कि वे लेखक सामाजिक संदर्भों की अवहेलना कर जीवन से असंपृक्त लेखन कर रहे हैं, जिनकी रचनाओं में सामाजिक सरोकार लगभग नहीं है।' इस तरह के अनेक समीक्षात्मक संदर्भ पुस्तक को साहित्य विमर्शों का पटल भी बना देते हैं। क्रांति और विद्रोह में फर्क बताते हुए बलराम पाठकों को अल्बेयर कामू तक ले जाते हैं, तो मलार्मे पर बात करते हुए उसके विमर्श को रमेशचंद्र शाह के एक शब्दानुवाद 'चिदावरण भंग' तक। कभी कामू के बचपन की दुनिया की स्मृति के सहारे दो बुराइयों तक ले आते हैं ले जाते हैं- 'उनमें पहली है आत्मतोष और दूसरी होती है दूसरों की ऊँचाई और सफलता के प्रति विद्वेष और कुढ़न।' निश्चय ही यह अंतरंग साक्षात्कार की राह है, जो जीवन और सृजन के लिए मार्गदर्शी है।

इसी तरह साहित्यिक परिदृश्य में छाए बेगानेपन और कुहासे के साथ वे जमीनों को बंजर

करने वाली धड़ेबंदी और विचारधाराओं के मारकाट पर अपनी बात कहते चूकते नहीं हैं- 'एक सीमा के बाद क्या तो वामपंथ और क्या दक्षिणपंथ दोनों ही मनुष्य को पार्टी कार्यकर्ता या रोबोट में बदल देते हैं। उसे सहज मनुष्य नहीं रहने देते।' गद्य-पर्व के बहाने वे जितनी खुली नजरों से नामवरीय आलोचना को देखते हैं, उतनी ही व्यापकता से संस्कृति-पुरुष अज्ञेय को। इसी राह पर चलते हुए लेखक अपने जीवन विस्तार के साथ अनेक लेखकों के अंत:वृत्त इस तरह समाहित करता है कि नागार्जुन, अज्ञेय, त्रिलोचन, राजेंद्र यादव, नामवर सिंह ज्ञानरंजन, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, सुरेंद्रप्रताप सिंह, कन्हैयालाल नंदन, राजेंद्र माथुर, विष्णु खरे, आलोक मेहता, रवींद्र कालिया, गीताश्री आदि अनेक साहित्यकारों के जीवन और साहित्य के कुछ पार्श्वों को समेटे हुए वे आत्मकथा का हिस्सा बन जाते हैं। पर उसका प्रतिफलित यह कि साहित्य के तमाम आंदोलनों, टकराहटों और वैचारिक संस्पर्शों के साथ वे बातें सामने आती हैं, जो समकालीन हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में भी सहायक हो सकती हैं। समीक्षा पद्धति को भी दिशा दे सकती हैं। साहित्यिक पत्रकारिता की रोमानी छवि के साथ उसके काँटों और भीतरी कसमसाहटों को सामने लाती हैं। नौकरी में खो-खो के खतरे और ईर्ष्याजनित अंतर्विरोधों को भी। पर बलराम का सबसे बड़ा सकारात्मक पक्ष है उनका सशक्त पाठक। नये-पुराने सैकड़ों लेखकों की पुस्तकों पर गहरी नजर और समीक्षात्मक दृष्टिपात। लगता है कि उनमें एक प्रोफेसर-पत्रकार-लेखक का गठजोड़ बहुत सृजनात्मक है, जो न केवल भारतीय कथा-साहित्य से, बल्कि जैनेंद्र से लेकर अल्बेयर कामू, लोठार लुत्से, फ्रेंज काफ़्का, चेखव तक जाता है।

और यह पाठ-कुपाठ से नहीं उनके अंतरंग जीवन और दर्शन से और भी पुष्ट होता जाता है। इन नामचीन लेखकों के अंत:वृत्त और साहित्यिक संस्पर्शों से कई सूत्र हाथ लगते हैं। मसलन कमलेश्वर मानते थे कि नागार्जुन हमारे समय के कबीर हैं, जो शासन विरोधी बनकर ही सुखी रह पाते थे। नामवर सिंह के 'गद्य पर्व' की खासी चर्चा के साथ वे लिखते हैं- 'काश! यह दुंदुभी वाणी की बजाय कलम से बजाने का कुछ अधिक अवसर इन्हें मिल जाता।' कमलेश्वर को लेकर यह टिप्पणी- 'ऐसा था कमलेश्वर का टैलेंट हंट का अंदाज। दूरदराज और ग्रामीण इलाकों में रहने वाले अनजान लोगों में भी ऐसी प्रतिभाएँ खोजने का और उन्हें बड़े प्लेटफार्म पर खड़ा कर देने का।' पत्रकारिता के करियर, संघर्षों और छटपटाहटों से छनकर आता बलराम का मर्म वाक्य- 'रूपक के रूप में कहें तो कन्हैयालाल नंदन से मैंने पत्रकारिता के प्राथमिक पाठ पढ़े। राजेन्द्र माथुर से डिग्री के, लेकिन पत्रकारिता में डॉक्ट्रेट के पाठ मैंने विष्णु खरे से ही पढ़े।' विष्णु खरे से इतनी खरी-खोटी होने के बाद भी उनके बारे में यह टीप कितनी वस्तुनिष्ठ है- 'लेकिन विष्णु खरे ने घटिया रचनाओं को कभी तरजीह नहीं दी।'

दरअसल आत्मकथा और आत्मकथ्य के वृत्त तो इस पुस्तक में न्यूनतम हैं। जन्म, माता-पिता, ग्रामांचल तो यत्र-तत्र बिखरे से हैं। बल्कि जिस सुंदर प्रेम-प्रतिमा सलमा को लेखक बसाए हुए हैं, वह भी कभी रहरह कर एक दो पंक्तियों में अंत तक झलक जरूर दे जाती है। मगर वृत्त और अंत:स्वर नहीं बन पाती। पाठक सोचता ही रह जाता है, इस रोमानी दृश्य-पाठ के लिए। मगर पत्रकारिता की

खुरदुरी जमीन के पाठ रह-रहकर इस आत्मकथा का पाठ्यक्रम बन जाते हैं या साहित्यिक प्रतिभाओं की रचनाओं का अंतर्पाठ। याकि जाने-माने साहित्यकारों के जीवन और संस्थाओं से जुड़े प्रसंग जो उनकी बायोग्राफी के अनुच्छेद गढ़ जाते हैं।

बलराम के बाहर-भीतर के संघर्षों और व्यक्तित्व के पक्षों को समझने के लिए पत्रकारिता के संघर्षों के कथांशों को लक्षित करना ही होगा। नवभारत टाइम्स में प्रमोशन न मिल पाने के कारण जो कसमसाहट रही और आर्थिक हानियों के उपायोजन के लिए जो युक्तियाँ अपनानी पड़ीं, उसका भी एक अलग ही कोण है, जो सच को उगलता है और ऐसे वरिष्ठों को कठघरे में भी खड़ा भी कर देता है। विष्णु खरे से टकराहटों के ऐसे ही अध्याय में उस साक्षात्कार का यह तिलमिला देने वाला विनम्र जवाब- 'आप तो मेरे अग्रज हैं? आपने कई किताबें लिखी हैं। कुछ पुरस्कार भी हथियाये हैं। मगर दूसरी कंपनियों के (पायोनियर जैसे) अखबारों में भी आप जब-तब लिखते रहे हैं। नौकरी छोड़ कर फुलटाइम राइटर बनने का काम पहले आप करें। विश्वास कीजिए, आज आप छोड़ेंगे, कल मैं भी छोड़ दूँगा।' विनम्रता भी और चुनौती भी। और आचरण के द्वैत पर उठी हुई अँगुली भी। राह की समानता के लिए प्रतिबोध दिलाने का तेवर भी। आर्थिक हानि का दंश तो है, पर नौकरी को दाँव पर लगाकर सच्चाई से मुठभेड़ करने की आमने-सामने की संवादी-चुनौती भी। पर इसमें भी संवादी तल्खी और बॉडी लैंग्वेज के बाद भीतर की यह परत भी- 'थोड़ी सी आर्थिक क्षति और अपमान का जहरीला घूँट पिला कर घनी मानसिक शांति का स्वामी उन्होंने हमें अनजाने में ही हो जाने दिया। इसलिए उनके प्रति मन में क्रोध नहीं करुणा का भाव शेष रह गया।'

इस तरह के और भी प्रसंग हैं, जो सच्चाई से रूबरू करवा देते हैं। एक शब्दयात्री महज नौकर पत्रकार के दायरे में कैसे सिमटा रह सकता है? अपने संपादन की पत्र-पत्रिकाओं में भी नहीं और अंय प्रकाशनों पर सीमाबंदी भी। यह जो फाइटिंग स्पिरिट है बलराम की, बेबाकी में उनके सर्जक व्यक्तित्व की मुखर जबान बन जाती है- 'हमारा लिखा सब कुछ तो आप छापेंगे नहीं। यह जो हमारा गाड़ी भर लेखन है कहाँ छपेगा? क्या इसे हिंद महासागर में फेंकवा दिया करूँ?' इसीलिए सहयात्री साहित्यकारों के अन्यत्र प्रकाशित होने पर खरे सवाल उठाए हैं- 'प्रयाग शुक्ल, विनोद भारद्वाज और अन्य लोग जब-तब यत्र-तत्र 'संडे ऑब्जर्वर 'लिख सकते हैं, तो सिर्फ हम पर प्रतिबंध क्यों?'

और ये शिकवे और थोड़े तीखे नमकवाली जबान साहित्यकारों के समागम में भी। हिंदी अकादमी दिल्ली में कथा- पाठ के दौरान राजेंद्र यादव की व्यंग्य-मुद्रा वाले शब्दों के प्रत्युत्तर में बलराम कह जाते हैं- 'आपके हंस ने हमारी कहानी छापी नहीं, फिर भी कसम तोड़कर कथा-पाठ में पधारने के लिए आपको धन्यवाद।' पर बाद में पछतावा यह कि कटाक्ष क्यों किया?और इस अनायास व्यंग्य के लिए यह एहसास- 'वैसा ही लगाव बना रहा जैसा कि अपने बहुत प्रिय के खराब हो जाने के बावजूद बना ही रह जाता है।'

साहित्यिक मित्रों के साथ अनेक प्रतिच्छवियाँ आकर्षित करती हैं। साहित्य की दुनिया में जीवन व्यवहार के लिए ये तरल रूप कितने साधक होते हैं और सारे काँटे-कंकरों में स्नेह निर्झर को बहा देते हैं। सारिका में ज्वाइन करने के जाते समय जेब में साठ रुपए और दो जोड़ी कपड़े। मगर दिल्ली में

राजकुमार गौतम ने एक महीने तक घर में स्नेह पूर्वक टिकाया बलराम को। और सुरेश उनियाल ने किराए के एक सौ चालीस को भी आधा कर दिया। और यही दोस्ती के घर की देहरी बन गई। यही नहीं संपादन की दुनिया में कितने ही छपने पर खुश होते हैं और न छपने पर नाराज। पर धीरेंद्र अस्थाना ने मन का बैरभाव त्यागकर यारी के लिए हाथ बढ़ाया तो उसका हाथ पकड़ने में कोई संकोच नहीं किया। असल में बीच-बीच के वृत्त जीवन व्यवहार के स्नेहिल गणित को भी सिखाते हैं, एलजेब्रा के छोटे फॉर्मूलों की तरह, जो फैल कर बड़ा कैनवास रच लेते हैं।

साफगोई भी एक साहसिक चरित्र है। कोई संकोच नहीं लेखक को यह कहने में कि माध्यम का पेट भरने के लिए पत्रकारिता में अनेक लोगों को ऐसा करना पड़ता है। इसी चक्कर में बलराम के हजारों नाम न सही, पर लेखन-छपन में दसियों नाम बन जाते हैं -प्रेम नारायण से बलराम, प्रेम अंशुमाली, अखिलेश्वर, अग्निशेखर, मुजीब शेखर, जॉन, नटराज, संन्यासी, अमलतास वगैरह। जब इन नामों से छपी कहानियाँ बलराम के कथा-संग्रह में दिख जाएँ तो मित्रों की आँखों में सवालिया मुद्राएँ, असल जानकर मुस्कुराती हैं। पर एक और रूप, जो मित्रों के सृजन का क्षेत्र बन जाता है। शिवमूर्ति की कहानियाँ प्रकाशन के मुकाम पर लगती नहीं थीं। अच्छे कथाकार के बावजूद। धर्मयुग में बलराम की कहानियाँ छपीं जरूर, मगर धर्मवीर भारती से संवादी साक्षात्कार न होने के बावजूद शिवमूर्ति की कहानी के साथ भारती जी को पत्र लिखा। शिवमूर्ति की कहानियाँ धर्मयुग में छपने लगीं। भारती जी इन सिफारिशों के संपादक नहीं थे। पर रचना का बल मजबूर करता था। इस मायने में शब्दों के सहयात्री बलराम कुछ सीख भी दे जाते हैं। 'लोकायत 'के संपादन में भी इसीलिए वे खूब जमे। पर किसी अकादमिक प्रोफेशनल की तरह उन्होंने 'प्रेमचंद रचनावली' और दो हजार पृष्ठों के 'विश्व लघुकथा कोष' का प्रकाशन किया। वह भी साहित्यिक पत्रकारिता के साथ साहित्य संवर्धन का एक बड़ा उपक्रम है।

'माफ करना यार' आत्मकथा या संस्मरण बनते-बनते समकाल का साहित्य कोलाज भी बन गयी है?जैसे साहित्यिक समय ही इसका नायक हो। आत्मकथा में उगते हुए स्वयं लेखक का इंगित भी यही है। इसीलिए आरंभ में ही 'अपने बहाने औरों की कथा' में वह अकेले नहीं साहित्यकारों की बिरादरी के साथ आया है। यह उसकी साहित्य और पत्रकारिता के प्रति मूल्यगत निष्ठा का अंतरंग परिचय जितना व्यापक हुआ है, उतना ही युगीन साहित्य के प्रति लेखक का सम्मोहन भी। इसलिए 'माफ करना यार' जितना सच कहने के लिए यह शीर्षक विनम्र है, उतना ही आत्मकथा की चौखट का लंघन करने के लिए भी। आत्म-व्यंजना की धुरी से युगीन साहित्यिक परिदृश्य की व्यंजना इस पुस्तक की बड़ी सफलता है, सार्थकता है।

सम्पर्क : बी एल आच्छा, फ्लैट नं-701टॉवर-27, नॉर्थटाउन अपार्टमेंट
स्टीफेंशन रोड(बिन्नी मिल्स), पेरंबूर
चेन्नई (तमिलनाडु), -600012
मो-9425083335

इंदिरा दाँगी

नए युगबोध का दस्तावेज

प्रोफेसर संजय द्विवेदी भारतीय पत्रकारिता के प्रतिष्ठित आचार्य हैं। उनकी नई पुस्तक 'भारतबोध का नया समय' के पहले आलेख में (जो कि पुस्तक का शीर्षक भी है) मीडिया आचार्य संजय द्विवेदी वसुधैव कुटुम्बकम् (धरती मेरा घर है) की उपनिषदीय अवधारणा को बताते हुए इस धरा को, इस धरती को ऋषियों-ज्ञानियों की जननी मानते हैं और इसी का परिणाम वे मानते हैं कि इस देश में राजसत्तायें भी लोकसत्तायें रही हैं। आलेख 'पुनर्जागरण से ही निकलेंगी राहें' में लेखक प्रसिद्ध विचार 'गुलामी आर्थिक नहीं सांस्कृतिक होती है' की रोशनी में अपनी बात रखते हैं। अपनी संस्कृति को लेकर नए समय के लोगों में जो हीनताबोध है, वही लेखक की चिंता है।

'आजादी की ऊर्जा का अमृत' आलेख में लेखक स्वाधीनता के 75 वर्ष पूरे होने के अवसर पर पुरोधाओं की महान परंपरा को कृतज्ञता से याद करते हैं। और एकदम यहाँ अनायास ही अपने पढ़ने वालों के जहन में एक सवाल भी छोड़ते चलते हैं। इस आलेख में स्वतंत्रता संग्राम के तौर पर सिर्फ कुछ गिने हुए महापुरुषों और 'हाईलाइट्स' वाले आंदोलनों का ही नाम नहीं लिया गया है, बल्कि वे जो सच्चे लोकनायक थे, जिनकी सब लड़ाईयाँ और शहादतें देश के लिए थीं, उन्हें भी समतुल्य खड़ा किया गया है। 'जय-विजय के बीच हम सबके राम' आलेख पढ़ते हुए मुझे पंडित विद्यानिवास मिश्र का निबंध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' याद आने लगता है। लेखक ने यहाँ तुलसी के राम, कबीर के राम, रहीम के राम से लेकर गाँधी और लोहिया के राम तक को याद किया है।

'गौसंवर्धन से निकलेंगी समृद्धि की राहें' आलेख न सिर्फ गौवंश पर आधारित भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था का ऐतिहासिक-सांस्कृतिक अवलोकन करता है, वरन विश्व अर्थव्यवस्था में गाय के महत्त्व के साथ ही साथ उसके औषधीय महत्त्व पर भी रोशनी डालता है। 'एकात्म मानव दर्शन और मीडिया दृष्टि' लेख में एक बहुत ही जरूरी बात है कि मीडिया की दृष्टि लोकमंगल की हो, समाज के शुभ की हो। इसी तरह 'चुनी हुई चुप्पियों का समय' एक बहुत ही प्रासंगिक और समसमायिक

पुस्तक : भारतबोध का नया समय

लेखक : प्रो. संजय द्विवेदी, मूल्य : 500 रुपये

प्रकाशक : यश पब्लिकेशंस, 4754/23, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

आलेख है, और साथ ही इसकी विषय वस्तु कालातीत है। 'अद्‌भुत अनुभव है योग' लेख को पढ़ते हुए आप इस पुस्तक में उस मुकाम तक पहुँच जाएँगे, जहाँ आपको लगेगा कि गौसंवर्धन का अर्थशास्त्रीय पहलू हो या नई शिक्षा नीति की बात या फिर वर्तमान राजनीति का सिनारियो या फिर विश्व योग के सिरमौर भारत पर चर्चा–ये पुस्तक वास्तव में इस नये समय में नये भारत को समझने में एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

'मोदी की बातों में माटी की महक' आलेख में लेखक भारत के प्रधानमंत्री माननीय नरेंद्र मोदी के जननायक हो जाने के सफर की पड़ताल करते हुए उनकी भाषण कला, देहभाषा और लोकविमर्श की शक्ति पर चर्चा करते हैं। 'खुद को बदल रहे हैं अखबार' लेख में ई–पत्रकारिता के इस दौर में परंपरागत समाचार पत्रों को नये समय की चुनौतियों से रूबरू कराते हैं द्विवेदी जी। अगले लेख 'पत्रकारिता में नैतिकता' में जहाँ आचार्य द्विवेदी ग्रामीण पत्रकारिता की उपेक्षा की बात करते हैं, वहाँ मुझे याद आता है कि जब किसी छोटी जगह पर कोई बड़ा आयोजन होता है या कोई राजनेता जाता है तो रिपोर्टिंग करने के लिए स्टेट या राजधानी से पत्रकार जाते हैं, मतलब ग्रामीण भारत कितना उपेक्षित है भारतीय पत्रकारिता में, जबकि फिल्मी अभिनेत्रियों और अभिनेताओं की छोटी–से–छोटी खबर छपती हैं बड़े–बड़े अखबारों में। मीडिया गुरु ने सही ही विषय लिया है इस आलेख में।

'मीडिया शिक्षा के सौ वर्ष' में लेखक ने पिछली एक सदी में मीडिया शिक्षा की दशा और दिशा से अवगत कराया है। 'संकल्प से सिद्धि का सूत्र मिशन कर्मयोगी' आलेख में वे बताते हैं कि मिशन कर्मयोगी अधिकारियों और कर्मचारियों की क्षमता निर्माण की दिशा में अपनी तरह का एक नया प्रयोग है। देश को श्रेष्ठ लोकसेवकों आवश्यकता है, और ये पहली बार है कि बात सरकारी सेवकों के कौशल विकास की हो रही है।

इस पुस्तक में इन आलेखों से आगे, पत्रकारिता के शलाका पुरुषों, देव पुरुषों पर लेख हैं। देवर्षि नारद, विवेकानंद, माधवराव सप्रे, महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, बाबा साहेब आंबेडकर, वीर सावरकर, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के जीवन पर आधारित आलेख हैं।

इस तरह इस किताब में, नए युगबोध का ऐसा कोई विषय नहीं जो अछूता हो; अपनी पुस्तक में लेखक ने नए भारत से हमें मिलवाया है, नए भारतबोध के साथ। किताब पढ़कर एक आम पाठक शायद आखिर में यही सोचे कि पत्रकारिता के पाठ्यक्रम में कैसी किताबें पढ़ाई जानी चाहिए– यकीनन 'भारत बोध का नया समय' जैसी!

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)

कमलेश भट्ट कमल

जीवन और जन-सरोकारों से सराबोर कहानियाँ

बल्लभ डोभाल एक बेहद मँजे हुए कथाकार हैं। कुछ समय पूर्व ही श्रीसाहित्य प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित होकर आया है उनकी कहानियों का नया संग्रह 'मेरी चयनित कहानियाँ।' इससे पूर्व उनके पाँच उपन्यास, दस कहानी संग्रह, तीन यात्रा-संस्मरण, दो नाटक, दो बाल उपन्यास, तीन बाल कहानी संग्रह तथा कुछ अन्य पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 24 कहानियों का यह संकलन अपनी पहली ही कहानी 'कही-अनकही' से पाठक को बाँध लेता है। वे जीवन के यथार्थ को कहीं से भी उठाकर कहानी बना देने में सक्षम और सिद्धहस्त हैं। कहानी भी ऐसी कि आप पढ़कर ठगे-से रह जाएँ। जीवन से सराबोर ये कहानियाँ आपके अनुभव को तो विस्तार देती ही हैं, संवेदना के तंतुओं को भी कहीं धीरे से, कहीं हौले से कुछ इस तरह झंकृत कर जाती हैं कि मन कभी आह्लादित तो कभी गहरे तक संवेदित हो उठता है। ज्यादातर कहानियाँ ऐसी हैं कि कि उन अनुभवों से आप कदाचित कभी गुजरे ही न हों अर्थात् ये पाठक के अनुभवों को समृद्ध करने वाली हैं। इन कहानियों के लेखक लिए राजा खुगशाल ने अपनी भूमिका में ठीक ही 'लोक संवेदना के अप्रतिम कथाकार' नाम दिया है। भूमिका यह उल्लेख करना नहीं भूलती है कि 'बल्लभ डोभाल एक समर्पित रचनाकार हैं। मुक्त जीवन जीते हुए उन्होंने लेखन की शर्त पर समझौते नहीं किए। प्रसिद्धि, पुरस्कारों तथा प्रलोभनों के पीछे वे नहीं भागे। उन्होंने हिमालय के दुर्गम क्षेत्रों की साहसिक यात्राएँ की हैं। उनकी स्वच्छंद और घुमंतु प्रवृत्ति का असर उनके लेखन पर भी पड़ा है।'

1970 के आसपास प्रकाशित अपने पहले कहानी संग्रह 'घाटियों के घेरे' के बाद से डोभाल जी ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। आलोच्य चयनित कहानियों में बल्लभ डोभाल के हस्तलाघव का पता इस बात से चलता है कि कभी ऐसा लगता ही नहीं कि वे कहानी लिख रहे हैं। अपितु यह अनुभव होता है कि कहानी के पात्र और घटनाक्रम किसी सम्मोहन में बँधकर स्वयं कोई अनूठी संरचना तैयार कर रहे हैं। यदि प्रभाव की बात की जाय तो जिस तरह कोई जादूगर अपनी जादू की छड़ी के इशारे भर

पुस्तक : मेरी चयनित कहानियाँ' (कहानी संग्रह), लेखक : बल्लभ डोभाल
प्रथम संस्करण : वर्ष 2022, पृष्ठ संख्या :160, डिमाई साइज, मूल्य : 450 (हार्ड बाउंड)
प्रकाशक- श्रीसाहित्य प्रकाशन, डी-580, अशोकनगर, शाहदरा, दिल्ली-110093

से अपने तमाम सारे उपकरणों को मनचाहे ढंग से संचालित करके दर्शकों को अवाक कर देता है, डोभाल जी अपनी कहानियों में कुछ-कुछ वैसा ही करते नजर आते हैं।

विगत 30 मार्च 2022 को अपने जीवन के 92 बसंत देख चुके डोभाल जी की मानसिक सक्रियता आज भी हैरान करती है। वे जीवन में बहुत बिंदास किस्म के इंसान रहे हैं। कहीं बँधकर और ठहरकर रहना उन्हें रास नहीं आया। जीवन की ही तरह उनका लेखन भी कभी बँधा नहीं, कहीं ठहरा नहीं। उनका बेबाकपन उनकी कहानियों में भी दिखाई देता है, और उनकी बातचीत में भी। धर्म किस तरह अपराधियों के छुपने की शरण स्थली ही नहीं, अपितु अलग तरह की सड़ांध का केंद्र बन जाता है, यह उनकी कहानी 'जय जगदीश हरे' में बहुत रोचक ढंग से आया है। अपराध, राजनीति और पुलिस का गँठजोड़ 'चुनाव उत्सव' में दिखाई देता है तो राजनीति का खोखलापन 'कोढ़-खाज' कहानी में नजर आ जाएगा। राष्ट्रपिता की दुर्दशा एवं पीड़ा स्वयं गाँधी के ही शब्दों में सुनिए, जब 'कलिकथा' कहानी में कथाकार फैंटेसी का प्रयोग करते हुए करेंसी नोट पर छपे गाँधी के साथ संवादरत होता है- 'खून से सनी आजादी मिली भी तो देश दो टुकड़ों में बँट गया। लोग कहते हैं कि आजादी गाँधी की देन है। इस खून-खराबे की जगह मैं सत्य, शांति और अहिंसा के माध्यम से देश को आजाद हुआ देखना चाहता था और वह संभव भी हो सकता था। लेकिन कुछ महत्त्वाकांक्षी लोगों ने ऐसा नहीं होने दिया। सत्ता हथियाने की उनकी नीति कारगर साबित हुई, और देश के दो टुकड़े हो गए।' (पृष्ठ-145)

इसी कहानी का एक और संवाद देखिए- 'जीत जाने वाले की ओर से डिनर और डांस-मुजरे पार्टी का आयोजन किया जाता है। जहाँ बारबालाओं की अदाओं पर हमें कुर्बान किया जाता है। उनके घुँघरू बँधे पाँव हमारे ऊपर थिरकते रहते हैं। तुम्हारे राष्ट्रपिता को पैरों तले रौंदा जाता है। यह कैसा महान जनतांत्रिक देश है रामलाल!' (पृष्ठ-147)

वहीं 'कही-अनकही', 'चिपको! हो... चिपको!' 'शेरबाज' आदि बिल्कुल अलग भावभूमि और संवेदना की कहानियाँ हैं। 'कही-अनकही' में नायिका कमला भाभी परदेस जाकर उसे भूल गए अपने पति की वजह से जिस अकेलेपन को दिन-रात जी रही है, वह सारा संताप बातों ही बातों में अपने उस देवर को जो शहर से आया हुआ है, बता जाती है। साथ ही यह भी कहती है कि वह अपने भाई को ये सारी बातें वापस जाकर बता दे। लेकिन कहानी का अंत होते-होते उसी देवर को जिस अंदाज से पति को कुछ भी न बताने की कसम दे डालती है, वह पाठक को भावविह्वल बना कर छोड़ जाता है। कहानी 'चिपको! हो... चिपको' पहाड़, जंगल और आदमी के रिश्तों पर बहुत आत्मीय और संवेदना पूर्ण ढंग से पाठक को छूती है तो 'शेरबाज' इसी नाम के कुत्ते के पिल्ले और उससे चिढ़ने वाली घर की मालकिन के रिश्ते अंत में बेहद आत्मीयता में बदल जाने की भावपूर्ण कहानी है।

व्यंग्य में डोभाल जी का कोई सानी नहीं है। अधिकांश कहानियों में व्यंग्य की धार दिखाई ही दे जाती है। जैसे कहानी 'जय जगदीश हरे' का यह दृश्य- 'जहाँ एक दिन कुछ नहीं था, वहाँ पूरा बाज़ार ही बस गया है। गंध-अक्षत से लेकर साड़ियाँ, सैंडल, जूते-चप्पल, क्रीम-पाउडर, बाल-सफा सोप-शैंपू, माला, कंडोम तक... सभी कुछ एक जगह मिल जाता है। बस्ती वालों को सुबह-शाम

हरिनाम सुनने को कहाँ मिले?भक्तजनों ने मंदिर की छत पर चारों दिशाओं में लाउडस्पीकर बाँध दिए हैं। जहाँ पूरे दिन 'चोली के पीछे क्या है' जैसी फिल्मी धुनों पर भगवती जागरण और कभी नाम की महिमा का गान चलता ही रहता है। कभी आरतियाँ और कभी प्रवचन... नवधा भक्ति। यानी नौ प्रकार की भक्ति का वर्णन शास्त्रों ने किया है। जिसमें श्रवण-भक्ति सबसे सरल है। यह कि बस, सुनते जाओ। जागते-सोते, उठते-बैठते... नामधुन कानों में आनी चाहिए। यही श्रवण-भक्ति है।' (पृष्ठ-30)

इसी प्रकार 'चुनाव उत्सव' में उनके खलनायकनुमा कथानायक का यह व्यंग्य हमें सोचने पर विवश कर जाता है- 'तब कोई सोच भी नहीं सकता था कि आजादी के बाद बेईमानी के धंधे इस तरह आसमान को छू लेंगे। (पृष्ठ 34)

इसी कहानी में नायक फँगरूमियाँ का एक और संवाद देखिए- 'पढ़-लिख के क्या मिलेगा बेटा!... वो तेरे बस का नहीं। चुनाव लड़ जा! नेता बन गया तो फिर... दूसरों को आपस में लड़ाने की बात है, सब सिखा दूँगा। शाम को उधर चला आ... झुग्गी डलवा दूँ तेरी। फिलहाल पच्चीस-गज किसके बाप की है।' (पृष्ठ-36)

बल्लभ डोभाल की कुछ कहानियों के नायक बिल्कुल अजीब तरह के लोग हैं। जैसे- 'चुनाव-उत्सव' का फँगरूमियाँ एक बहुत शातिर दिमाग राजनेता और अपराधी है तो 'जय जगदीश हरे' का शंकर एक ऐसा अपराधी है जो साधु के भेष में रहकर लोगों को श्रद्धा और भक्ति का ज्ञान देता है। उनकी कहानियों की शुरुआत बहुत सामान्य ढंग से होती है। ऐसा लगता ही नहीं कि लेखक कहानी ही कहने जा रहा है। 'जाड़े के दिन हैं।' (आहार निद्रा भय...), 'गली मोहल्ले में लोग उन्हें मास्टर जी के नाम से जानते हैं।' (दूर का दर्शन), 'यह उनका दूसरा पत्र है।' (सब तुम्हारे लिए), 'पिछले दिनों से लगातार इस धरती की बनावट को देख रहा हूँ।' (जड़वाद), 'आज उसका मन उदास था।' (बुलडोजर), 'इस बार फिर वही हुआ।' (काठ की टेबुल) आदि-आदि।

बल्लभ डोभाल की कहानियाँ कहानी के बँधे-बँधाए प्रारूप की मोहताज नहीं है। उनमें विशेष प्रकार का अल्हड़पन है। वे कहीं से भी शुरू होकर कहीं भी समाप्त हो सकती हैं। कहानी का चरम कहानी के अंत में आए ही, यह आवश्यक नहीं। वह चरम पूरी कहानी में टुकड़े-टुकड़े फैला भी हो सकता है। अपनी कहानियों में वे चौंकाने का प्रयास करते नहीं दिखाई देते। कभी बहुत बड़ी बात करने का भी प्रयास नहीं करते। थोपते तो बिल्कुल भी नहीं। लेकिन बातों ही बातों में, छोटी-बड़ी इतनी सारी बातें कहते चलते हैं कि एक लेखक के रूप में उनका मंतव्य क्या है, यह धीरे-धीरे पाठक को पता चल ही जाता है।

बल्लभ डोभाल जी की भाषा की चर्चा किए बिना उनकी कहानियों पर बात अधूरी रह जाएगी। दरअसल गजल की ही तरह कहानी में भी यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि उसकी कहन कैसी है?

संवेदनाओं और घटनाओं को संयोजित करके उन्हें किस प्रकार कहा गया है? जिस लेखक की कहन सिद्ध हो जाती है, वह यथार्थ को बहुत दिलचस्प अंदाज में पेश करने की महारत हासिल कर लेता है। कुछ-कुछ ऐसा ही महसूस होता है डोभाल जी की कहानियों को पढ़ते हुए। उनकी भाषा

बिल्कुल अलग तरह के आस्वाद की भाषा है। व्यंग्य के साथ ही चुटीलापन और विनोद-प्रियता भी उनकी भाषा की विशेषता है। शब्दों में थोड़ा-सा बाँकपन डालकर वे भाषा की भंगिमा ही बदल देते हैं। कहन और भाषा का सम्मिश्रण कहानी की अपूर्व ताकत में परिवर्तित हो जाता है। कुछ उदाहरण अप्रासंगिक न होंगे-

'ब्यटा, जरा दबा दे रे! चड़क शुरू हो गयी है।' (कोढ़-खाज, पृष्ठ-54)

'लोगों को टिंचरी क्या मिली कि अमृत मिल गया है। लोकतंत्र में चुनाव के इस चरणामृत को पीकर लोग अमर हो गये हैं।' (कोढ़-खाज, पृष्ठ-54)

'बिशे बिकार मिटाओ पार हरो देवा...सरधा भगति बढ़ाओ। पंक्ति को उच्चारित करता हुआ, सूरज को अरघ चढ़ाने के लिए वह बरामदे में आता है।' (आहार निद्रा भय..., पृष्ठ-21)

डोभाल जी अपनी अधिकांश कहानियों में अनिवार्य रूप से उपस्थित रहते हैं। ज्यादातर किरदार के रूप में तो कहीं-कहीं किरदार और सूत्रधार दोनों रूपों में। इस वजह से उनकी कहानियाँ सच्चे यथार्थ की कहानियाँ लगती हैं। उनकी कहानियों में अभिव्यक्त भोगा हुआ यथार्थ पाठक को अपने से बाँधकर रखता है। कुछ कहानियों में यह यथार्थ पाठक को संवेदना की ऐसी नई दुनिया में ले जाता है, जो उसे हिलाकर रख देता है। बेशक उनकी कहानियों का कलेवर बहुत बड़ा नहीं है, लेकिन मानना होगा कि उनमें गुँथे यथार्थ और संवेदना का कलेवर खासा विस्तार और विविधता लिये हुए है। अपने जन-सरोकारों की दृष्टि से वे बड़ी कहानियाँ हैं। इन कहानियों की एक अलग प्रकार की दुनिया है, जिसे केवल पढ़कर ही अनुभव किया जा सकता है।

सम्पर्क : कमलेश भट्ट कमल
1512, कारनेशन-2, गौड़ सौन्दर्यम्, ग्रेटर नोएडा वेस्ट,
गौतमबुद्ध नगर, -201318 (उ.प्र.)
मो. 9968296694,

चिट्ठी

साक्षात्कार का संयुक्तांक अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर-2021 प्राप्त हुआ। साक्षात्कार का नया अंक प्राप्त होते ही सर्वप्रथम मुझे सम्पादकीय और फिर किसी साहित्यकार का आपके द्वारा लिया गया साक्षात्कार, जो इस पत्रिका के नाम को सार्थक करता है, पढ़ना रुचिकर लगता है। यह दोनों चीजें ही अन्य पत्रिकाओं की तुलना में इसमें कुछ हटकर और विशेष लगती हैं मुझे। प्रस्तुत अंक के सम्पादकीय में श्री मानस रंजन महापात्रा की कविता और उनके विचार पढ़कर हार्दिक क्षोभ हुआ। वहीं बेबाक विचार सबके समक्ष प्रस्तुत करने के लिए आपके प्रति पूर्व से भी अधिक श्रद्धाभाव जाग्रत हुआ। भारत देश का एक सामान्य सा व्यक्ति भी अपने देश और धर्म का अपमान करने में संकोच का अनुभव करता है किन्तु महापात्रा जी जो वरिष्ठ साहित्यकार ही नहीं देश की भावी पीढ़ी को संस्कारित करने का कार्य भी जिनको एन.बी.टी. के माध्यम से दिया गया, उनकी हिम्मत केवल उस धर्म पर लेखनी चलाने की हुई जो सदियों से सबको क्षमादान देता आया है। शायद वह ये बात भूल रहे हैं कि इलास्टिक की भी एक क्षमता होती है। उससे अधिक खींचने पर वह भी अपनी इलास्टिसिटी का गुण खो देती है। महापात्रा जी ने ऐसी रचना लिखकर तो अपने हृदय के कलुष को ही प्रकट किया है और अपनी लेखनी को अपमानित किया है। आशा है भविष्य में महापात्रा जी भारतीय प्रतीकों का अपमान करने के लिए अपनी लेखनी नहीं चलायेंगे।-**डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', मथुरा (उ.प्र.)।**

प्रत्यक्षम किम् प्रमाणम के बतौर साक्षात्कार का अगस्त-सितंबर-अक्टूबर, 2021 का संयुक्तांक है। ताजा अंक में बरवश ही ध्यान खींच लेता है भारतीय प्रतीकों का अपमान... शीर्षक संपादकीय। संपादकीय प्रख्यात साहित्यकार श्री मानस रंजन महापात्रा जी से हुई उनकी एक कविता पर केंद्रित चर्चा को लेकर हुई दूरभाष वार्ता पर आधारित है। देवी शीर्षक उनकी कविता के भारतीय आस्था संस्कृति के प्रतीकों को लेकर हुई। अपने भारतीय संस्कार और उनसे मिली विनम्रता के साथ संपादक ने पूरे आदर के साथ महापात्रा जी से प्रश्न किया यदि आपकी इस कविता में लिए गए प्रतीक के स्थान पर पंथों के प्रतीकों का उपयोग करते हैं तो कविता के भाव में क्या कोई अंतर आएगा। इस प्रश्न के उत्तर में महापात्रा महोदय अचकचा कर बोले अगर ऐसा होता है तो कवि और कविता के अनुवाद तक को लोग जिंदा नहीं छोड़ेंगे। उनके इस उत्तर से मैं बहुत आहत हूँ और संपादक जी के साथ खड़ा होकर यह पूछता हूँ कि क्या वह समाज की आस्था को अपमानित और आहत करना कहाँ से न्याय संगत है। वह समाज जो आपको पूरी स्वतंत्रता देता है कि आप जो चाहे लिखें और बोलें तो फिर ऐसा क्यों कि लेखक ने जब कलम उठाई है तो फिर भय कैसा? यह सवाल तकलीफ देता है। लेखक को निडर होना चाहिए उसका लक्ष्य राष्ट्रवादी होना चाहिए। लेकिन एक साहित्यकार और पत्रकार होने के नाते मेरा नैतिक कर्तव्य है। अपना मत भी

व्यक्त करूँ। क्योंकि मैं भी भारत का वासी हूँ और 40-45 साल से अपनी विरासत और परंपरा पर नंगे पैर चलते हुए देव कृपा से सृजनरत हूँ। साहित्यकार प्रोफेसर अजहर हाशमी से डॉक्टर विकास दवे की बातचीत उल्लेखनीय है। महापात्रा साहब को हाशमी जी के विचार जानना चाहिए, उन्होंने किस तरह से हमारी परंपरा संस्कृति का सम्मान करते हुए गैर हिंदी भाषी और एक अन्य समाज के व्यक्ति होने के बाद भी निर्भीकता से अपने विचार स्पष्ट व्यक्त किए हैं। अंक में ली गई सभी सामग्री उत्कृष्ट है। आशा श्रीवास्तव के दो बुंदेली गीत पर थोड़ी सी आपत्ति। एक दो शब्दों के प्रयोग से कविता बुंदेली नहीं हो जाती इसे जनपदीय गीत कह सकते हैं। मैं बुंदेलखंडी भाषा, वहाँ के साहित्य से खूब परिचित हूँ। हमे जन्म घुट्टी में बुंदेली मिली है। हिंदी का कवि के होने के बाद भी घर परिवार में बुंदेली ही बोली जाती है। जब आकाशवाणी होती थी प्रसार भारती के पहले तो भोपाल, इंदौर आकाशवाणी केंद्रों से बुंदेली का चौपाल नाम का कार्यक्रम चलता था जिसके संयोजक उस समय के सुप्रसिद्ध साहित्यकार कीर्ति शेष मनोहर पटेरिया मधुर और आदरणीय दुबे जी होते थे। इस चौपाल की प्रसिद्धि देशभर में थी शुद्ध बुंदेली कविताओं के लिए कवियों का आमंत्रित किया जाता था। वहाँ पहुँच कर कविता पढ़ना स्टेटस सिंबल था। मेरा सौभाग्य है कि उस दौर में बुंदेली गीत कविता पढ़ने मुझे अक्सर साल में दो-तीन अवसर मिल जाते थे। लिहाजा इस बात पर मैं हूँ या अन्य कोई भी एतराज करेगा और करना भी चाहिए तभी हमारी बोली भाषा का सौंदर्य शुचिता बरकरार रहेगी। -**पंकज पटेरिया-भोपाल।**

साक्षात्कार का अगस्त-सितंबर-अक्टूबर 2021 संयुक्तांक प्राप्त हुआ। अनुक्रमणिका की विविधता देख अभिभूत थी की संपादकीय पर जाकर अटक गई। वर्तमान की बहुत ही ज्वलंत समस्या पर अँगुली रखी है आपने। एक ऐसी समस्या जिसपर बात करने के स्थान पर लोग बगलें झाँकना पसंद करते हैं। 'मेरे इस प्रश्न पर वे अचकचा गए और बोले यदि अन्य किसी पंथ के प्रतीकों का उपयोग कर लिया तो वे लोग रचनाकार और अनुवादक दोनों को जिंदा नहीं छोड़ेंगे।' वर्तमान की इससे सही और सहज अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। अब समय आ गया है जब हमें स्वयं से आँख मिलाकर बात करनी पड़ेगी। आस्था मेरी हो या किसी और की उस पर आघात का अधिकार किसी को नहीं है। हर चीज़ की एक सीमा होती है हमें उसे नहीं लाँघना चाहिए। सीमाओं का अतिक्रमण तबाही लाता है। सही को सही और गलत को गलत कहने का समय आ गया है। हम सब ने यदि कलम उठाई है तो उससे जुड़ी जिम्मेदारी को भी उठाना ही होगा। इस संपादकीय के लिए मेरी बधाई स्वीकारें।-**नीलम राकेश, लखनऊ (उ.प्र.)।**

साक्षात्कार संयुक्तांक 491-492-493, मई-जून-जुलाई 2021 प्राप्त हुआ। हार्दिक आभार। साक्षात्कार एक पत्रिका नहीं आंदोलन है, जिसे साहित्य अकादमी, भोपाल (मध्य प्रदेश) से एक लंबे अरसे से प्रकाशित करवाती आ रही है। लगभग चार दशक से ऊपर समय से मैं इसका साक्षी हूँ कि स्वनामधन्य बड़े-बड़े संपादकों ने साक्षात्कार के दायित्व को निभाया है। कुछ दस्तावेजी अंक मेरे संग्रहालय में संभवत: अभी भी सुरक्षित हैं। आपका योगदान बातचीत के माध्यम से सामने आ रहा है। बाकायदा पढ़ता रहा हूँ। संपादकीय में आपने जैसा लिखा है सरकारी या अर्धसरकारी ही नहीं गैर सरकारी प्रकाशनों में भी भाषा का ध्यान और इसकी मर्यादा तो होनी ही चाहिए। मैं स्वयं 1976 तक हिंदी मासिक जागृति का संपादक रहा हूँ। वह अनुभव अब और भी जरूरी है क्योंकि छूट की भी एक सीमा हुआ करती है।

रचनाकर्म और रचनाकर्मियों को धिक्कार देना एक तरह से अपनी मर्यादा को दिखाना और उन्हें सावधान करना है। व्यक्तिगत तौर पर अपने शयनकक्ष में भले कोई कुछ भी करे लेकिन समाज के लिए शब्द जब आते हैं, आईना भी दिखाते हैं। आलेख, संस्मरण, कहानी, व्यंग्य, लघुकथा, अनुवाद के साथ कविताएँ, गीत, गजल और समीक्षाएँ इतनी विपुल सामग्री लगभग 360 पृष्ठों में देकर आपने पाठकों को संतुष्ट किया है। इनमें से मैं योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', नीलम शर्मा अंशु, जसविंदर शर्मा जैसे कई हस्ताक्षरों को पहचानता हूँ। अपने-अपने क्षेत्र और प्रांत में इन्होंने सतत् परिश्रम करके जगह बनाई है। संपादक, पत्रिका और पाठक के बीच एक सेतु का काम करता है। सेतु जहाँ ले जाता है वहाँ से कुछ सार्थक प्रेरणादायक भी प्राप्त हुआ करता है।-**फूलचंद मानव, जीरकपुर।**

'साक्षात्कार' का अगस्त से अक्टूबर, 2021 की अवधि का संयुक्त अंक मिला, जिसमें अपने अत्यंत कृपापूर्वक मेरे तीन गीतों को स्थान दिया है। इससे पूर्व के अंक में मेरी कहानी 'इतनी सी बात' को आपने स्थान दिया। मैं हृदय से आपका आभार मानता हूँ। आपके सौजन्य से मुझे श्री विजय मनोहर तिवारी जैसा कलमकार 'मित्र' रूप में मिल गया है। मेरे लिए तो गर्व और हर्ष की बात यह है कि डॉ. देवेंद्र दीपक और डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल के बाद मैं एक बार फिर से 'साक्षात्कार-परिवार' से जुड़ पाया हूँ। 'साक्षात्कार' का नवंबर-दिसंबर, 2021 का संयुक्तांक 'आत्मकथात्मक बालसाहित्य विशेषांक' के रूप में मिला, जिसे देखकर मैं इस लिए गद्-गद हूँ कि 'आत्मकथात्मक बाल साहित्य' को प्रमुखता देकर किसी राष्ट्रीय पत्रिका का यह संभवत: 'इकलौता' विशेषांक है। हल्द्वानी (उत्तराखण्ड) की डॉ. प्रभा पंत से आपकी बातचीत मेरे लिए गर्व की बात है। कुमाउँनी लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति के लिए समर्पित प्रिय बहन डॉ. प्रभा से बात करके आपने देवभूमि का गौरव बढ़ाया है। डॉ. विमला भंडारी और डॉ. गिरीशदत्त शर्मा के आलेख पढ़ कर इस विशेषांक की गुणवत्ता और महत्ता स्वयं सिद्ध हो जाती है। डॉ. सुरेंद्र विक्रम का आलेख तो 'बाल साहित्य' के अध्येताओं को सोचने के लिए विवश कर देता है। मुझे तो प्रसन्नता है कि आप 'बैकलॉग' तोड़ने में पूरी शक्ति से जुटे हुए हैं। दो अंक अगर 'संयुक्तांक' के रूप में और देकर आप अक्टूबर से नियमित अंक दे सकें तो निश्चय ही बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। मेरी अशेष शुभ कामनाएँ स्वीकार कीजिए।-**डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण', रुड़की।**

साक्षात्कार का मई-जून-जुलाई, 2021 संयुक्तांक हमें पढ़ने को मिला। अंक बहुत शानदार और यादगार लगा। कवर पेज बहुत पसंद आया। संपादकीय धिक्कार है ऐसे रचनाकर्म को बहुत पसंद आया। आज लेखक एक विचारधारा के नहीं रह गए हैं। आगे हमें नरेन्द्र माण्डलिक से डॉ. विकास दवे की बातचीत बहुत पसंद आई। आलेख उपन्यास साम्राट प्रेमचंद, अमर शहीद चन्दशेखर आजाद बहुत पसंद आया। संस्मरण की दोनों रचना भी अच्छी लगीं। गीत, गजल, कविताएँ भी अच्छी हैं। कहानी इतनी सी बात, अब तुम लिखो, दस का नोट, भुगतान भी बहुत अच्छी लगीं। व्यंग्य कामरेड की लंगोट बहुत पसंद आया। आप की पत्रिका पढ़ने से हमें साहित्य के समुद्र में जाने का मौका मिलता है। शुरू से अंत तक पत्रिका पढ़ते-पढ़ते कभी मन नहीं घबराया। संपादक भाई डॉ. विकास दवे को दिल से आभार व्यक्त करता हूँ। पत्रिका शीध्र अपने नये साल 2022 की मुकाम पर पहुँच जाएगी। -**बद्री प्रसाद वर्मा अनजान, गोरखपुर (उ.प्र.)।**

मैं साक्षात्कार का नियमित पाठक हूँ। नवंबर-दिसंबर 2021का संयुक्तांक 497-498 प्राप्त हुआ। आत्मकथात्मक बाल साहित्य पर केंद्रित यह विशेषांक, आत्मकथा के विविध पक्षों को बड़े ही सिलसिलेवार तरीके से उद्घाटित करता है। संपादकीय में 'बच्चों के ज्ञान का खजाना' शीर्षक से बहुत ही सहज लेख पढ़कर अच्छा लगा। डॉ. विमला भंडारी जी की आत्मकथा में बाल साहित्य और आत्मकथा की विस्तृत चर्चा के दौरान विद्यार्थियों द्वारा आत्मकथा के विषय चुनने जैसे महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को भी संकेतित किया गया है। प्रकृति, पर्यावरण, वस्तु, स्थान, राष्ट्रीय प्रतीक, खाद्य वस्तु, विज्ञान से संबंधित आत्मकथाओं के संकलन का अनोखा उदाहरण बन गई है यह पत्रिका। विमर्श के अंतर्गत डॉ. सुरेंद्र विक्रम, प्रियंका माँगे और डॉ. कृपाशंकर चौबे की बाल साहित्य पर विस्तृत तथा जरूरी टिप्पणी दी गई है।-**शीतला प्रसाद दुबे।**

साक्षात्कार पत्रिका का संयुक्तांक जो आत्मकथात्मक बाल साहित्य विशेषांक के रूप में सुधी पाठकों के लिए प्रकाश में आया है, संदर्भित आलेख लाजबाब बन पड़े हैं। आवरण पृष्ठ आकर्षक है, जिससे बालमन से जुड़ी सुखद अनुभूतियों चिंता युक्त जीवन सहयोग समभाव एवं थिरकते मनोभावों का दिग्दर्शन होता है। पत्रिका का कलेवर अपने आप में बहुत कुछ कह जाता है, अपनी मूक भाषा में संपादकीय में यह महत्त्वपूर्ण तथ्य उजागर किया गया है कि बाल साहित्य में स्वयं पर लिखे जाने वाली आत्मकथा नहीं लिखी जाती। यह बहुत हद तक सही है। इस संदर्भ में प्रख्यात लेखिका पद्मा सचदेवा का कथन प्रासंगिक होगा कि हर लेखक को बचपन में जाकर लिखना चाहिए। इतनी हड़बड़ी भी न हो कि अनुभव कच्चे रह जाएँ और स्मृतियाँ धोखा देने लगें। ऐसी विधाओं पर केन्द्रित आलेख से जुड़े विशेषांक न के बराबर रेखांकित हो रहे हैं। इस अंक से जुड़े किन-किन आत्मकथाओं का बखान करूँ? 'को बड़-छोट कहूँ' कृष्णलता यादव का मैं बारल भैया प्रकृति भी आत्म कथा के रूप में बालमन पर गहरी छाप छोड़ने वाले आलेख हैं। पर्यावरण की आत्मकथा से जुड़े 'मैं हूँ पर्यावरण' खिलखिला उठे जिंदगी, मैं पीपल का पेड़ हूँ, मैं कमल हूँ, घास की आत्मकथा सुनो-सुनो। मैं तुलसी हूँ। मैं नर्सरी हूँ। प्रतीक्षा है तुम्हारी, मुकंदरा का राजा, एमटी-1, मैं हूँ खलनायक तथा मियाँ मिट्ठू बालकों के लिए रुचिकर प्रस्तुति हैं। इन लोगों से बालकों में पर्यावरण के प्रति आकर्षण उत्पन्न होगा। वस्तु की आत्मकथा से जुड़े आलेख मनोहर हैं। कागज की आत्मकथा, बोलती कलम, सुई-डोरे की दोस्ती, आप का प्यार, दोस्त, बाल जगत की बात करने में समर्थ हैं। स्थान की आत्मकथा मैं अंजीम अंजम का, मैं हावड़ाब्रिज हूँ तथा गुडविल मसीह का पुस्तक की बाल साहित्य के लिए बेहतरीन प्रस्तुति हैं। राष्ट्रीय, रंगे की कहानी, कहानी राष्ट्रध्वज भी राष्ट्रीय चेतना जगाने में कोरे पर संजीवनी का कार्य करेंगे। इसी प्रकार पौष्टिक आहार मैं रोटी तथा विज्ञान से जुड़े लेख, वायुयान, चुम्बक, इन्टरनेट से वैक्सीन की आत्मकथा। मैं अन्नपूर्णा हूँ विशेष पसंद आए। सारांश के रूप में यही कहूँगा कि संपादक जी का प्रयास सत्य है। ऐसे विशेषांक संग्रहणीय हैं। -**डॉ. वेद प्रकाश पाण्डेय, वाराणसी।**

नवम्बर-दिसम्बर 2021 का साक्षात्कार का संयुक्तांक मिला। पाकर और पढ़कर बेहद खुशी हुई। इतने अच्छे अंक के लिये आपको कोटि-कोटि बधाईयाँ। आपका संपादकीय बच्चों के ज्ञान का खजाना आत्मकथात्मक आलेख बेहद सारगर्भित है। आपने सही लिखा है कि रचनाकार अपने जीवन के अंतरंग पहलुओं का इस दृष्टि से लेखन करता है कि उसके जीवनानुभाव अन्य लोगों के लिए प्रेरक और

मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। बातचीत में प्रो.प्रभा पंत जी से आपने लिया हुआ साक्षात्कार में उनके समग्र साहित्य और व्यक्तित्व का लेखाजोखा पढ़ने मिला। ऐसे साक्षात्कार रचनाकारों के लिए असीम ऊर्जा का कार्य करते हैं। डॉ. प्रभा पंत जी ने अपने सृजन के बारे में एकदम सटीक लिखा कि, सृजनशीलता प्रकृति प्रदत्त उपहार है जो मुझे आनन्दित करता है। डॉ. विमला भंडारी जी का आलेख बातचीत आत्मकथा की गागर ज्ञान आनंद का सागर अच्छा है। फिर हर एक पन्ने पर आत्मकथाओं की बहार ही बहार है जो कही अन्यत्र देखने नहीं मिलती जिसे पढ़कर मन सुगंधित हो जाता है। प्रकृति, पर्यावरण वस्तु स्थान, राष्ट्रीय प्रतीक खाद्य वस्तु और विज्ञान इन सबकी आत्मकथाएँ पढ़कर मन उत्साहित हुआ। आसपास बिखरे-बिखरे हुये ऐसे अनेक विषयों को आत्मकथा का आवरण पहनाकर पस्तुत किया गया जो कि बेहद मार्मिक और दिल को छू लेने वाले हैं। किसकी तारीफ करूँ किसकी नहीं? सभी उत्कृष्ठ आत्मकथ्य हैं। रचनाकारों ने बड़े ही रोचकता से प्रस्तुत किये हैं। साफ सुथरी, सुंदर, आकर्षक पत्रिका निश्चित ही पठनीय और संग्रहणीय है। **माधुरी राऊलकर, नागपुर (महा.)।**

साक्षात्कार का नवम्बर-दिसम्बर संयुक्तांक 2021, आत्मकथात्मक विशेषांक के रूप में प्राप्त हुआ। आप की रचनात्मक दरवेशी दृष्टि से विशेषांक साहित्य, साहित्यकारों और रसज्ञ पाठकों के लिये संभव हो पा रहे हैं। यह अवदान साहित्य के लिए शुभंकर और सत्य है। देखा गया है कि अपने कार्यकाल में जैसे-तैसे अपने दायित्व को पूरा करने अधिकारी अपने पद से सेवा निवृत्ति पाकर जुदा हो जाता है। आपने श्रेष्ठ कार्य करके अपनी पहचान बनायी है। यह पंक्तिकार श्रेष्ठ शब्द सुपरलेटिव डिग्री में प्रयुक्त कर रहा है। शरीयत, शरीयान, श्रेष्ठ ऐसा विशेषांकों को देख-पढ़ कर लिख रहा है। संपादकीय किसी भी संपादक का घोषित अन्तलीन दूरदर्शी सारस्वत नजरिया होता है जिसके आधार फलक पर वह अपने ख्यालात की करता है।-**डॉ. मधुर नज्मी, मऊ (उ.प्र.)**

संयुक्तांक 494, 495, 496 अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर 2021 प्राप्त हुआ। बेजोड़ है। महापात्रा जी की कविता महत्त्वपूर्ण है। प्रतीक हमारी संस्कृति, आस्था और परम्पराओं के साथ जुड़े हुए हैं। उनके तोड़-फोड़ विंध्वस का मैं समर्थन नहीं करता। अपने-अपने व्यक्तिगत विचार हैं। चिंतन और समझ की पृष्ठभूमि अलग है दायरा भी अलग है। जो भी हो पर कविता विशेष है। इस पर विस्तार से बहुत कुछ लिखा जा सकता है। विमर्श के लिए विस्तृत जमीन है। अस्तु। कूकती नहीं कोयल कूकता है कोकिल, आलेख जानकारी प्रदान करता लेख है। भारत संस्कृति राष्ट्र चिंतन परक लेख उसकी श्रेष्ठता का बखान क्या करूँ? अध्ययन पूर्ण लेख है। लोक जगत की पाठकीय अभिरुचि और साहित्य में लेखक ने ढेर सारी जानकारी प्रस्तुत की हैं। जिससे मैं अनभिज्ञ रही। लेखक साधुवाद के पात्र हैं। डॉ. वासुदेवन शेष का लेख नाथ सम्प्रदाय के भक्तिमार्ग का उत्तम वर्णन है। वैश्विक परिदृश्य में राम त्याग की मूर्ति ममता मयी सीता, महादेवी के काव्य में क्रांतिचेतना लेख महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ.दीप पाण्डेय जी का हरिशंकर आदेश कर लिखा गया संस्मरण पढ़ कर आदेश जी की मूर्ति हँसता खिलखिलाता चेहरा आँखों के सामने आ गया। कैलिफोर्निया में वर्ष 2005 दिसम्बर में वे मेरे घर पर रहे थे। उनके कार्य को मैंने बहुत निकट से देखा है। हिन्दी की सेवा के लिए समर्पित? यूबा से हिन्दी अखबार निकालने के लिए उन्होंने जो दौड़धूप भी थी और व्हाईट हाऊस से सम्मति ले ली थी उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता है। उनकी विदुषी पत्नी जया

जी भी सब समय उनके साथ होती थीं। उनके दोनों बेटे भी समर्पित भाव से काम कर रहे हैं। पिता के पथ के अनुगामी निष्ठापूर्वक काम कर रहे हैं। आदेश जी की स्मृति को श्रद्धापूर्वक नमन। डॉ. दीपक पाण्डेयजी ने बहुत सुन्दर संस्मरण लिखा है। कहानियाँ तो सभी उत्कृष्ट हैं पर संतोष श्रीवास्तव की पद्मश्री कहानी ने तो मुझे मूक कर दिया। अद्वैत का प्रकाशोत्सव शंकरचार्य आलेख पुष्पारानी गर्ग रचित महाकाव्य की मात्र समीक्षा नहीं पर महाकाव्य की कसौटी पर किस प्रकार खरी उतरती कृति है। इसका दर्शन है। नवम्बर, दिसम्बर, संयुक्तांक 497, 498आत्मकथात्मक बाल साहित्य विशेषांक यह विलक्षण प्रयोग कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। कारण अंक में तुलसी हो या मैं रोटी हूँ या इंटरनेट हूँ या कोवेक्सिन की आत्मकथा सभी में अपनी स्थिति-अस्तित्व, गुण, श्रेष्ठता उपयोगिता पर जानकारी की गई है इसमें रोचकता और आकर्षण पर्याप्त मात्रा में है। सभी लेखों को पढ़ते समय मुझे स्कूल में पढ़ी हीरा और कोयला का स्मरण हो आया। जिसमें कोयला हीरे से कहता है ज्यादा बड़बोला मत बनो तुम रईसों की हवेली में और मैं छोटे-बड़े गरीब अमीर सबके घर में यही भाव इन आत्मकथाओं में है। तिरंगे की कहानी अपनी है तो हावड़ा ब्रिज की कहानी अलग है, मकान की आत्मकथा अलग है। सभी विद्वानों को नमन। डॉ. सुरेन्द्र विक्रम जी ने बाल साहित्य में गतिरोध बड़ी सच्ची-सच्ची बात पाठकों के सामने रखी है।-**डॉ. विद्या केशव चिटको, नासिक (महा.)।**

साक्षात्कार का नया अंक नवम्बर, दिसम्बर 2021 (आत्मकथात्मक बाल साहित्य विशेषांक) मिला। आपकी संपादकीय तो प्रभावशाली और सार्थक है ही प्राध्यापक प्रभा पंत से विकास दवे की बातचीत भी बहुत सार्थक है। यह अंक सिर्फ बच्चों का आत्मकथात्मक अंक है नहीं बल्कि इस अंक में प्रकृति की आत्मकथा, पर्यावरण की आत्मकथा, वस्तु, स्थान की आत्मकथा, राष्ट्रीय प्रतीक की आत्मकथा, खाद्य वस्तु की आत्मकथा, विज्ञान की आत्मकथा भी है। आत्मकथाओं के इतने विविध आयामों पर पहली बार हिन्दी में किसी ने आत्मकथा प्रस्तुत की है। बाल साहित्य पर विमर्श भी सार्थक है। आपने बाल साहित्य को एक नया आयाम दिया है। उनके साहित्य को नया आयाम दिया है।-**विवेक सत्यांशु, प्रयागराज (उ.प्र.)।**

साक्षात्कार नवम्बर, दिसम्बर 2021 अंक मिला, इस बार अंक नवीनता लिए है। बेजान वस्तुओं की आत्मकथा देकर एक नई सोच जरूरी। कृपया हो सके तो 4-5 पृष्ठों तक सीमित कहानियों का पूरा एक विशेषांक निकालने का कष्ट करें।-**रमेश मनोहरा शीतला, (जावरा) रतलाम (म.प्र.)।**

साक्षात्कार पत्रिका अगस्त, सितम्बर अक्टूबर 2021 की है। लेख कहानी, कविताएँ सभी अपने आप में पठनीय सुरुचिपूर्ण है। बहुत से लेख छात्रोपयोगी हैं। हिंदी-युग प्रवर्तक, महावीर प्रसाद द्विवेदी महादेवी के काव्य में कान्ति चेतना साहित्य में भारतीयता के मायने ज्ञानार्जन लेख है। भारत संस्कृति और राष्ट्र उत्तम लेख है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत देश में बहुत सुधार हुए हैं, किन्तु अभी भी बहुत बाकी है।-**बी. गुरु शांताबाई, बेंगलूर (कर्नाटका)।**

साक्षात्कार का संयुक्तांक जनवरी, फरवरी, मार्च 2022 प्राप्त हुआ। आवरण पृष्ठ देखकर मन साहित्य के उन्मुक्त गगन में कपोत सा उड़ने लगा। संपादकीय में आप द्वारा उठाया गया संदर्भ गंगा-जमुनी तहजीब का अर्थ-सचमुच भारत में कहीं दिखाई नहीं दी। क्या मुस्लिम समाज के आध्यात्मिक मूल्यों में

यमुना का कोई विशिष्ट स्थान है? इस महत्त्वपूर्ण तहजीब के सटीक अर्थ की साहित्य के विराट पुरुषों द्वारा व्याख्या होनी चाहिए। बाल साहित्य मर्मज्ञ डॉ. मंजरी शुक्ला से आपकी बातचीत सुखद लगी। बातचीत के बहाने डॉ. शुक्ला ने अमृता प्रीतम की रसीदी टिकट, आशापूर्णा देवी के प्रथम प्रतिश्रुति तथा गुरुदेव के काबुली वाला की याद दिलाई। विदुषी प्रोफेसर डॉ. शशिकला त्रिपाठी का आलेख भी ज्ञानवर्द्धक है। डॉ. सतीश चतुर्वेदी शाकुन्तला द्वारा पंडित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्तित्व पर लिखा गया जीवन-दर्शन बहुत पसन्द आया। उनकी सारगी ईमानदारी, एकात्म मानववाद के सिद्धान्त के अनछुए पहलुओं की जानकारी मिली। चिंतक, विद्वान ओमप्रकाश खुराना का वैदिक दर्शन से जुड़े विचारों ने मुझे प्रभावित किया। सचमुच 98 प्रतिशत हिन्दू घरों में वेद लुप्त प्राय है जबकि वेदों में महान शिक्षण हैं। विचारशील शोभा शर्मा जी का मालवी बोली भाषा की विकास का संकेत पढ़ने को मिला। मालवा, महान साहित्यकार कवि वाला कृष्ण शर्मा नवीन की पावन स्थली भी तो है। श्री हार्दिक दवे जी द्वारा रेखांकित मीडिया से जुड़ा लेख बेहद पसन्द आया। डॉ. अखिलेश शर्मा ने भी स्वामी दयानंद सरस्वती पर शोधपूर्ण निबंध का रचाव किया। प्रायः सभी कविताएँ पसंद आई। कीर्तिनाद मनभाया हिन्दुस्तान संभाग भाई देवेन्द्र कुमार की कविता भी अन्तः को स्पर्श करती है। यामिनी समीर मधुर, नरेन्द्र डोयले की कहानियाँ भी मन को शीतलता प्रदान करती हैं। पुस्तकों की समीक्षा पढ़ कर संत साहित्य की विशेष जानकारी मिली। यह भी ज्ञात हुआ कि अलाउद्दीन संगीत का बड़ा प्रेमी था। सितार अमीर खुसरो की खोज है।-
डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय, वाराणसी (उ.प्र.)।

R.N.I.३०९९३/७६

आज़ादी का
अमृत महोत्सव

साहित्य अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, बाणगंगा, भोपाल (म.प्र.)